MSS No. 340 Subject PHILOSPHY

Name of MSS योगविशिष्ठ

Author होल्लराम

Period ______ Folios 172

Script DEVANAGIRI Source Prithipal Singh

Missing Folios N.A.

॥श्रीगुरुवेनमः॥ ॥अथस्थितिप्रकर्णलिख्य
ते॥श्रीवसिष्ठोवाच॥ हेरामजीउत्पतिप्रकरण
केअनंतरअबस्थितिप्रकरणश्रवणकर॥ जिसके
सुणनेतेंजगतनिर्वाणताकोंप्राप्तहोताहे॥ कैसाजग
तहे॥ अहंताजिसकेआदिहे॥ ऐसादृश्यरूपजग
तसोभ्रांतिमात्रहे॥ जैसेआकाशविषेइंद्रधनुषना
नाप्रकारकेरंगोंसहितभासताहे॥ तोभीअसतरूप
हे॥ तैसेइहजगतअसतरूपहे॥ जैसेचित्तविषेमनवि
छितनगरफुरआवताहे॥ तैसेभ्रमकरकेचित्तविषे
जगतभ्रमदृढहूयाहे॥ जैसेमृगतृस्नाकीनदीअज्ञा
नकरकेभासतीहे॥ तैसेइहजगतअज्ञानकरचित्तवि
षेभासताहे॥ तोभीअसतरूपहे॥ जैसेकथाकेअर्थ
श्रोतेकेचित्तविषेभासतेहें॥ तोभीअसतरूपहें॥ तैसे
असतरूपजगतसतरूपहोभासताहे॥ जैसेस्वप्नेवि
षेस्त्रिष्टभासतीहे॥ तैसेइहसर्वभूतभासतेहें॥ तोभी
आकाशवतशून्यरूपहें॥ जैसेस्वप्नेविषेअंगनाभास
तीहे॥ सोअसतरूपहे॥ तैसेजगतनानाप्रकारकीरच
नाभासतीहे॥ तोभीअसतरूपहे॥ जैसेअग्निअरुस
र्यकीमूर्त्तिलिखीतेंकछुकार्यसिधनहीहोता॥ तैसेइ
हजगतअनुभवभीहोताहे॥ परअवस्तुरूपहे॥ जैसे
चित्रकीलिखीकमलनीसुगंधतेंरहितहोतीहे॥ तैसे
इहजगतशून्यरूपहे॥ ॥श्रीरामोवाच॥ हेभगवनसं
सयोंकेनाशकर्त्ताजबमहाकल्पक्षयहोताहे॥ तबदृ
श्यमानजगतसभआत्मरूपीबीजविषेजांलीनहोता
हे॥ जैसेबीजविषेअंकुररहताहे॥ बहुडतिसतेंउपज
ताहे॥ सोकहो॥ ॥श्रीवसिष्ठोवाच॥ हेरामजीइसप्रका
रजोकहतेहें॥ महाकल्पकेक्षयहूए बीजआत्माविषे
जगतस्थितहोताहे॥ ऐसेजोकहतेहें॥ सोपरमअज्ञानीहें

1 जो ब्रह्मकों जगतका कारण कहते हैं ॥ बीजतें अंकुर
की न्याई । सो मूर्ख हैं । बीजतो दृश्यरूप इंद्रीयों का
विषय होता है ॥ जैसे बटके बीजतें अंकुर होता है ॥ बहु-
डव है विस्तारकों पावता है ॥ सो इंद्रीयों का विषय है ॥
अरु आत्मा मनसहित षट इंद्रीयों तें अतीत है ॥ अ
र्थ इह जो इनका विषय नहीं ॥ आकाशतें भी अधिक
सूक्ष्म है ॥ तिसकों जगतका बीज कैसे कहीये ॥ हे रा
का मजी जो शांत तिस सूक्ष्मस्वरूप सदा भासता है ॥ अरु दृ
श्य नाम जिस विषे असतरूप है ॥ तिसकों बीजरूप कै
तें से कहीये ॥ ऐसे निर्मल सूक्ष्म निराकार निर्विकार ज
गतका होवणा कहणा नही बणता ॥ जो किंचन अकिं
चिन है ॥ अकार निराकार आस्ति की न्याई सत्तामात्र
है ॥ तिस विषे अविद्यमान जगत कैसे होवे ॥ महासूक्ष्
म निर्मल तिस विषे दृश्यरूप जगत कैसे बणे ॥ जैसे धू
प विषे छाया नही होती ॥ तैसे आत्मा विषे जगत नहीं
बटका बीज भी साकाररूप होता है ॥ अरु निराकाररू
प आत्मा विषे साकाररूप जगतका होणा योग्य नहीं
हे रामजी कारण दो प्रकारका होता है ॥ एक समवाय
कारण है ॥ एक निमित्तकारण है ॥ सो आत्मा दोनों कार
णभावतें रहित है ॥ निमित्तकारण तब होता है ॥ जो का
र्यतें भिन्न कर्ता होता है ॥ आत्मा अद्वैत है ॥ तिसके निक-
ट दूसरी वस्तु नहीं ॥ कर्ता किसका होवे ॥ सहकारी भी को
ऊ नहीं ॥ जिसकर कार्यकों उपकरे ॥ मन इंद्रीयों तें रहित
निराकार अव्यक्तिरूप है ॥ अरु समवायकारण भी प्र
णाम कर होता है ॥ जैसे बटका बीज प्रणाम करके वृक्ष
होता है ॥ सो आत्मा अच्युत है ॥ प्रणामकों कदाचित नही
पावता ॥ तो तिस समुवायकारण भी नहीं ॥ जायते । अस्तिते
वर्धते । विपरणमते । क्षीयते । नश्यते । इन षट विकारों
तें रहित निर्विकार आत्मा जगतका कारण कैसे होवे ।

तांते इह जगत कार्यरूप भ्रांति करके भासता है ॥ जैसे
आकाश विषे नीलता सिपी विषे रूपा भासता है ॥ जैसे
निद्रा दोष कर स्वप्न स्रिष्ट भासती है ॥ जब स्वरूप विषे
जागे ॥ तब जगत भ्रम नष्ट हो जाता है ॥ तांते कारण का
र्य भ्रम कों त्याग कर अपणे स्वरूप विषे स्थित हो ॥ इ
बौध कर संकल्प रचना हूई है ॥ तिस कों त्याग कर
अपणे स्वरूप विषे स्थित हो ॥ जगत भ्रम मिट जावे
गा ॥ ॥ इति श्री स्थितप्रकरणे जगत निराक
रणं नाम सर्गः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे देव
तों विषे श्रेष्ट रामजी बीजतें अंकुरवत आत्मातें ज
गत का होवणा अंगीकार करीये ॥ तो बणता नही ॥
जो आत्मा सर्व कलनां तें रहित है ॥ अरु महा चैतन्य
आकाशरूप निर्मल है ॥ तिस कों जगत का बीज कैसे
मानीये ॥ बीज प्रणाम कर समुवाय कारण कों पावता
है ॥ आत्मा विषे समुवाय कारण अरु निमित्त कारण
कदाचित नहीं ॥ जैसे वंध्या स्त्री की संतान कदाचित न
ही होती ॥ तैसे आत्मा तें जगत कदाचित नही होता ॥ जो
समुवाय कारण अरु निमित्त कारण सहकारी विनां
पदार्थ भासे ॥ तो जाणीये ॥ जो इह है नही ॥ भ्रांति मात्र
भासता है ॥ आत्मसत्ता स्रिष्ट के उपजण विषे अरु लय
विषे भी अपणे स्वभाव विषे स्थित है ॥ आत्मसत्ता इस
प्रकार स्थित हूई ॥ तो कार्य कारण भ्रम कैसे होवे ॥ जो
कारण कार्य भाव न हूया ॥ तो पृथिवी आदिक तत कहां
ते उपजे कहीये ॥ उपजे नहीं ॥ अरु जो कारण कार्य मानी
ये ॥ तब पूर्व जो विकार कहे हैं ॥ तिनका दूषण आवता है
तांते न कोऊ कारण है ॥ न कोऊ कार्य है ॥ कार्य कारण वि
नां कोऊ पदार्थ भासे ॥ तिस कों सतरूप जाने सो मूर्ख
बालिक हैं ॥ उह विवेकतें रहित हैं ॥ तांते इह जगत न
आगे था ॥ न अब है ॥ न होवेगा ॥ स्वच्छ चिदाकाश सत्ता

अपणे आप विषे स्थित है। जो जगत का त्रिकाल अभा
व हूया। तब संपूर्ण ब्रह्म ही हूया। किंउ। जैसे समुद्र विषे
तरंग भासते हैं। तैसे आत्मा विषे जगत भासता है। अन्य
था कार्य कारण कोऊ नही। प्रागभाव अरु प्रध्वंसाभाव अ
रु अन्योन्याभाव कोऊ नही। प्रागभाव कहीये जो प्रथ
म न था। जैसे प्रथम पुत्र नही होता। अरु पाछे उत्पत होता
है। जैसे मृत्तका तें घट उत्पत होता है। अरु प्रध्वंसाभाव
कहीये। जो प्रथम होकर नष्ट होगया। जैसे घट था। अरु
नष्ट भया। अरु अन्योन्याभाव कहीये। घट विषे पट का
अभाव है। अरु पट विषे घट का अभाव है। एतीन प्रका
र का अभाव जिसके हृदे विषे है। तिस कर भी जगत दृढ
होता है। उसको शांति नही प्राप्त होती। जब जगत का अ
त्यंताभाव देखता है। तब चित्त शांतिवान होता है। सो जग
त का अत्यंताभाव इस युक्त विना और उपाव कर नही हो
अ ता। अरु जो ब जगत निवृत्त विना मुक्ति नही। सूर्य ते आदि
लेकर जेता कछु प्रकाश है। अरु पृथिवी आदिक तत्व हैं।
अरु क्षण मास वर्ष आदिक जो काल है। इह मय हो। इह मैं
रहे। अरु रूप अवलोक मनसकार इत्यादिक जगत स
न संकल्प मात्र है। कल्पत अरु कल्पक ब्रह्मा उ अरु ब्र
ह्मा विष्णु रुद्र इंद्र कीट तें आदि लेकर जेता कछु जगत
अंतर्ध्यान जाल है। सो उपज उपज कर लीन होजाता है। महाचैतन्य
आकाश विषे अनंत वस्तीऊ वर्तीयां है। जैसे जगत के पूर्व
शांत सत्ता थी। तैसे तें अब भी जान। अवर कछु हूया नही
प्रमाण का सहस्रवां भाग होवे। तिसकी न्याई सूक्षम चित्त की
कला है। तिस चित्तकला विषे अनंत कोटि सृष्टि स्थित हैं
उही चित्तकला जगतरूप होकर फुरती भासती है। निरा
कार प्रकाशरूप है। न उदे होती है। न अस्त होती है। न आ
वती है। न जाती है। जैसे सिला के अंतर रेखा होती है। तैसे
आत्मा विषे जगत है। सो आत्मरूप है। जैसे आकाश विषे

आकाश सत्ता फुरती है। तैसे आत्मा विषे जगत फुरता है। अरु
आत्मा ही विषे स्थित है। निराकार निर्विकार रूप विज्ञानघ
न सत्ता अपणे आप विषे स्थित है। उदे अस्त ते रहित है वि
चित्र रूप है॥ हे रामजी जो सहकारी कारण कोऊ न हूया। तो
जगत अन्य हूया किं उ॥ ऐसे जाणे ते सर्व कलंक कलना शां
ति हो जाती है॥ जो दीर्घ निद्रा विषे सोया हैं। तिसको जगाव
करके ज्ञान भूमिका कों प्राप्त होवे॥ तब निःशोक पद कों पावे
गा॥ ॥इति स्थित प्रकरणे स्मृतबीजो नाम सर्गः
॥२॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन महाप्रलय के अंत विषे
अरु सृष्ट के आदि जो प्रजापति होता है॥ सो जगत कों पूर्व की
स्मृत करके तिसी भांत रचता है॥ तो जगत स्मृतरूप किं उ न हो
वे॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी महाप्रलय के अंत विषे
अरु सृष्ट के आदि विषे जो प्रजापति होता है॥ अरु उह स्मरण
करके पूर्व की न्यांई जगत को रचता है॥ ऐसे मानीये तो बणता
नहीं॥ काहे ते जो महाप्रले विषे प्रजापति कहां रहता है॥ जो
आपही न रहे॥ तिसकी स्मृत कैसे कहीये॥ जो महाप्रलय
विषे प्रजापति भी रहता नहीं॥ तो तिसकी स्मृत कैसे होवे॥ जैं
से आकाश विषे वृक्ष नहीं होता॥ तैसे महाप्रलय विषे प्रजा
पति नहीं होता॥ श्रीरामोवाच॥ हे ब्राह्मण जगत के आदि
विषे जो ब्रह्मा था॥ तिसनें जगत कों रचा था॥ महाप्रले विषे
तिसकी स्मृत का नाश तो नहीं होता॥ सुषुप्त ते उठे की न्यांई ब
हुड़ स्मृत करके उसी प्रकार जगत कों रचता है॥ तो बणता
है॥ तुम कैसे कहते हो जो नहीं बणता॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥
हे सुभव्रत्ति रामजी महाप्रले के आदि विषे ब्रह्मादिक होते
हैं॥ अरु महाप्रले के अंत विषे सभ निर्वाण हो जाते हैं॥ अर्थ
इह। जो विदेह मुक्ति होते हैं॥ ब्रह्म तत्त्व विषे लीन होते हैं॥ जो
स्मृत करणे वाले लीन होते भए॥ तब स्मृत कहां रहती है॥ जो
स्मृत निर्मूल भई। तो जगत का कारण तिसकों कैसे कहीये
महाप्रलै तिसका नाम है॥ जहां सर्व शाष्ट्र अर्थ सहित नि

३

3

मूलहो जाते हैं ॥ जहां सर्व अंतर्ध्यान होगये ॥ तहां स्मृत किस
को कहीये ॥ तांते सर्व जगत चित्त के फुरणे मात्र है ॥ जब महाप्र
लय होती है ॥ तब यतन बिनास न मोक्ष भागी होते हैं ॥ जब आ
त्म बोध होवे ॥ तब जगत के होत्यें भी मोक्ष भागी होते हैं ॥ अरु
जो आत्म बोध नही होता ॥ तो जगत दृड हो जाता है ॥ निवर्त्त
नही होता ॥ जब दृश्य जगत का अभाव होवे ॥ तब स्वछ चे
तन्य सत्ता प्रकासती है ॥ सो आदि अंत तें रहित है ॥ जगत भी
रूप सन्मुख ही रूप भासता है ॥ अनादि सिध ब्रह्म तत्व ही प्रका
सता है ॥ तिस बिखे जो आदि संवेदन फुरी है ॥ सो ब्रह्मा है ॥
आतिवाहक देह विराट जगत हो भासता है ॥ तिसं का एक
प्रमाण रूप इह तीन जगत हैं ॥ तिस बिखे देश काल क्रिया
प्रमाण द्रव्य दिन रात्रि क्रम कृया है ॥ बहुड़ तिसके परमाणूं के अंतर
देहजगत गत पिंड फुरते हैं ॥ सो कैसा रूप है ॥ सभ संकल्प मात्र हैं ॥ ब्र
ह्म सत्ता का प्रकास है ॥ जो प्रबुध आत्मा ज्ञानवान हैं ॥ तिस
को सभ जगत एक ब्रह्म रूप भासता है ॥ अरु जो अज्ञानी
हैं ॥ तिसके चित्त बिखे अनेक प्रकार के जगत की भावना
है ॥ द्वैत भ्रम कर के उह पडा भटकता है ॥ जैसे इस ब्रह्मां
ड के अनेक जीव प्रमाण हैं ॥ तिन के अंतर अनेक स्त्रिष्टीं
हैं ॥ तैसे अवर जो अनेक स्त्रिष्टा हैं ॥ तिसके अंतर अवर
अनेक स्त्रिष्टीं फुरतीयां हैं ॥ सो ब्रह्म तत्व का प्रकास है ॥ जैं
से बहे थंभे बिखे सिलपी अनेक पुतलीयां कल्पता है ॥
तिसके अंतर अवर अनेक होवें ॥ तैसे प्रमाण प्रमाण के
अंतर त्रिलोकीयां स्थित हैं ॥ सो अभिन्न रूप हैं ॥ जैसे प
हाड के अंतर असंख्य प्रमाण होते हैं ॥ सो तिस सार्थ अ
भिन्न रूप है ॥ हे रामजी सूर्यों के समूह होवें ॥ तिनकी किर
णों बिखे त्रिसरेणु होते हैं ॥ तिनकी संख्या करणे को भी
कोऊ समर्थ होवे ॥ पर आदि अंत ते रहित जो आत्म रूप
सूर्य है ॥ तिस तें त्रिलोकी रूपी प्रमाणों की संख्या करणे
बेजलके कों कोऊ समर्थ नहीं ॥ जैसे समुद्र बिखे प्रमाण होते हैं ॥ जैसे

पृथिवी विषे धूड के प्रमाण होते हैं। सो असंख्य हैं। तैसे आ
त्मा विषे अनंत ब्रह्मांड स्थित हैं॥ जैसे आकाश शून्यरू
प है॥ तैसे आत्मा चिदाकाश जगतरूप है॥ इह जो मय तु
ज कों स्थिति कही है॥ जो तूं इन कों जगत नष्ट कर जाणे
गा॥ तब अज्ञान बुधि है॥ अरु दुःख नाम कों देणे हारी
है। अरु जब इन कों ब्रह्मशब्द का अर्थ कर जाणेगा॥ तब प
रम सार सुख कों पावेंगा॥ सर्व विश्व ब्रह्म तें फुरी है॥ सो
विज्ञानघन ब्रह्मस्वरूप है॥ द्वैत कछु हूया नहीं॥ जब
जागेंगा॥ तब तुज कों ऐसे ही भासेगा॥ ॥ इति स्थित
प्रकरणे जगत चिदानंद वर्ननं नाम सर्गः॥ ३ ॥ श्री
वसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इंद्रीयों का जो ग्राम है। तिस
को युध कर जीतणा॥ सो संसाररूपी समुद्र के पार करणे
को बेडा है॥ अर्थ इह जो इंद्रीयों का जीतणा मोक्ष का का
रण है॥ और किसी कर्म उपाव कर संसार समुद्र तरता न
ही जाता॥ सत शास्त्रों का विचारणा संतों का संग करणा
इस कर जब आत्मतत्व का बोध होता है॥ तब इंद्रीयों का
जीतणा होता है॥ अरु जगत का अत्यंताभाव होजाता है
जब लग संसार का अत्यंताभाव नहीं होता॥ तब लग आ
त्मा का बोध नहीं होता॥ इह मय तुज कों क्रम कहा है॥ सो
इह संसार समुद्र के तरणे का उपाव है॥ वडुते कहणे क
रक्या है॥ सर्व कर्मों का बीज मन है॥ मन के छेदणे तें सब
जगत का छेदण होता है॥ जब मनरूपी बीज नष्ट होता
है॥ तब जगतरूपी अंकुर भी नष्ट होजाता है॥ सर्व जगत
मन ही का रूप है॥ इस ही के अभाव का उपाव करो॥ मली
न मन तें अनेक जन्मों के समूह उत्पत होते हैं॥ इस के जी
तणे तें सर्व लोकों विषे जय होती है॥ सभ जगत मन कर
के हूया है॥ मन तें रहित हूए देह भी नहीं भासती॥ जब म
न तें दृश्य का अभाव होजाता है॥ तब मन भी मृतक होजा
ता है॥ और उपाव कोऊ नहीं॥ हे रामजी मनरूपी पिशाच है

४ तिसका नास ग्रवर किसीउपावकर नहीहोता ॥ अनेक कल्पबीतगए हैं ॥ अरु बीतजावेंगे तब भीनाश्न नहीहोता ॥ तातें जबलग अविद्या है तबलग इसकाउपावकरो उपाव इह है जो जगतका असत्ता भावचितवणा अरुस्वरूपका अभ्यास करणा इह परम औषध है ॥ इस उपावकर मनरूपी दुष्ट नष्ट होजाता है ॥ जबलग मन नष्ट नहोवे तबलग मनके मोह कर जन्ममरणकों पावे ॥ जब ईश्वर परमात्मा की प्रसन्नता होती है ॥ तब मन बंधनतें मुक्ति होता है संपूर्ण जगत मनके फुरणेकर नासता है ॥ जैसे आकाश्न विषे शून्यता नासती है ॥ जैसे गंधर्वनगर नासता है ॥ तैसे संपूर्णजगत मनविषे नासता है ॥ जैसे पुष्पों विषे सुगंध रहती है ॥ जैसे तिलों विषे तेल रहता है ॥ जैसे गुणी विषे गुण रहते हैं ॥ तैसे इह सर्वजगत मन विषे रहता है ॥ जैसे समुद्र विषे तरंगफुरता है ॥ तैसे चित्त विषे जगत फुरते हैं ॥ जैसे सूर्य की किरणों विषे प्रकाश है ॥ जैसे अग्नि विषे उष्णता है ॥ तैसे मन विषे जगत है ॥ जैसे बरफ विषे शीतलता है ॥ जैसे आकाश विषे शून्यता है ॥ जैसे पवन विषे चंचलता है ॥ तैसे मन विषे जगत है ॥ संपूर्ण जगत मन है ॥ अरु मनही संपूर्ण जगत है ॥ परस्पर इह एकरूप हैं ॥ दोनों विषे एक नष्ट होवे ॥ तब दोनों नष्ट होजाते हैं ॥ जगत नष्ट होवे तब मन भी नष्ट होजाता है ॥ जब मन नष्ट होता है ॥ तब जगत भी नष्ट होजाता है ॥ ॥ इति स्थितप्रकरणे स्थितअंकुरवर्ननं नाम सर्गः ॥ ४ ॥ रामोवाच ॥ हे भगवन सर्वधर्मों के वेत्ता पूर्वापर के ज्ञाता ॥ मनके फुरणे कर के इह जगत कैसे फुरणता कों प्राप्त हूआ है ॥ जैसे प्राप्त हूआ है ॥ तैसे दृष्टांत करकेमुजकों कहो ॥ ॥ वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जैसे इंद्र ब्राह्मण के पुत्रों की दशा स्थित होतभई ॥ अरु दशांही ब्र

त्मा होता भया हैं॥ सो मन के फुरणे तें उपजकर मन के फुरणे
विषे इस्थित भया हैं॥ जैसे लवण राजा कों इंद्रजाल की
माया करके चंडाली की प्रतिभा दृढ होती भासी॥ तैसे इह
जगत मन विषे इस्थित भया है॥ जैसे भार्गव शुक्र जी मन
के फुरणे कर चिरकाल स्वर्ग कों भोगता रहा॥ अरु अव
र अनेक भोग देखे॥ सो मन का भोग दृढ होता भया॥ तैसे इ
ह जगत मन के भ्रम करके स्थित भया है॥ श्रीरामोवाच
॥ हे भगवन भृगु ऋषीश्वर का पुत्र मन के भ्रम करके
कैसे स्वर्ग सुख भोगे हैं॥ अरु कैसे भोगों का अधिपति हू
या है॥ अरु कैसे संसारी होकर भ्रम कों देखता भया है॥
॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी भृगु के पुत्र का वृतांत सु
ण॥ भृगु अरु काल का संवाद मंदराचल पर्वत विषे
हूया है॥ एक काल मों भृगु अरु शुक्र दोनों मंदराचल
पर्वत विषे थे॥ चंद्रमा की न्याई शुक्र का मुख है॥ अरु
बहु प्रकाश करके शोभता है॥ अरु भृगु जी बडा उदारात्मा
है॥ सो भी तहां स्थित है॥ जहां महा कल्पवृक्ष अरु मंदार
वृक्षादिक बहुत सुंदर स्थान दिव्य मूर्ति हैं॥ तहां भृगु
जी तप करे॥ अरु शुक्र जी टहल करे॥ एक समे भृगु जी
निर्विकल्प समाधि विषे स्थित था॥ तब निर्मल मूर्ति शु
क्र जी एकांत जा बैठा॥ कंठ विषे मंदार कल्पवृक्षों के फू
लों की माला पहिरी हूई है॥ सो शुक्र विद्या अरु अविद्या
के मध्य विषे स्थित था॥ जैसे त्रिसंकु राजा चंडाल था॥ वि
श्वामित्र के वर कों पाकर स्वर्ग कों गया॥ तब देवतों अना
दर अपमान कीया॥ स्वर्ग तें गिरा दीया॥ जो इह चंडाल है
तब विश्वामित्र देखकर कहा॥ जो ईहां ही रहो॥ तब उह
भूमि अरु आकाश के मध्य विषे रहा॥ तैसे शुक्र जी बैठा
है॥ एक अप्सरा नाम महा सुंदर स्वर्ग मार्ग को चली जावे॥ ति
स की ओर देखता भया॥ जैसे लक्ष्मी की ओर विष्णु जी दे
खे॥ तैसे देखता भया॥ जो महा सुंदर अनेक प्रकार के

भूषणोंपहिरेहूयेहैं ॥ अरुदिव्यवस्त्रहैं ॥ अरुमहासुगंध
तिसकरआकाशमार्गभीसुगंधितभयाहै ॥ पवनजोस्प
र्शकरतिसकोचलताहै ॥ तिसकरसुगंधपसरीहै ॥ अरुम
हामदकरउसकेलोचनघूर्मेहैं ॥ ऐसीअपसराकोदेख
करशुक्रकामनमोहायमानहूया ॥ जैसेपूर्णमासीकेचं
द्रमाकोंदेखकरक्षीरसमुद्रमोहायमानहोताहै ॥ तैसेउ
सकीवृत्तिऔरमार्गतेंरहितहोकरअपसराविषेजाइ
स्थितभई ॥ कामदेवकाजोकोउबाणहै ॥ समस्तकरणा
सोआनलागा ॥ ॥ इतिस्थितप्रकरणेभार्गवउपा
ख्यानेभार्गवस्मृतवर्ननंनामसर्गः ॥ ५ ॥ श्रीवसि
ष्ठोवाच ॥ हेरामजीउसअपसराकोंदेखकरनेत्रोंकों
मूंदतभया ॥ नेत्रोंकोंमूंदकरमनोराजकोपसारतभया
चिंतवनेलागा ॥ जोइहललनामृगनयनीस्वर्गकोगई
है ॥ मयतिसकेनिकटजाप्राप्तहोवों ॥ ऐसेविचारकर
उसकेपाछेंचला ॥ जातेजातेंमनकरकेस्वर्गकोजाप्रा
प्तभया ॥ तहांमंदारवृक्षकल्पतरफूलोंकोंसुगंधसहितदे
खतभया ॥ ऐसेदेवतेदेखे ॥ जिनकेसुंदरसरीरस्वर्णकी
न्यांईहैं ॥ हासविलाससंयुक्तस्त्रीयांमृगाकीन्यांईजिनकेने
त्रहैं ॥ सोदेखीयां ॥ मणीकेसमूहदेखे ॥ अन्योन्यपरस्परउ
नविषेप्रतिबिंबपडतेहैं ॥ विश्वरूपकीउपमास्वर्गविषेदे
खी ॥ अरुमंदमंदपवनचलताहै ॥ मंदारवृक्षोंसाथमंजरी
प्रफुलितहैं ॥ तहांइंद्रकेबागविषेअपसराकेगणविचर
तेहैं ॥ तबआगेंगया ॥ तोऐरावतहस्तीवडेमदसोंमत्ताख
डाहै ॥ जिसनेंयुधकरकेदैत्यदंतोविषेचूर्णकीयेहैं ॥ अ
रुदेवतोंकेआगेंअपसरागायनकरतीहैं ॥ अरुस्वर्ण
केकमलखिलेहूएहैं ॥ तहांब्रह्माकेहंसअरुमोरसारसपखी
विचरतेहैं ॥ अरुगंगाजीकाप्रवाहचलताहै ॥ देवतोंकेना
यकतहांविश्रामकरतेहैं ॥ वडेवडेलोकपालोंकेस्थान
देखे ॥ यमचंद्रमासूर्यइंद्रवायुअग्निवरुणकुबेरसम

लोकपालदेखतभया॥ जिनकामहाज्वालाकीन्याईप्रकाश
है॥ ऐसेदेवतेदेखे॥ ऐरावतदेखे॥ तिनकेदंतोविषेदेसों
कीपंक्तिपड़ीहूईहै॥ आगेंदेवतेदेखे॥ विवानोंपरआरूढ
फिरतेहैं॥ सूखलोंसहितसुंदरविवानोंकीपंक्तिविचरतीहै
कहूंमंदारवृक्षहैं॥ कहूंकल्पवृक्षहैं॥ तिनसाथसुंदरव
लीहै॥ गंगाजीकाप्रवाहचलाजाताहै॥ तहांअपसरागण
बैठेहैं॥ अरुसुगंधसहितपवनचलताहै॥ कहूंझरणोंते
जलचलताहै॥ सुंदरनंदनवनहै॥ कहूंनारदादिकबैठेहैं
अरुजिनोंलोकोंपुन्यकीयेहैं॥ सोबैठेसुखभोगतेहैं॥ अरु
विवानोंपरआरूढफिरतेहैं॥ अरुअवरअनेकप्रकार
कीसुंदररचनांदेखी॥ इसप्रकारमनकरकेभृगुजीस्वर्ग
कीरचनांदेखतभया॥ कैसीरचनांदेखी॥ मानोत्रिलोकीकी
रचनांइहांहीहै॥ तबइंद्रभृगुकोंदेखकरउठखड़ाहूया
अरुहाथगहणकरकेअपणेपासबैठाया॥ अरुकहते
भया॥ हेभृगुजीआजहमधंन्यहैं॥ जोतुमाराआगमनभ
याहै॥ हमारास्वर्गआजसफलअरुनिर्मलभयाहै॥ तुमारे
आवणेसों॥ अबतुमचिरपर्यंतइहांस्थितहोवो॥ जबऐ
सेइंद्रकहा॥ तबभृगुजीशोभताभया॥ तिसकोंदेखकर
सुरोंकेसमूहप्रणामकरतभए॥ जोभृगुकापुत्रभृगुजीआ
याहै॥ हेरामजीइसप्रकारभृगुजीमनकरकेइंद्रपासजा
बैठा॥ ॥इतिस्थितिप्रकरणेभार्गवमनोराजव
र्णननामसर्गः॥ ६ ॥श्रीवसिष्ठोवाच॥ हेरामजीजब
इसप्रकारभृगुजीइंद्रपासजाबैठा॥ तबअपणाजोकोऊ
निजभावथा॥ तिसकोंभूलगया॥ अरुवासनांकरकेमनो
राजकासरीरदृढहोगया॥ एकमहूर्तपर्यंतइंद्रकेपासबै
ठारहा॥ परचित्तउसकाअपसराविषेरहा॥ तिसकेअनंत
रउठखड़ाहूया॥ स्वर्गकोंदेखणेलागा॥ तबदेवतोंकहा॥ च
लोजीस्वर्गकीरचनांदेखो॥ तबभृगुजीदेखतेदेखतेतहां
गए॥ जहांउअपसराथी॥ औरबहुतअपसराथी॥ तिन

6

विषे उह बैठा थी ॥ जिनके मृग की न्याई नेत्र हैं ॥ तिसकों शुक्र
जी देखा ॥ जैसे चंद्रमा चांदणी कों देखे ॥ तैसे देखकर शुक्र
जी का सरीर द्रवीभूत होत भया ॥ पघारे कर पूर्ण होत भया
जैसे चंद्रमा कों देखकर चंद्रकांति मणि द्रवीभूत होती है
तैसे सरीर होत भया ॥ कामदेव के जो कोऊ बाण हैं ॥ सो ति
नके रिदे विषे आन लागे ॥ तिस कर आकुल हो गया ॥ अरु
शुक्र जी को देखकर अपत्सरा का चित्त भी मोहित भया ॥
अरु शुक्र विषे भी उसकें काम का बाण आन लागा ॥ उह
भी काम कर पूर्ण हो गई ॥ जैसे वर्षा काल की नदी जल कर
पूर्ण होती है ॥ परस्पर स्नेह बढ गया ॥ तब शुक्र जी मन कर
के तम को रचता भया ॥ तब सर्व स्थानो विषे तम हो गया ॥ जै
से लोकालोक पर्वत के तट विषे तम होता है ॥ सूर्य का प्रकाश
अभाव हो गया ॥ सब भूत जात अपणे अपणे स्थानों कों ग
मन करते भए ॥ जैसे दिन के अभाव हूए पशु पंखी अपणे अ
पणे गृह कों गमन करते हैं ॥ तैसे तम के होणे कर सब ने चलते
रहे ॥ तब उह अपत्सरा शुक्र जी के निकट आई ॥ शुक्र जी
आसन पर बैठ गए ॥ अपत्सरा भी चरणों के निकट बैठ गई
सुंदर वस्त्र अरु भूषण पहिरे हूये हैं ॥ स्नेह कर के दोनों का
म के वस हूए हैं ॥ अपत्सरा मधुर कोमल बिलासनी बाणी क
र कहत भई ॥ हे नाथ मय निर्बल हो कर तुमारी सरनें आई
हों ॥ मुजकों कामदेव हनन करता है ॥ ताते तुम रक्षा करो ॥ म
य इस कर पूर्ण हो गई हों ॥ स्नेह रूपी जो रस है ॥ तिसकों को
ई जानता है ॥ जिसकों प्राप्त भया है ॥ जिसकों इसका स्वाद न
हीं आया ॥ सो क्या जाणे ॥ हे साध ऐसा सुख त्रिलोकी विषे को
ऊ नहीं ॥ जैसा सुख परस्पर स्नेह विषे होता है ॥ अब तुमारे
चरणों कों पाकर आनंदमान हूई हों ॥ जैसे चंद्रमा को पाकर
कमलनी आनंदमान होती है ॥ तैसे मुजकों तुमारे स्पर्श कर
आनंद होवेगा ॥ जब इस प्रकार अपत्सरा बारंबार कहा ॥ त
ब दोनों काम के वस होकर भोग चेष्टा विषे लागे ॥ ॥ इति

अंबर

स्थितप्रकरणे भार्गवोपाख्याने संगमनामसर्गः
॥७॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इस प्रकार तिस कौं
पाकर शुक्रजी ऽ साथ कौं ऽ आनंद मान मानत भया ॥ मंदार
वृक्ष ऽ अरु कल्पवृक्ष के नीचे क्रीडा करें ॥ दिव्य भूषण व
स्त्र ऽ अरु फलों की माला पहिरें ॥ चंद्रमा की किरणों सों ऽ अं
मृत पान करें ॥ स्वर्ग विषे विद्याधरों साथ विचरें ॥ नंदन
वन इत्यादिक स्थानों विषे क्रीडा करें ॥ कैलाश पर्वत वि
षे क्रीडा करें ॥ बहुड लोकालोक पर्वत विषे क्रीडा करें ॥
मंदराचल पर्वत विषे क्रीडा करें ॥ ~~[illegible]~~ स्वेतद्वी
प विषे रहें ॥ इंद्र के नंदनवन विषे रहे ॥ बत्तीस युगपर्यंत
स्वर्ग विषे रहे ॥ जब पुण्य क्षीण हूए ॥ तब भूमि लोक विषे
गिडारीये ॥ गिडतें गिडते देवतों के सरीर छूट गए ॥ जैसे
सूरले विषे जल होवे ॥ तैसे सरीर ऽ अंतर्धान होगए ॥ तब चिं
ता सहित उनकी पुर्यष्टका ऽ आकाश विषे निराधार होरही
जैसे पंखी ऽ अपले ऽ आलये विनां स्थित होवे ॥ तैसे उनकी पु
र्यष्टका चिंतासहित निराधार भई ॥ तब वासनां रूप दो
नो चंद्रमा की किरणों विषे जा स्थित भए ॥ बहुड किरणों द्वा
रा धान्य विषे ऽ आन निवास कीया ॥ तब दसारण नाम ब्रा
ह्मण था ॥ तिसनें धान कौं भोजन कीया ॥ तब उह चावल
वीर्य होकर ब्राह्मणी के गर्भ विषे जा रहा ॥ ऽ अरु उहां माल
वा देश का राजा भोजन करत भया ॥ तिसके वीर्यमार्ग कर
स्त्री के उदर विषे जा स्थित हूया ॥ तब दसारण ब्राह्मण के
गृह विषे शुक्र पुत्र हूया ॥ ऽ अरु उह मालवा देश के राजा
की पुत्री भई ॥ तब क्रम कर के बडी भई ॥ जब षोडश वर्ष
की पिता के गृह विषे योवनवान भई ॥ तब शंकर महादेव
की पूजा करत भई ॥ जो हे देव मुझ कौं पूरव भरता की प्राप्त
होवे ॥ इस प्रकार पूजन करके वर मांगे ॥ ऽ अरु उहां उह यो
वनवान हूया ॥ ऽ अरु उहां उह योवनवान होई ॥ तब राजे य
त्न का ऽ आरंभ कीया ॥ तिस विषे सभ राजा ब्राह्मण ऽ आए ॥ द
सारण ब्राह्मण पुत्र सहित ऽ आया ॥ तब राजपुत्री पूर्व जन्म के

7 भरता को देखा ॥ जैसे चंद्रमा को देखकर चंद्रकांतम
णि द्रवीभूत होती है ॥ तैसे राजकंन्या होगई ॥ स्नेह पू
र्ण करके नेत्रों तें जल चलने लागा ॥ तब राजकंन्या दे
सारण के पुत्र को देखकर फूलों की माला तिनके कंठ
विषे डार दीनी ॥ उसको भरता कीया ॥ तब यह विषे दे
खकर राजा आश्चर्यमान हूया ॥ अरु निश्चा कीया जो
भला हूया ॥ बहुड क्रम करके विवाह कीया ॥ तब राजा
पुत्री अरु घवाई को राज देकर आप तप करणे के निमि
त्त वन को चलता रहा ॥ अरु ई हो स्त्री पुरुष मालवा दे
श का राज करणे लागे ॥ चिरकाल पर्यंत राज करते र
हे ॥ बहुड दोनो वृध भए ॥ सरीर जर्जरीभूत हो गए ॥ तब
तिसको सरीर विषे वैराग्य हूया ॥ कहिणे लागा स्त्री महां
दुःखरूप है ॥ सो दुःखरूप अवस्था को देखकर समा
न वैराग्य उपजा ॥ विशेष न हूया ॥ जर्जरीभूत अंगों कर वि
षय सेवने तें रहित भए ॥ परंतु त्रिष्णा निवृत्त न भई ॥ राजा
मृत्यु अवस्था को प्राप्त हूया ॥ बोध को जल्ला दीया ॥ ज्ञान
को प्राप्त विना अंधकूप मोह विषे जा पडा ॥ हे रामजी मृ
त्यु मूर्छा के अनंतर तिसको परलोक भास आया ॥ त
हां कर्मों के अनुसार सुख दुःख को भोगकर अंगनों दे
स विषे भीवर हूया ॥ तहां अपणे भीवरों के कर्म कर्ता रहा
जब वृध अवस्था आई ॥ तब सरीर विषे वैराग्य हूया
जो इह सरीर महां दुःखरूप है ॥ ऐसे जानकर सूर्य भग
वान का तप करणे लागा ॥ जब मृत्यु कंन्या ॥ तब तप के
कर्म तें सूर्यवंश विषे राजा भया ॥ सो भावना के वश तें क
छुइक ज्ञानवान हूया ॥ यत्न करे ॥ अरु वेद पडे ॥ यत्न की
भावना कर जो सरीर छूटा ॥ तब ब्रह्मगुरु हूया ॥ सर्व को
उपदेश करे ॥ मंत्रसिध कर्तन या ॥ वेदों विषे परपक्क हू
या ॥ तब मंत्रों के बस तें विद्याधर हूया ॥ चिरकाल पर्यंत
विद्याधरों विषे रहा ॥ जब एक कल्प बीता ॥ अरु कल्प की

अंतभया॥ समसरीरअंतरध्यानहोगया॥ इनकापव
नरूपीसरीरवासनासहितहोरहा॥ जबब्रह्माकीरा
त्रक्षयहूई॥ अरुदिनहूया॥ वहुडस्रिष्टरची॥ तबमुनी
श्वरकेगृहविषेपुत्रहूया॥ तहांवहतपकर्तेभया॥ बहु
डसुमेरपर्वतपरजास्थितभया॥ मन्वंतरपर्यंतऊहांर
हा॥ तबइकहत्तरचौकड़ीव्यतीतभई॥ तहांतिसतेंभो [इतर अनेक जनम]
गकरहरनीकापुत्रहूया॥ अैसेसरीरकोत्यागकरब
हुडमानुषकासरीरधारता॥ पुत्रकेस्नेहकरमोहकोंप्रा
प्तभया॥ जोइसमेरेपुत्रकोंधनअरुगुणआर्बलाबहुतं
होवे॥ निरंतरहीचितवनांकरणेलागा॥ इसकारणवे
रअपणेतपधर्मतेंविरक्तहूया॥ आर्बलाक्षीणभई॥
मृत्युरूपसर्पनेंग्रासलीया॥ तपकेबलकरसरीरछूटा
तबभोगोंकीचिंतासहिततमंदरदेशकेराजाकेगृह
विषेपुत्रहूया॥ तिसदेशकाराजाभया॥ चिरपर्यंतराज
भोगकरवृधअवस्थाकोंप्राप्तभया॥ सरीरजर्जरीभाव
होगया॥ बहुडतपस्वीकेगृहविषेपुत्रहूया॥ अबसंता
पतेंरहितहोकरगंगाजीकेकिनारेतपकर्त्ताहै॥ हेराम
जीइसप्रकारमनकेभ्रमकरकेसुक्रजीअनेकसरीरों
कोंधारताभया॥ ॥इतिस्थितप्रकरणेभार्गवउप
ख्यानेविविधजन्मवर्ननंनामसर्गः॥ ८ ॥श्रीव
सिष्टोवाच॥ हेरामजीसुक्रजीअनेकजन्मनके
भ्रमकरभोगताभया॥ तबभृगुकेपासजोसरीरथा
सोनिर्जीवहोगया॥ अरुपुर्यष्टकानिकसगई॥ पव
नअरुधूपकरकेसरीरजर्जरीभूतहोगया॥ जैसेमू
लतेंकाटाव्रक्षगिरपडताहै॥ तैसेसरीरगिरपडा॥
मनजोचंचलहै॥ सोभोगोंकीतृष्णाविषेवहिगया॥ जैं
सेहरणवनविषेभ्रमताहै॥ जैसेचक्रचढायावासन
भ्रमे॥ तैसेभ्रमतेंभ्रमांतरकोंदेखताभया॥ अरुजब
मुनीश्वरदेहकोंपाया॥ तबचित्तविश्रामविषेहूया॥ [प्रापत]
गंगाजीकेतटपरतपकरणेलागा॥ मंदराचलवाला

सरीरनीरसहोगया॥ अस्थिचर्ममात्ररहिगया॥ अर
लकूसकगया॥ सरीरकेरंध्रों मार्गकरपवनचले।त
बबांसरीवतशब्दहोवे॥ मानोशरीरचेष्टाकोंत्यागक
रआनंदमानहूयाहे॥ जबवन्हपवनचले।तबलो
टणेलागे॥ नेत्रआदिकजोरंध्रथे।सोगर्तवतहोगए
अरुमुखपसरगया॥ मानोंअपणेपूर्वसरीरकोंदेख
करहसताहे॥ जबवर्षाकालआवे।तबजलकरपूर्ण
होजावे॥ जलतिसविषेप्रवेशकरकेरंध्रोंकेमार्गनि
कसजावे॥ जैसेझरणेसोंजलनिकसजावे॥ जबउष्म
कालआवे॥ तबधूपकरसूकजावे॥ परमृगपंखीउस
कोंभक्षणनकरें॥ इसकारणतेंजोभृगुजीमहातपस्वी
तेजवानहैं॥ तिसकेनिकिटकोऊआइनसके॥ इस
कारणतेंदेहकोंनष्टनकरें॥ ईहांसरीरकीइहअव
स्थाभई॥ अरुउहांभृगुकपवनकेसरीरकरचेष्टाक
रतेभया॥ ॥इतिस्थितप्रकरणेभार्गविकलेवर
वर्ननेनामसर्गः॥ ९ ॥श्रीवसिष्टोवाच॥ हेरामजी
जबदिव्यसहस्रवर्षव्यतीतभया॥ भृमलोककेतीन
लाखआठसहस्रवर्षहूया॥ तबभगवानभृगुजीसमा
धतेंउतरे॥ देखतेभए॥ जोभृगुजकासरीरअपणेआगे
दृष्ट नआया॥ तबनेत्रपसारकेंभलीप्रकारदेख्या॥ जो
सरीरकृष्णहोकरगिरपडाहे॥ जानतभया॥ जोकालइ
सकोंभक्षणकीयाहे॥ सरीरधूपमेंघकरजर्जरीहोग
याहे॥ अरुनेत्रटोएरूपहोगएहैं॥ सरीरविषेकीटऊंआ
नप्रवेशकीयाहे॥ श्वेतदंतनिकसआएहैं॥ मानोसरीर
कीदसाकोंदेखकरहसतेहैं॥ मुखगीवासर्वअंगदेखि
[illegible]होगएहैं॥ वायुचलेतबबांसरीवतबाजणे
लागतेहैं॥ आडोंतारोंकीन्याईहोगएहैं॥ मानोरागद्वेष
तेंरहितहोकरस्थितभयाहैं॥ सरीरकाइहदसादेखके

रघुनाथजी उठखडे हूए॥ क्रोधपूर्ण होकर कहते लागे॥
जो कालनें क्या समझा है॥ जो मेरे पुत्र कों मारता है॥ एक
परम तपस्वी सिष्टपर्यंत रहणा था॥ सो विनां काल किउ
मारता है॥ इह कौन बात है॥ मय काल कों स्राप देता हों॥ अ
रु भस्म करता हों॥ काहे ते जो मेरे पुत्र कों समे विनां मारता
है॥ तब कालजो काल है॥ सो अधिभौतिक सरीर कों धा रूप
रकर षटमुख अरु षटभुजा कों धारकर आया॥ हाथों
विषे खड्ग अरु त्रिशूल फासी अरु कानों विषे मोताप
हिरे हूए॥ मुख तें ज्वाला पडी निकसे॥ अरु त्रिशूल
के अग्र तें लाटां पडी निकसती हैं॥ जैसे प्रलय काल की अग्निकी
अग्नि तें धूम्र धूम निकसता है॥ तैसे धूम्र सरीर पहा
ड की न्यांई उग्र (त्र्यानक) रूप है॥ जहां चरण राखेत हो पृथ्वी पह
ड कंपने लागे॥ महान यानक रूप काल भगवान रघु
रूपीश्वर के निकट आया॥ जो महाप्रलय के समुद्र व करोच्य कर
त पूर्ण था॥ रघुनाथ तिस कों कहत भया॥ कालोवाच
हे मुनीश्वर जो मर्यादा के वेता हैं॥ अरु परमात्मा परावर
के वेता हैं॥ पर कहीए ब्रह्मादिक देवता॥ अवर कहीए
मानुषादिक॥ सो तिस परावर मयं समं व्यापक परमात्मा
कं वेता हैं॥ सो पुरुष क्रोध कों नहीं प्राप्त होते॥ जो कोउ क्रो
ध करते कों आवे॥ तब भी मोह के वस होकर क्रोध कों
नहीं प्राप्त होते॥ तुम काहे कों मोहित होए हो॥ क्रोध कों प्रा
प्त होए हो॥ तुम ब्राह्मण तपस्वी हो॥ अरु हम नेत के पालि
क हैं॥ हमारे कर तुम पूजने योग्य हो॥ इह नेत है॥ अरु तें
तप के बल कर हो नमतकर॥ तेरे स्राप कर मय भस्म नहीं
होता॥ प्रलै काल की अग्नि भी मुझ कों नहीं जलावती॥ तब
तेरे स्राप कर मय कब भस्म होता हैं॥ हे मुनीश्वर मय तो
कोटि ब्रह्मांड ने नृण कीये हैं॥ अरु केई अनेक रुद्र ग्रास
लीए हैं॥ अरु केई कोटि विष्णु ग्रास लीए हैं॥ कई कोटि ब्र
ले ग्रास लीए हैं॥ तेरा स्राप मुझ को क्या कर सकता है॥ जैं
से आदि नेत ईश्वर रची है॥ तैसे ही स्थित है॥ हम सनके

भोक्ता ह्रए हैं ॥ हे मुनीश्वर अग्नि स्वभाविक ऊर्ध्व कों जा
ती है ॥ अरु जल स्वभाविक अधः को जाता है ॥ अरु भो
ग हैं ॥ सो भोक्ता कों प्राप्त होते हैं ॥ तातें सब क्लिष्ट काल के
मुख में प्राप्त होती है ॥ आदि परमात्मा की नेत ऐसे हुई
है ॥ जैसे रची है ॥ तैसे ही स्थित है ॥ अरु जो निःकलंक दृ
ष्ट कर देखें ॥ न कोऊ मारता है ॥ न कोऊ मरता है ॥ न को
ऊ भोग है ॥ न कोऊ भोक्ता है ॥ न कोऊ कार्य है ॥ न कारण
है ॥ एक अद्वैत सत्ता ही भासती है ॥ जो अज्ञान कलंक दृ
ष्ट कर देखें ॥ तो कर्ता भोक्ता अनेक प्रकार के नाम भास
ते हैं ॥ हे मुनीश्वर कर्ता भोक्ता आदि जो नाम है ॥ सो अस
म्यक ज्ञान कर होता है ॥ जब सम्यक ज्ञान हूया ॥ तब
कर्ता भोक्ता कारण कार्य कोऊ नहीं ॥ जैसे वृक्ष सो पत्र पु
ष्प स्वभाविक उपज आवते हैं ॥ अरु स्वभाविक नष्ट
हो जाते हैं ॥ तैसे भूत प्राणी फुर आवते हैं ॥ बहुड स्वभा
विक नष्ट हो जाते हैं ॥ अज्ञानी उत्पत्त कर्ता है ॥ बहुड नष्ट
कर्ता है ॥ जैसे चंद्रमा का प्रतिबिंब जल विषे पडता है
जल के हलणे कर प्रतिबिंब हलता है ॥ जल के ठहिर
णे कर प्रतिबिंब ठहरता है ॥ तैसे मन के फुरणे कर आ
त्मा विषे कर्तृत्व भोक्तृत्व भासता है ॥ वास्तव तें कछु न
हीं ॥ मन के फुरणे कर जीवों विषे भी कर्तृत्व भोक्तृत्व भा
सते हैं ॥ जैसे जेवडी विषे सर्प भ्रम कर के भासता है ॥ तै
से आत्मा विषे कर्तृत्व भोक्तृत्व भासता है ॥ तातें क्रोध म
त कर इह दुष्ट कर्म आपदा का कारण है ॥ हे मुनीश्वर
मध्य तुझ को इह वचन कहता हों ॥ सो अपणी बिभुता अ
भिमान कर नहीं कहता ॥ इह स्वभाविक ईश्वर की नै
त है ॥ तिसी विषे हम स्थित हैं ॥ जो बुधिवान पुरुष हैं ॥
सो अपणे प्रकृताचार विषे विचरते हैं ॥ जो कर्तव्य के
वेता हैं ॥ सो बाह्य प्रकृताचार कों करते हैं ॥ जैसा आन प्रा
प्त होवे ॥ तैसा करते हैं ॥ अरु अंतर तें सुषुप्तवत स्थित हैं
उह तो न दृष्ट कहतो ॥ अरु उह धैर्यता उदारता कहतो ॥ जो

शास्त्रों कर प्रसिध है॥ तुम किंउ अंधकी न्याई मोह मार्ग वि
षे मोहित होते हो॥ हे साधु तें त्रिकालदरसी हैं॥ अविचा
रकर के मूर्खों की न्याई जगत जंत्र विषे मोह कौं किंउ प्रा
प्त होता हैं॥ तेरा पुत्र तौ अपणे कर्म के फलकौं पावता भया
है॥ अरु तें मूर्खौं की न्याई मुझ कौं स्राप दीया चहता हैं॥ हे
मुनीश्वर इस लोक विषे जीवौं के दो दो सरीर हैं॥ एक मन रू१
है। दूसरा आधिभौतिक है। सो अत्यंत क जड विनासी है॥
जहां इसकौं मन प्रेरता है॥ तहां चल्या जाता है॥ आपतें क
छु कर नहीं सकता॥ जैसे सारथी भला होता है॥ तब रथ कौं
भले स्थान कौं ले जाता है॥ अरु जो भला नही होता॥ तो रथ
कौं दुःख के स्थान मों जा डारता है॥ जिसकौं मन असत क
रता है॥ तिसकौं असत जाणता है॥ अरु जिसकौं सत दिखा
वता है॥ तिसकौं सत मानता है॥ जैसे बालिक माटी की मा
टी की सेना बणावता है॥ वहु डनष्ट करता है॥ कबहूं सत
करता है॥ कबहूं असत करता है॥ जैसे करता है॥ तैसे देख
ता है॥ हे साधु इह चित्त रूपी पुरुष है॥ जो चितवन करता है॥
सोई होता है॥ जो चितवन ही करता॥ सो नही होता॥ इह जो
फुरणा है॥ इह देह है। इह नेत्र हैं। इह सिर है। इह अंग
है। इत्यादिक शब्द मन ही रूप हैं॥ जीव भी मन ही का ना
म है॥ मन की जीवना जीव है॥ उही मन की वृत्ति निश्चे रूप
होती है॥ तिसका नाम बुधि होता है॥ अहं रूप कौं धारता
है॥ तब तिसका नाम अहंकार होता है॥ जब स्मरण करता
है॥ तब तिसका नाम चित्त होता है॥ तातें स्वरूप कौं जा
नहीं॥ मन का फुरणा ही द्वैत रूप हो भासता है॥ सोई आधि
भौतिक हो जाता है॥ जब सरीर की भावनां कौं त्यागता है॥
तब चित्त परमपद कौं प्राप्त होता है॥ जेताक छु जगत है
सो सब मन के फुरणे विषे स्थित है॥ जैसा मन का फुरणा
होता है॥ तैसा रूप हो भासता है॥ तेरा पुत्र शुक्र जो था॥ सो
अपणे मन के फुरणे कर अनेक अवस्था कौं प्राप्त भया॥

अपछरा

है॥ जब तुम समाधि विषे स्थित हूये थे॥ तब विश्वाची देव
सुंदरी चली जाती थी॥ तिसकों देखकर उसके पाछे चला
गया है॥ इंद्र के लोक स्वर्ग कों जा प्राप्त भया॥ देवता होकर
मंदारवृक्ष पारजात नंदनवन विषे विचरता रहा है॥ बत्री
सयुग पर्यंत विश्वाची देव अपछरा साथ विचरता रहा है
सेवता रहा है॥ जैसे भ्रमरा कमलों कों सेवता है॥ तैसे सेवता
भया॥ जब पुण्य क्षीण हूए॥ तब तहां ते गिरा दीया॥ जैसे प
का फल वृक्ष ते गिर पडता है॥ तब देवता का सरीर आका
श मार्ग विषे अंतर्धान हो गया॥ भूमि लोक विषे आन पडा

देहधारा

धान्य विषे जाकर ब्राह्मण के वीर्य ब्राह्मणी का पुत्र भया
कोशल देश का राज कीया॥ बहुड़ धीवर का जन्म पाया
बहुड़ तिर्यग देश विषे रघवंशी राजा भया॥ बहुड़ विद्या
धर हूया॥ कल्पपर्यंत विद्याधरों विषे बुधिवान रहा॥
इस प्रकार अनेक सरीरों कों पाकर अब गंगाजी के कि
नारे पर ब्राह्मण का पुत्र होकर तप करी है॥ वासदेव ति
स का नाम है॥ हे मुनीश्वर इस प्रकार तेरा पुत्र अनेक स
रीर वासना के अनुसार पावत भया है॥ विंध्याचल पर्व
त विषे गोप हूया है॥ किरात देश विषे धीवर हूया है॥
तिर्यग देश विषे राजा हूया है॥ विद्याधर अभिमान हूया है
गंधर्वों का नायक भ्रषण हूया है॥ कल्पपर्यंत उहां रहा
है॥ जब प्रलय होवने लागी॥ तब सर्व लोक नस्ट होगये
जैसे अग्नि विषे पतंग नस्ट होते हैं॥ तब तेरा पुत्र नि
राधार निराकार वासना करके आकाश विषे भ्रमता
रहा॥ जैसे आलय विषे पंखी रहता है॥ तैसे रहा॥ जब
ब्रह्मा की रात्रि व्यतीत भई॥ अरु दिन हूया॥ तब सृष्टि की
रचना हूई॥ तब उह सतयुग विषे ब्राह्मण का बालिक
वासदेव नाम गंगाजी के किनारे पर तप करता है॥ आ
व सउ वर्ष तप कीया है॥ तूं ध्यान दृष्ट कर देख॥ तब सन
होवें तां उसका तुजकों भास आवे॥ तां ते देख जो इसी

प्रकार हे ॥ अथवा और प्रकार हे ॥ ॥ इति स्थित प्रक
रणे काल भगवान वर्ननं नाम सर्गः ॥ ९ ॥ ● कालोवा
च ॥ हे मुनीश्वर महा तरंग उछलते हें ॥ अरु मन कार
ण ष्ट होते हें ॥ ऐसी गंगा जी के तट पर तेरा पुत्र तप करता
हे ॥ सो सपर बडी जटा हें ॥ सर्व इंद्रीयों के भ्रम कों तिस जी
त्या हे ॥ जो तुम कों उस के मन के विस्तार देखणे की इछा
हे ॥ तो इन नेत्रों कों मूंद कर ज्ञान नेत्रों कर देख ॥ हे रामजी
जब इस प्रकार जगत काल भगवान ने कहा ॥ कैसा का
ल हे ॥ सम हें दृष्ट जिस की ॥ तब मुनीश्वर चितवता भया
अरु इनों नेत्रों कों मूंद कर ज्ञान नेत्रों साथ देखता भया
एक मुहूर्त विषे अपने पुत्र का सब चरित्र देख लीया ॥
जैसे कोऊ अपने बुधि विषे प्रति बिंब कों देखे ॥ तैसे दे
ख कर बऊड मंदराचल पर्वत विषे भ्रगु सरीर था ॥ तिस जो
विषे प्रवेश कीया ॥ अरु अपने आगे विषे काल भगवान
कों देख्या ॥ अरु पुत्र कों गंगा के तट पर देखता भया ॥ अ
रु आश्चर्य कों प्राप्त भया ॥ तब विकार दृष्ट कों त्याग कर
निर्मल सुंदर दृष्ट साथ मुनीश्वर वचन कहत भया ॥ भृ
गोवाच ॥ हे भगवन तीनों काल के ज्ञाता हम बालिक हें
इसी तें निर्दोष हें ॥ अरु तुम सार्व बुधिवान हें ॥ तीनों का
ल अमल दरसी हें ॥ हे भगवन ईश्वर की माया महा आश्च
र्य रूप हे ॥ जीवों कों अनेक भ्रम दिखावती हे ॥ सत कों अ
सत ॥ अरु असत कों सत दिखावती हे ॥ बुधिवानों कों भ
मोहित करती हे ॥ मूर्खों की क्या बात हे ॥ तुम सब के जा
नते हो ॥ जीवों की वार्त्ता तुम सब के ज्ञाता हो ॥ हे भगवन
मय भ्रम कों प्राप्त होकर क्रोध कीया ॥ सो इस कारण तें
जो मेरे पुत्र की मृत्यु न थी ॥ चिरंजीवी था ॥ अरु तिस कों
मय मृत्यु हूया देख कर भ्रम कों प्राप्त हूया ॥ सो जब लग
जीव हें ॥ तब लग जगत भ्रम हे ॥ जब लग अग्नि हे ॥ तब
लग उष्नता हे ॥ तैसे जो कर्त्तव्य हे ॥ सो करणा हे ॥ अरु जो
त्यागणे योग्य हे ॥ सो त्यागणा हे ॥ इह ने त जगत विषे स्थि

तहै॥ जो हेय उपादेय नहीं जानता॥ तिसकों त्यागणे यो
ग्य है॥ तो तैं मय पुत्र कूं अकांड मृत्यु देखकर क्रोध कीया
था॥ जब विचार कर कै तुमों स्मरण कराया॥ तब मय वि
चार देख्या है॥ जो अनेक जन्मों कों पावता पावता अब गं
गाजी के तट पर तप करता है॥ हे भगवन तुम जो कहा जी
वों के दो दो सरीर हैं॥ एक मनोमय॥ दूसरा अधिभौतिक
अरु मय तो इह मानता हों॥ जो सरीर एक मनहीं है॥ दूस
रा कोऊ नहीं॥ मनहीं का कीया सभ कछु होता है॥ कालो
वाच॥ हे मुनीश्वर तुज यथार्थ कहा है॥ सरीर एक मन
हीं है॥ स्थूल देह भी मन कर रचा है॥ जैसे घट कों कुलाल
रचता है॥ तैसे मन देह कों रचा है॥ जो मन सरीर तैं रहित
निराकार होता है॥ क्षण विषे अकार कों रच लेता है॥ जै
से बालिक पिछावै विषे वैताल कल्प लेता है॥ तैसे मन
विषे फुरणा जो शक्ति है॥ सो बहु जनम कों दिखावती है॥ जैं
से गंधर्व नगर भासि आवता है॥ अरु स्वप्नपुर भासता है
सो भी मन की शक्ति है॥ स्थूल दृष्टि कर जीवों कों दो दो सरी
र भासते हैं॥ अरु बोधवान कों तीनों जगत मन ही रूप
भासते हैं॥ सभ मन ही कर रचे हैं॥ जब भेद दृष्टि हूई॥ तब
वासना के अनुसार नाना रूप हो भासते हैं॥ जैसे अस
म्यक दृष्टि कर दो चंद्रमा भासते हैं॥ अरु सम्यक दृष्टि कों
एक ही भासता है॥ भेद वासना कर घट पटादि भासते
हैं॥ मय दुर्बल हों॥ मोटा हों॥ सुखी दुखी हों॥ इह जगत है
इह काल है॥ इत्यादिक अनेक भ्रम कों देखता है॥ सो सभ
हीं वासना मात्र है॥ जब मन सरीर की वासना कों त्याग क
र परमार्थ की ओर आवता है॥ तब आत्मपद कों प्राप्त हो
ता है॥ हे मुनीश्वर समुद्र तैं तरंग उठकर दूर कों जाते हैं
तब उह जाणे मय तरंग हों॥ तो एही अज्ञान है॥ वास्तव तैं स
भे जल ही जल है॥ दूसरा कछु दूया नहीं॥ तैसे जो पुरुष
क्षण भंगुर देहादिकों विषे अहं प्रतीत करता है॥ सो अने
क भ्रम कों देखता है॥ सम्यक दरसी सभ आत्म रूप देख

ताहै॥ सर्वजीव आत्मरूपी समुद्र के तरंग हैं॥ अज्ञानक
रके भिन्न भिन्न भासते हैं॥ अरु ज्ञान कर देहो आत्मसमु
द्र स्वच्छ शुद्ध शीतल अविनाशी विस्तृतरूप है॥ आप
णी महिमा विषे आप स्थित है॥ सर्वदा आनंदरूप है॥ जै
से जल विषे कोउ स्थित है॥ अरु तट पे होइ है॥ तिसकों
अग्नि लागी होवे॥ अरु अग्नि का प्रतिबिंब जल विषे
पडता है॥ उह कहे मय दग्ध होता हों॥ सो अज्ञान है॥ जै
से भ्रम करके उसको जलन भासती है॥ तैसे जीवों कों
आभास रूप जगत दुःखदायक भासता है॥ जैसे तटके
वृक्ष जलविषे बेडी पर बैठे कों चलते भासते हैं॥ तैसे आत्मा
विषे अनेक कार्य होते भासते हैं॥ पर क्रिया कछु नहीं॥
जैसे समुद्र तें तरंग भिन्न नहीं॥ तैसे ब्रह्म सत्ता तें जगत
भिन्न नहीं॥ जैसे पत्र टास फूल फल वृक्षरूप हैं॥ तैसे स
र्व जगत आत्मरूप है॥ हे साधो सर्व जगत चैतन्य सत्ता
तें फुरता है॥ जड भासते हैं॥ सो भी चैतन्य सत्ता तें फुरता है
अरु चैतन्य सत्ता विषे लीन होता है॥ जैसे ऊर्णनाभि ब
बहा अपणे मुख तें तंतु निकासता है॥ अरु आपही
ग्रास लेता है॥ तैसे चैतन्य जीव तें सुखपति जडता उप
जती है॥ बहुर तिसी विषे लीन होती है॥ तो ते अपणी
इच्छा कर इह पुरुष बंधमान होता है॥ अरु अपणी इ
च्छा कर मुक्ति होता है॥ जो बाह्यमुख देहादिक अभि
मान साथ मिलता है॥ तब आप कों बंधमान जानता है
जैसे घरडाइण गृह बणावती है॥ अरु आपही बंधमा
न होती है॥ तैसे पुरुषार्थ करके जीव अंतर्मुख होक
र आपही मुक्ति होता है॥ जैसे अपणे हाथों के बल क
र कोउ बली बंधन कों तोडकर निकस जाता है॥ तैं
से इह जीव अंतर्मुख होकर पुरुषार्थ कर देहाभिमा
न कों त्याग जाता है॥ हे साधो ईश्वर की विचित्र रूप शा
क्ति है॥ जैसी शाक्ति फुरती है॥ तैसे रूप कों दिखावती

हे॥ जैसे कुहीड आकाश विषे उपजता है॥ बहुड तिसी
कों आछादलेता है॥ तैसे आत्मा विषे फुरने कर दृश्य उ
पजती है॥ बहुड तिसी कों आछादलेती है॥ उही इछा आ
वर्ण करलेती है॥ अरु वास्तव तें ईश्वर कों बंधन कोउ
नहीं॥ बंधन नहीं तो मोक्ष कहां होवे॥ दोनों भ्रांति मात्र हैं
मय नहीं जानता जो बंध अरु मोक्ष दोनों कौं विषे कहां ते
आई है॥ आत्मा कौं न बंध है न मोक्ष है॥ ऐसे सत्त स्वरू
प कों असत रूप ने ग्रास लीया जो कहते हैं॥ मय सुखी
हों॥ मय दुखी हों॥ मय दुर्बल हों॥ मोटा हों॥ इत्यादिक भ्र
म कौं देखते हैं॥ इह माया महा आश्चर्य रूप है॥ जिसने
जगत कौं मोहित कीया है॥ हे मुनीश्वर जब चित्त संवित
कलना रूप होती है॥ अर्थ इह॥ जो दृश्य साथ मिल फुर
णरूप होता है॥ तब घराइण की न्याई आप कौं आप
ही बंधन करता है॥ अरु जब दृश्य तें रहित अंतर्मुख
होती है॥ तब शुध मोक्षरूप भासणे लागता है॥ बंध अ
र मोक्ष दोनों मन की सक्ती हैं॥ जैसे जैसे मन फुरता है॥
तैसा तैसा रूप होभासता है॥ अनेक शक्ती आत्मा विषे उ
पजती हैं॥ अरु आत्मा विषे स्थित हैं॥ बहुड तिसी विषे
लीन होती हैं॥ अरु तिसी विषे भिन्न होकर भासती हैं॥
तिसी विषे लीन होती हैं॥ जैसे समुद्र विषे तरंग उपजता
है॥ बहुड तिसी विषे लीन होता है॥ जैसे चंद्रमा सों किर
ण होती हैं॥ बहुड तिसी विषे लीन होती हैं॥ तैसे परमा
त्मा रूप समुद्र तें चैतन्य रूप तरंग उपजते हैं॥ बहुड ति
सी विषे लीन होते हैं॥ कोउ तरंग ब्रह्मारूप हूया है॥ को
उ तरंग विष्णुरूप हूया है॥ कोउ तरंग रुद्र रूप हूया
है॥ जिसतें उपजते हैं॥ तिसी विषे प्रमाद तें रहित स्थित
हैं॥ कोउ तरंग यम कोउ कुबेर कोउ इंद्र कोउ सूर्य को
उ चंद्रमा कोउ अग्नि हूया है॥ कोउ तरंग मानुष देवता
कोउ गंधर्व विद्याधर यक्ष किंन्नर आदिक रूप होक

रउपजतेहैं॥ बहुडलीनहोजातेहैं॥ कोऊतरंगस्थितहो
करचिरपर्यंतरहताहै॥ जैसेब्रह्मोचिरपर्यंतरहिकेली
नहोजातेहैं॥ देवतामानुषपशुपंखीआदिवरसर्वजगतहाणु
विषेउपजकरलीनहोजाताहै॥ सोसबइहआत्मसमुद्रकी
लहरीहैं॥ उपजकरबहुडलीनहोजातेहैं॥ ॥ इतिस्थि
तिप्रकरणेसंसारआत्मालहरप्रतिपादनंनामस
र्गः॥११ ॥कालउवाच॥ हेमुनीश्वरदेवतादैत्यमानुषा
दिकजोआकारहैं॥ सोसबपरमात्मासाथअभिन्नहैं॥ तु
हीस्वरूपहैं॥जबमिथ्याविकल्पोंसाथजीवकलंकितहो
ताहै॥ तबजानताहै॥जोमयब्रह्मनहीं॥इसनिश्चैकोपाक
रमोहितहोताहै॥ अरुअधःकोचल्याजाताहै॥जद्यपिब्र
ह्मतत्वसाथअभिन्नरूपहैं॥अरुतिसविषेस्थितहैं॥ तो
भीभावीकेवसतेंआपकोभिन्नरूपजानकरमोहकोंप्राप्त
होतेहैं॥ शुधब्रह्मविषेसंवितकाउलेखहोताहै॥सोकलं
कताकर्मोंकाबीजहोताहै॥ तिसीतेंआगेंविस्तारहोताहै
जैसेजलजैसेजैसेबीजसाथमिलताहै॥तैसेतैसेरसको
प्राप्तहोताहै॥ तैसेआत्मसंवितकाफुरणाजैसेजैसेकर्म
साथमिलताहै॥तैसीतैसीगतिकोंप्राप्तहोताहै॥संकल्प
साथकलंकितहूयाअनेकदुःखोंकोंपावताहै॥ इहप्रमा
दरूपीकर्मकैसाहै॥कल्पतरुएकाबीजहै॥तिसकोंमुष्टीभ
रभरबोवताहै॥ सोअपनेदुःखकाकारणहै॥अरुइहज
गतआत्मस्वरूपकीलहरीहैं॥ विस्ताररकरकेफुरीहैं॥ को
ऊहसताहै॥ कोऊरुदनकरताहै॥ कोऊऊर्ध्वकोंजाताहै॥ को
ऊअधःकोंजाताहै॥ फुरफुरकरबहुडलीनहोजाताहै
ब्रह्मातेंआदितृणपर्यंतइनसबनोंकाएहीधर्महै॥ जै
सेपवनकास्पंदधर्महै॥तैसेकोऊलहरनिर्मलपूजाणेयो
ग्यहै॥सोब्रह्माविष्णुरुद्रादिकहैं॥कोऊइककबहुमोहसं
युक्तहै॥ जैसेदेवतेमानुषसर्पहैं॥अरुकेईअत्यंतमोहवि
षेस्थितहैं॥ जैसेवृक्षतृणादिकहैं॥केईअज्ञानकरमूढ
ह्मकीटादिकयोनीकोंप्राप्तहूएहैं॥ केईदूरतेंदूरकों

चल्येगए हैं ॥ जैसे जल के प्रवाह कर तृण चल्या जाता है।
इह अप्राप्त भूमिका हैं ॥ अरु मानुष देवता सर्पादिक को
ऊ इक भूमिकावान नी होते हैं ॥ अरु केई तट कों देखकर
बहुड माया में वहि जाते हैं ॥ यमरूप चहला तिनकों पडाका
टता है ॥ कोऊ इक अंतर्गत ब्रह्मसमुद्र को जानकर स्थित
हूए हैं ॥ तम अज्ञान कों तरे हैं ॥ एक अल्प मोह कों प्राप्त हो
कर बहुड ब्रह्मस्वरूप विषे लीन भए हैं ॥ कोऊ को द्विजन्मों
कर लीन होते हैं ॥ कोऊ अधह तें अधः को चल्ये जाते हैं ॥ को
ऊ ऊर्ध्व कों जाते आपदा तें छूटते हैं ॥ शांतिवान होते हैं ॥ ॥
॥ इति स्थितप्रकरणे भार्गवोपाख्याने उत्पत्ति विस्तार
वर्णनं नाम सर्गः ॥ १२ ॥ कालोवाच ॥ हे साधक इह जेता
कछु दृश्य विस्तार भासता है ॥ सो सभ आत्मसमुद्र के तरं
ग हैं ॥ एक ही अनेक विचित्र विस्तार कों प्राप्त भया है ॥ जैसे
वसंत ऋतु विषे एक ही रस अनेक प्रकार के फल फुलं को
धारता है ॥ तैसे आत्मा ही फुरणे कर अनेक ही रूपों को धार
ता भया है ॥ जिन जीवों विषैं भ्रम नको जीतकर सर्वात्मा का दर्श
न कीया है ॥ ते जीवन्मुक्ति हूये हैं ॥ अवर मानुष देवता जक्ष
किंनर गंधर्वादिक सन पडे भ्रमते हैं ॥ इन तें अवर स्थाव
र जंगम हैं ॥ तिनकी क्या बात कहिणी है ॥ लोकों विषे तीन प्र
कार के जीव हैं ॥ एक अज्ञानी महामूढ हैं ॥ दूसरे जिज्ञासी हैं
तीसरे ज्ञानवान हैं ॥ अरु जो मूढ हैं ॥ तिनकों शास्त्रों के पडणे
सुणेउ विवेक रुच नहीं ॥ अरु जो जिज्ञासी हैं ॥ तिनके निमित्त
ज्ञानवानों शास्त्र रचे हैं ॥ जिस जिस मार्ग कर उह प्रबुधा
त्मा हूए हैं ॥ तिस तिस प्रकार के तिन शास्त्र रचे हैं ॥ तिस मार्ग
कर अवर जीव भी मोक्ष भागी भए हैं ॥ हे मुनीश्वर सत शास्त्र
जो ज्ञानवानों कीये हैं ॥ जब तिह पापपुरुष तिनकों विचार
णे लागते हैं ॥ तब उनों कों निर्मल बोध उपजता है ॥ तिस
कर मोह निवृत्त होजाता है ॥ जब निर्मल बोध होता है ॥ मोह
नष्ट होजाता है ॥ जैसे सूर्य के प्रकाश कर तम नष्ट होजाता है
अरु जो मूढ हैं ॥ सो अपणे संकल्प कर आपही दुखी होते

हैं॥ तातें जेते कछु भूतजात हैं॥ तिनकों सुखदुःख का कार
ण मन ही रूपी सरीर है॥ जैसे उह फुरता है॥ तैसी गति कों
पावते हैं॥ मांस अस्थि आदिक जो सरीर है॥ सो भी मन ही
कार रचा हूया है॥ अरु परमार्थ तें कछु नहीं॥ संकल्प की
दृढता तें आधिभौतिकता सत्य लागता है॥ इह मन स्व
प्न सरीर की न्यांई है॥ तातें मन रूपी सरीर कर जो तेरे पु
त्र कीया है॥ तिसी तिसी गति कों शीघ्र ही पावता भया है
इसमें हम कों अपराध कछु नहीं॥ जैसे जैसे तेरे पुत्र की
मन फुरता गया है॥ तीव्र भावना सों॥ तैसी तैसी गति कों
पावता भया है॥ स्वर्ग नर्क सन का भोगता भया है॥ अपणे
मन के मोह कर सन देख्या है॥ अवर बहुते कहणे कर
क्या है॥ अब उठो॥ तहां चलीए॥ जहां उ ब्राह्मण का पुत्र
होकर तप करणे लागा है॥ गंगा जी के तटपर तहां उस
कों जगावें॥ बाल्मीकोवाच॥ हे भारद्वाज जब इस प्र
कार काल भगवान कहा॥ तब दोनों जगत की गति कों
देखकर हसते हूए उठ खडे॥ हाथ सों हाथ पकडिकर
कहते भए॥ बडा आश्चर्य है॥ बडा आश्चर्य है॥ ईश्वर
की नेत जीवों कों बडे भ्रम कों दिखावती है॥ जैसे उदया
चल पर्वत तें सूर्य उदे होता है॥ तैसे दोनों चले॥ जैसे आ
काश मार्ग विषे सूर्य अरु चंद्रमा चलें॥ तैसे दोनों चले
इस प्रकार जब वसिष्टजी रामजी को कहा॥ तब सूर्य
भगवान अस्त हूया॥ सर्व सभा स्नान कों गई॥ ॥इति
स्थितप्रकरणे भृगुसमाधानकर्तं नाम सर्गः॥ 13॥
श्री वसिष्टोवाच॥ हे रामजी काल भगवान अरु भृगु
दोनों मंदराचल पर्वत तें भूमिलोक विषे उतरते भए
जहां शुक्र बैठा था॥ तहां चले॥ महा सुंदर स्थान वन ब
गीचे बावलीयां लंघते चले॥ देवते विद्याधरों की क्रीडा
के स्थान लंघते गए॥ कल्पवृक्ष मंदार वृक्ष पारजात फ
लों कर पूर्ण॥ वायु साथ फल गिडते हैं॥ ऐसे महा दिव्य
स्थान हैं॥ तिनकों भी लंघे॥ वडे वडे स्थान लंघकर तहां
गए॥ जहां ब्राह्मण सरीर साथ तपकरता है॥ गंगा जी के

किनारे पर समाधि स्थित तिसको देखते भए॥ मनरूपी
जो मृग है॥ सो अचल होकर विश्राम को पावता भया है
जैसे चिरकाल का थका चिरपर्यंत विश्राम पावे॥ तैसे वि
श्राम पाया है॥ अनेक जन्मों की चितवना विषे नटकता
नटकता अब तप कों लागा है॥ अरु विश्रामवान भया
है॥ जैसे चक्र भ्रमता ठहिर जाता है॥ तैसे ठहर गया है
संसाररूपी महासमुद्र है॥ तिससों निकसकर एकां
त स्थित भया है॥ इंद्रीयों अरु मन की चिंता को त्याग
कर निर्विकल्प समाधि विषे स्थित है॥ संसार के दुख
आधि व्याधि तें रहित अरु संपूर्ण कलना जाल तें मु
क्ति परम शांति पद कों प्राप्त भया है॥ कैसा पद है॥ आ
नंदरूप विस्तृत है॥ राग द्वेष तें रहित स्थित है॥ हेय
उपादेय जो विकार हैं॥ तिस तें रहित प्रबोधरूप स्थि
त है॥ अब जगाईए॥ इस प्रकार कहि कर मेघ की न्या
ई वडे शब्द कर कर काल भगवान कहा॥ जागो जागो॥ त
ब तिसकी कलना बाह्य शब्द कर फुरी॥ तब भृगुकजी
जाग्या॥ जैसे मेघ के शब्द कर मोर जागे॥ तैसे उन्मी
लित नेत्रों कर काल अरु शुक्र कों आपणे आगे देख
ता भया॥ पर अज्ञानरूप॥ अर्थ इहै॥ जो काल अरु शु
क्र को पछानता न भया॥ तब देख्या॥ जो दोनों का स्याम
आकार है॥ अरु वडे प्रकाशरूप हैं॥ जैसे सूर्य अरु
चंद्रमा होवे॥ महा उज्जल अरु उदारात्मा प्रबोधरूप
देखता भया॥ जैसे विष्णु जी अरु सदाशिव जा होवे
तैसे देखकर उठ खडा हूया॥ अरु प्रीतपूर्वक चर्णों
वंदना करी॥ अरु कहा॥ मेरे वडे भाग्य हैं॥ जो प्रभों के
चर्णों इस स्थान विषे प्राप्त भए हैं॥ बडे इनमता कर
के आदर कीया॥ एक सिला पडी थी॥ तीनों उस ऊपर
बैठ गए॥ जैसे सुमेर की पीठ पर ब्रह्मा विष्णु रुद्र जी
बैठते हैं॥ तैसे सिला सिंहासन पर बैठ गए॥ तब वा
सदेव नामा आत्मज जो भृगु का है॥ तप के संयोग तें तिस
का नाम संतित तपा हूया है॥ तिस संतित ने भृगु के आगे

वसुंदर अरु हृदयंगम वचन कहे अरु भृगु को क
हा॥ हे भगवन तुमारा दर्शन करके मय पवित्र हूया हों॥ अ
रु शांति कों प्राप्त भया हों॥ तुम सूर्य अरु चंद्रमा मेरे आ
श्रम आए हो॥ जो शास्त्रों अरु तप अरु ज्ञान विद्या कर
के मन का मोह निवृत्त होवणा कठन है॥ सो तुमारे दर्स
न करके मोह निवृत्त भया है॥ हे साधो ऐसा सुख ऐश्व
र्य करके भी नही प्राप्त होता॥ अरु अमृत की वर्षा कर
नी नही प्राप्त होता॥ जैसा सुख महापुरुषों के दर्शन कर
प्राप्त होता है॥ तुमारे दर्शन कर मेरा मोह निवृत्त भया है
तुम ज्ञान का सूर्य चंद्रमा हो॥ हे मुनीश्वर जो तुम हमारा
स्थान पवित्र कीया है॥ मय शांतिमां हूया हों॥ अरु तु
मकों न हो॥ सो तुम कहो॥ जो ऐसे प्रकाशरूप उदारात्मा
सूर्य चंद्रमा की न्यांई मेरे आश्रम पर आए हो॥ इस प्रका
र जन्मांतरी का पुत्र भृगुजी को कहा॥ तब भृगुजी बोले
हे साधक तें आप कों स्मरण कर॥ जो तूं कौन है॥ अज्ञानी
तो नहीं॥ तूं तो प्रबोधात्मा है॥ जब इस प्रकार भृगुजी क
हा॥ तब उन्मीलित लोचन होकर उह ध्यान विषे जुड़ता
एक महूर्त विषे सन आपणा वृत्तांत देख लीया॥ देख
कर नेत्रों को खोल्या॥ अरु विस्मयवान होकर हसता
भया॥ अरु कहा॥ ईश्वर की माया विचित्ररूप है॥ इसके
वस हूया मय बदे लोभ को प्राप्त हूया हों॥ जगतरूपी
जंत्र पर आरूढ हूया अनंत जन्मों विषे भ्रम्या हों॥ तिन
सभनों कों स्मरण करके आश्चर्यमान होता हों॥ मय ब
हुत दुख अरु अनेक अवस्था भोगी हैं॥ स्वर्ग विषे रहा
हों॥ मंदार वृक्ष कल्पवृक्ष के नीचे रहा हों॥ सुमेर कैलास
आदिकों के कुंजों बन विषे रहा हों॥ ऐसा पदार्थ पाव
णे का नहीं॥ जो मय नही पाया॥ ऐसा भी कोऊ कार्य नहीं
जो मय नही कीया॥ ऐसा कोऊ इष्ट अनिष्ट स्वर्ग नर्क
विषे पदार्थ नहीं॥ जो मय नही देख्या॥ अब लोक कूं जान

लोयोग्य है। सो मय जाणा है। अरु कछु पावणे योग्य था।
सो मय पाया है। जो कछु देखणे योग्य था। सो देख्या है। अ-
ब मय आत्मतत्व विषे विश्रांतवान हूया हों। संकल्प ने
म मेरा नष्ट हो गया है। अब चलीये। जहां मंदराचल ऊ-
पर मेरा सरीर स्सका पड़ा है। हे भगवन अब मुज कों इछा
कछु नहीं। आवणा जावणा हेय उपादेय मुज कों नहीं र-
ह्या। तौभी तथापि नेत की रचना देख कर कहता हों। जो बोधवा-
न हैं सो प्रकित आचार विषे विचरते हैं। आगे जैसे इछा होवे
तैसे करीये। बोधवान उसी आचार कों अंगीकार करते
हैं। तांते अप लोग कि लें आचार कों अंगीकार करके व्यव-
हार विषे विचरें॥ ॥इति स्थित प्रकरणे भार्गव जन्मां-
तर वर्णनं नाम सर्गः॥४॥ श्री वसिष्ठोवाच॥ हे रामजी
इस प्रकार विचार करती नों आकाश मार्ग कों उमते॥ शी-
घ्र ही मेघमंडल कों लंघ कर सिधों के मार्ग सों मंदराच-
ल पर्वत स्वर्ण की कंदरा ऊपर आन स्थित भए। तब प-
वे जो भृगु का सरीर था। तिस कों देखते भए। ब्राह्मण त-
पस्वी कहा। हे तात इह मेरा पूर्व ला सरीर था। सो तुम कर
पालना कीया था। कपूर चंदन सुगंध कर अरु दिव्य प-
दार्थों कर सौमान कीया था। सो अब माटी धूड कर लेपे-
टीया पड़ा है। अरु सूक गया है। जो सरीर देवस्त्रीयों क-
र सेव्या था। देख कर मोहित होती थी। अरु मुक्तमाल
कंठ विषे सोभती थी। मानो तारों की पंक्ति है। सो सरी-
र पृथ्वी पर तिडा पड़ा है। नंदनवन और स्थानों विषे
इस अनेक सुख जोगे है। अरु इस कों मय आतम रूप
जाण कर पुष्ट कीया था। सो अब मुज कों भय दायक
भासता है। जो सरीर देव अंगनां साथ मिलता था। ति-
न कर राग वान होता था। सो अब तिन की चिंता तें रहि-
त सूक गया है। महा भयानक विकराल जैसा भासता है
जिन कों मय आतम रूप जानता था। तिस विषे बिला-
स करता था। अरु स्वर्ण वत प्रकाश रूप था। जिस कों

देखकर देवांगना मोहित होतीथी॥ सो सभतें मुक्ति नि
र्विकल्प भया है॥ हे सरीर संबंधनंतेरी नष्ट भई है
संकल्पजाल मिटगए हैं॥ सुखसाथ सोयापड़ा है॥ चि
त्तरूपी मर्कटतें रहित सरीररूपी वृक्ष हालनेतें र
हित भया है॥ सर्व अर्थनतें रहित पहाड़कीन्याई अ
चल भया है॥ हे साधो सर्व अनर्थोंका कारण चित्त है
जबलग चित्त शांति नहीं होता॥ तबलग जीवकों आनं
द प्राप्त नहीं होता॥ जब चित्त अमन शांतिकों प्राप्त हो
ता है॥ तब आधिव्याधि दुःखोंतें उतरकर विगतज्व
र होता है॥ अरु परमानंदकों पावता है॥ रामोवाच॥
हे भगवन सर्वधर्मोंके वेत्ता भृगुका पुत्र जो शुक्र था
तिसनें तो अनेक सरीर धारे थे॥ अरु बड़े बड़े
भोग भोगे थे॥ सरीर जो भृगुतें उत्पन्न भया था॥ तिसकों
बड़े पर [निरलाप] देवना करी॥ अरु औरोंके चित्त न कीया
सो क्या कारण है॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी शुक्र
की जो संवेदन कलाथी॥ सो जीवभावकों प्राप्त भईथी ना
सो कर्म आत्म [कर्म स्वरूप] उपजीथी॥ भृगुतें सो सुण॥ आदिपरमा होकर
त्मतत्वतें जो प्रथम चित्तकला फुरी है॥ सो भूताकाशकों
प्राप्त भई है॥ उही वायुकला विषे स्थित होकर प्राण
अपानके मार्ग करके भृगुके हृदे विषे प्रवेश करत
भई॥ वीर्यके स्थान प्राप्त होकर गर्भमार्गसों उत्पत भ
ई॥ क्रमकरके बड़ी हूई॥ विद्या अरु गुणसंपन्न शुक्र
सरीर होत भया॥ तिसकों जो चिरकाल सेवना कीया
था॥ तिसकारणतें तिसीकों पर [निरलाप] देवना करी॥ जदिपवी
तराग अनिच्छित था॥ तोभी चिरकालके जो अभ्यास
कीयाथा॥ सो ई फुरता॥ हे रामजी ज्ञानी होवे अथवा अ
ज्ञानी होवे॥ विवहार दोनोंका तुल्य होता है॥ पर सक्ति
असक्तिका भेद होता है॥ ज्ञानवान निर्लेप रहता है॥
अरु अज्ञानी बंधमान होता है॥ जो ज्ञानवान है॥ सो मो
क्षरूप है॥ अरु जो अज्ञानी है॥ सो दरिद्री है॥ जैसे बन

विषेजालमोंपरवीफसताहे॥ तैसेअज्ञानीलोकव्यवहा
रविषेबंधायमानहोताहे॥ व्यवहारजैसेज्ञानीकर्त्ताहै
तैसेअज्ञानीकर्त्ताहै॥ वासनातेरहितहै॥ सोनिर्बंधहै॥
अरुवासनासहितहै॥ सोबंधमानहै॥ प वासनाकोने
दहै॥ जबलगसरीरहै॥ सुखदुःखहोताहै॥ परज्ञानवा
नदोनोंविषेशांतिवानरहताहै॥ अरुअज्ञानीहर्षशोक
करतपायमानहोताहै॥ जैसेपंथेकाप्रतिबिंबजलवि
षेपडताहै॥ सोजलकेहलनेकरहलतानासताहै॥ पर
स्वरूपतेंस्थितहै॥ तैसेज्ञानवानइंद्रीयोंकरसुखीदुखी
होतानासताहै॥ स्वरूपतेंजिउकातिउहै॥ अरुअज्ञानीबा
सतेंक्रियाकात्यागकर्त्ताहै॥ तोनीमनकरबंधमानहै॥
अरुज्ञानवानक्रियाकर्त्ताहै॥ तोनीमुक्तिरूपहै॥ बुधिइं
द्रीयांअंतहकर्णकरजोअनात्मधर्मविषेबंधमानहै॥
सोईबंधमानहै॥ अरजोज्ञानवानइंद्रीयोंकरकर्मक
र्त्ताहष्टआवताहै॥ तोनीविदेकरमुक्तिरूपहै॥ तातेहेरा
मजीसर्वकार्जोंकोकर्त्ताअंतरतेंनिर्लेपहो॥ सर्वइच्छा
तेंरहितआत्मपदविषेस्थितहो॥ अपणेप्रक्रितेआचार
कोकरो॥ इहसंसाररूपीसमुद्रहै॥ तिसविषेआधिव्याधि
रूपीटोएहैं॥ अरुअहंममआदिकरूपहैं॥ तिसविषेजो
गिडताहै॥ सोअधःतेंअधहकोचल्याजाताहै॥ तातेंसंसार
केनावविषेस्थितमतहोवो॥ तुमशुधबोधअपणेस्वभा
वविषेस्थितहोवो॥ तुंब्रह्मशुधसर्वात्माहैं॥ निराकारनि
र्विकारआत्मपदविषेस्थितहो॥ ॥इतिस्थितगकर
णेशुक्रप्रथमजीववर्ननंनामसर्गः॥ १५ ॥श्रीवसि
ष्ठोवाच॥ हेरामजीजबइसप्रकारशुक्रजीसरीरकोव
र्ननकीया॥ विकालरूपदेखकरउसविषेत्यागबुधिक
री॥ तबकालभगवानशुक्रकेवचनोंकोंनमानकरबो
लतभया॥ कालोवाच॥ हेशुक्रइसतपस्वीसरीरकों
त्याग॥ अरुभृगुकापुत्रजोसरीरहै॥ भार्गवतिसकोंअं
गीकारकर॥ जैसेराजादेशातेंदेशांतरकोजमताहै॥ ब
हुडअपणेनगरविषेआवताहै॥ तैसेतंसरीरविषेप्रवे

ज्ञा कर ॥ काहे तें जो भार्गव तन साथ असुरों का गुरु
होवणा है ॥ इह आदि परमात्मा कीनेत है ॥ महा
कल्प पर्यंत तेरी आर्या है ॥ जब महाकल्प का अंत
आवेगा ॥ तब भार्गव तन नष्ट हो जावेगा ॥ तुजकों
सरीर ग्रहण करणा न होवेगा ॥ जैसे रस के सूके तें
पुष्प गिड पडता है ॥ तैसे प्रारब्ध वेग के पूर्ण हूए
इह तेरा सरीर गिड पडेगा ॥ अरु सरीर के होतें भी
जीवन्मुक्ति पद विषे स्थित रहेंगा ॥ तां ते तुम सु
क्र सरीर साथ दैत्यों का महा गुरु होवेंगा ॥ इह ई
श्वर कीनेत है ॥ तां ते तपस्वी सरीर कों त्याग कर
भार्गव सरीर कों पहिर ॥ अब हम जाते हैं ॥ तुम
दोनों का कल्याण होवे ॥ तुम अपणे वांछित को
प्राप्त होवो ॥ हे रामजी काल भगवान ऐसे कहि क
र दोनों ऊपर पुष्प डारते ॥ अरु अंतर्ध्यान होगए
तब तपस्वी विचार करके जो क्या होणा है ॥ ऐसे
विचार कर ॥ महा दृष्टरूप जो भार्गव सरीर था
तिस विषे प्रवेश कीया ॥ अरु तपस्वी देह का त्या
ग कीया ॥ जैसे वसंत रुत विषे वल्ल मों रस प्रवे
श करता है ॥ तैसे भार्गव तन विषे प्रवेश कीया ॥
जैसे सर्प कुंज कों त्यागता है ॥ तैसे तपस्वी सरीर
का त्याग कीया ॥ तब उस सरीर की सोभा जाती
रही ॥ कंप कंप कर गिड पडा ॥ जैसे मूल के का
टे तें वृक्ष गिड पडता है ॥ तैसे उस देह के गिडे
तें सुक्र देह जीवकला संयुक्त होत भई ॥ तब
भृगु जी जीवकला संयुक्त आप तें उपजे सरीर
कों देखकर उठ खडा हूया ॥ हाथ विषे जल का
कमंडल लीया ॥ मंत्र विद्या जो हैं पुष्ट करी ॥ ति
स कों पाठ कर पुत्र सरीर पर जल पाया ॥ तिस
के जल पावणे कर सभ नाडी सरीर की पुष्ट हो

१७

17

आई॥ जैसे वर्षाकाल विषे मेघ पूर्ण होते हैं॥ जैसे
वसंतरुत विषे कमलनीयां प्रफुलित होतीयां
हैं॥ तैसे सरीर की नाडी पुष्ट हो गई॥ प्राणपवन
आवणे जावणे लागा॥ तब उठ कर पिता के सं
मुख हूया॥ अरु नमस्कार करता भया॥ जैसे मेघ
जल कर पूर्ण होकर पर्वत के आगे निवै॥ तैसे
विधि संयुक्त नमस्कार करी॥ अरु स्नेह कर के
नेत्र जल सों पूर्ण हो गए॥ तिनतें जल स्रवणे ला
गा॥ पूर्ब पुत्र को देख कर भ्रगुजी भी कंठ लगा
या॥ जो मेरा इह पुत्र है॥ ऐसे स्नेह कर भ्रगुजी
भी पूर्ण हो गए॥ हे रामजी जब लग देह है॥ तब
लग देह के कर्म भी फुर आवते हैं॥ इस कर ज्ञान
वान भी स्नेहवान होता है॥ तब अवरों की क्या बा
त कहिणी है॥ पिता अरु पुत्र दोनों बैठ गए॥ ए
क महूर्त पर्यंत कथा वार्त्ता करते रहे॥ बहुड़ उ
ठ कर तपस्वी सरीर को जलाय दीया॥ हे राम
जी जो कोऊ बुधिवान है॥ सो शास्त्र आचार वि
षे स्थित होता है॥ तिसतें अनंतर दोनों मंदराच
ल पर्वत विषे स्थित भए॥ तप कर के प्रकाशत
हैं॥ सो जीवन्मुक्ति होकर स्थित भए॥ समें पाक
र शुक्रजी दैत्यों का गुरु होवेगा॥ अरु भ्रगुजी स
माधि विषे स्थित होवेगा॥ तां ते सब विकारों ते र
हित जीवन्मुक्ति पुरुष जगत गुरु हैं॥ सो सब को
पूजणे योग्य हैं॥ ॥इति स्थितप्रकरणे भार्ग
व पूर्व सरीर प्राप्तं नाम सर्गः॥ १६ ॥श्रीरामो
वाच॥ हे भगवन जैसे भ्रगु के पुत्र को इह गति
भी फुरती गई है॥ अरु सफल भई॥ अर्थ इह जो
सिध हो गई है॥ तैसे अवर जीवों की सिध क्यों न
ही होती॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी शुक्र को

ग प्रथम फुरणा ब्रह्मतत्वतें हूया है॥ सो भार्गवजन्म
का हूया है॥ अवर जन्मों कर कलेकित नहीं हूया
सर्व इछणातें रहित शुध चैतन्य था॥ निर्मल चि
दवाले कों जैसा जैसा फुरणा होता है॥ तैसा तैसा
शीघ्र ही सिध होता है॥ अरु मलिन चिदवाले का
संकल्प सिध नहीं होता॥ जैसे भृगुपुत्र कों मनोरा
ज भ्रम हूया है॥ तिस विषे भ्रमता फिरता है॥ तैसे
सर्व जीव स्वरूप के प्रमाद कर भ्रमते रहते हैं॥ ज
बलग स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता॥ तबलग
शांति नहीं प्राप्त होती॥ इह मय भृगुपुत्र का दृष्टां
त तुज कों सुणाया है॥ मनोराज की दृडता के नमि
त॥ जैसे बीज अंकुर फूल फल अनेक भाव कों
प्राप्त होता है॥ तैसे सर्व भूतजात कों मन का भ्रम
णा अनेक भ्रम कों प्राप्त कर्ता है॥ जेताकछु जग
त तुज कों भासता है॥ सो सभ मन के फुरणे का
रूप है॥ सभ मिथ्या भ्रम कर के भासता है॥ एक ए
क प्रति अैसा भ्रम है॥ सो सभ संकल्पमात्र है॥ जैसे
स्वप्नपुर संकल्पनगर भासता है॥ तैसे इह जागत
भी अज्ञान कर स्पष्ट भासता है॥ जैसे इह हमारा
जगत है॥ तैसे अनंत जगतों के पडे फुरते हैं॥ पर
स्पर उनकी अज्ञात है॥ एक कों दूसरा नहीं जानता
जैसे एक स्थान विषे बहुते पुरुष शयन करें॥ ति
न कों मनोराज स्वप्न भ्रम उपजता है॥ पर उन कों
परस्पर अज्ञात है॥ तैसे इह जगत है॥ इह जगत भी जाग्रत जगत
दीर्घकाल का स्वप्ना है॥ चित्त के फुरणे कर सत हो
भासता है॥ अरु जागत सत्ता कर के चित्त है॥ एक
के नाश हूए तें दोनों नाश हो जाते हैं॥ सो आत्मवि
चार कर दोनों नाश हो जाते हैं॥ अरु विचार भी
तहां उपजता है॥ जहां निर्मल चित्त होता है॥ जैसे उ

धूल वस्त्र पर केसर का रंग शीघ्र ही चड जाता है। म
लिन पर नहीं चडता। सो निर्मल चित्त तब होता है
जो शास्त्रों के अनुसार क्रिया करता है। हे रामजी
एक एक के रिदे विषे अपली अपली स्रिष्ट है।
मलिन चित्त करके एक को दूसरा नहीं जाणता।
जब चित्त शुद्ध होता है। तब अवर की स्रिष्ट को भी
जान लेता है। जैसे शुद्ध धात परस्पर मिल जाती है
जब इस को चिरपर्यंत अभ्यास होता है। तब सन
कनु भासणे लागता है। काहे ते जो सन का अधि
ष्टान एक है। तिस विषे स्थित होए सभ का ज्ञान हो
ता है॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन शुक्र को प्रति
भा मात्र अभास हूया था। तिस विषे देश काल
क्रिया द्रव्य उस को द्रिड होकर कैसे भासया॥ श्री
वसिष्टोवाच॥ हे रामजी जो कछु शुक्र ने जगत
मनकर देख्या है। सो अपणे अनुभव रूप भंडार विषे दे
ख्या है। जैसे मोर के अंडो विषे अनेक रंग होते
भासते हैं। तैसे उस को अपणे अंतर जो मन भास
या था। जैसे बीज ते पुष्प पत्र फल टास उपजते
हैं। तैसे जीव जीव को अपणे अनुभव विषे अनं
त संसार पडे फुरते हैं। ईहां स्वप्ने का द्रिष्टांत प्रत्य
क्ष है। एक एक के स्वप्ने विषे जागत होता है। तैसे इ
ह जागत भी है। दीर्घ स्वप्ना जाग्रत हो भासता है
जैसे द्रिड होता है। तैसे भासणे लागता है॥ श्रीरा
मोवाच॥ हे भगवन स्रिष्टों के समूह कैसे मिलते
हैं। अरु परस्पर कैसे नहीं मिलते। ~~अरु शुध~~
~~हैं सो मिलते हैं। जैसे शुध धातु मिल जाती है~~॥
श्रीवसिष्टोवाच॥ हे रामजी जो मलिन चित्त है
सो परस्पर नहीं मिलते। जो शुध हैं सो मिलते हैं
जैसे शुध धातु मिल जाती है। सो सुषुप्त रूप अ

त्मा सों फुरते हैं ॥ सो तन्मयरूप हैं ॥ जिसकों तिना
विषे विश्राम होता है ॥ सो ज्ञानदृष्ट कर मिल जा
ता है ॥ जैसे जल साथ जल मिल जाता है ॥ तैसे उह
सन साथ मिल जाता है ॥ ॥ इति स्थितप्रकर
णे मनोराज मिलनं नाम सर्गः ॥ १८ ॥ श्रीवसि
ष्ठोवाच ॥ हे रामजी जेताकछु संसार का विस्ता
र है ॥ तिन सर्वों का बीजरूप आत्मा है ॥ सो सन आ
त्मा ही का आभास है ॥ सो आभास के उदे अरु नि
वर्त्त होणे विषे आत्मसत्ता जिउं की तिउं है ॥ अ
पणे स्वभाव के त्याग तें रहित है ॥ अरु सर्व जी
वों का अपणा आपरूप है ॥ अरु सुषुप्तवत अ
फुर है ॥ तिस सत्ता तें जीव फुरते हैं ॥ तब स्वप्नव
त जगत भ्रम कों देखते हैं ॥ जीव जीव प्रति अप
णी अपणी स्त्रिष्ट है ॥ जो पुरुष उलट कर आत्मप
रायण होता है ॥ सो आत्मपद कों प्राप्त होता है ॥
जिन पुरुषों कों आत्मा साथ एकता नई है ॥ तिन
कों परस्पर अवरों की स्त्रिष्टि नी भासती है ॥ उही क
हते हैं ॥ जो जीवों की अपणी अपणी स्त्रिष्ट है ॥ सन
का अपणा आप सन्मात्र सत्ता है ॥ तिस विषे सन
स्त्रिष्टीं स्थित होतीयां हैं ॥ जैसे कपूर का पर्वत हो
वे ॥ तिस के अणू अणू विषे सुगंध होती है ॥ अ
रु सर्व अणों की सुगंधता विषे पर्वत कों एकता है
तैसे सन जीवों का अधिष्ठान आत्मसत्ता है ॥ जैं
से सन नदीयों का अधिष्ठान समुद्र है ॥ तैसे सन
जीवों का अधिष्ठान परमात्मा है ॥ सो स्त्रिष्टीकों
परस्पर मिलती हैं ॥ कहूं भिन्न भिन्न स्थित हैं ॥ जि
सकी सन्मात्र सत्ता साथ एकता है ॥ तिस के चित्त
की वृत्ति जिस साथ मिल्या चाहे ॥ तिस साथ मिल
ती है ॥ मलिन चित्त वाला नही मिल सकता ॥ पर
एक एक जीव विषे सहस्र स्त्रिष्टीं परस्पर अले

त्तरूपवसतीयांहैं॥ जहां जैसा फुरणा दृढ होता है
तहां तैसाही होनासता है॥ अरु जहां मनके फु
रणेकौ मूलहोता है॥ सोसफल नहीहोता॥ अरु
जहां दृढ होता है॥ तहां तैसाही होनासता है॥ हे रा
मजी जब देहकी भावना मिटजाती है॥ अरु प्रा
णपवनके स्थित करणेंकौं चित्तकी वृत्ति स्वभा
व विषे स्थित होती है॥ तब और के चित्तकी चेष्टा
इसके चित्त विषे फुरआवती है॥ अरु जब ज
ग चित्त मलिन होता है॥ देहकी भावनाकौ त्याग
तानहीं॥ तबलग किसी पदार्थ साथ एकता न
हीहोती॥ अरु जिसका चित्त निर्मल होता है॥ ति
सकौं अवरों के चित्तका ज्ञान भी होता है॥ सो ति
सकौं अवर का स्रिष्टि विषे जावणेकी शक्ति भी
होवती है॥ मलिन चित्तकौं नहीहोती॥ अरु सर्व
जीवांकौं तीन अवस्था॥ जाग्रत स्वप्न सुषुप्त हो
ती है॥ सो तीन अवस्था आत्मा विषे जीवत्वहीं
कालक्षण है॥ जैसे मृगत्रिष्णांकी नदीके तरं
ग होते हैं॥ किरणों विषे तिनका अभाव है॥ तैसे
जीवकौं आत्मा विषे प्रमाद है॥ तिसकर तीनों अ
वस्था विषे पडा भटकता है॥ जब चित्त कलातु
यीं विषे स्थित होती है॥ तब जीवन्मुक्ति है॥ आत
म सत्ता स्वभाव विषे स्थित हूए तें आत्मा साथ
एकताकौं प्राप्त होता है॥ अरु सर्वे जीवांसाथ सु
हृद भाव होता है॥ अरु जब अज्ञानी सुषुप्त रू
प अवस्था तें जागता है॥ अर्थ इह॥ जो संसारकौं
चितवता है॥ तब संसारकौं प्राप्त होता है॥ संसार
विषे अवर संसार तिस विषे और संसार प्रमा
द करके इस प्रकार अनेक स्रिष्टींकौं देखता
है॥ जैसे केले के थंभ सौं पत्रांका समूह निकस

आवता है ॥ तैसे स्त्रियांतैं स्त्रियांको देखता है ॥ शां
ति को नहीं प्राप्त होता ॥ अनेक नाम कों देखता
है ॥ जब उलट कर अपणे स्वभाव विषे स्थित हो
ता है ॥ तब नानात्व भाव मिट जाता है ॥ शांतिरू
प होता है ॥ जैसे केले का अंतर सीतल होता है ॥
तैसे उह पुरुष शांतिवान होता है ॥ हे रामजी जे
गतों के समूह भासते हैं ॥ तो भी आत्मा विषे कु
छ द्वैत कृया नहीं ॥ आत्मा साधाएक रूप है ॥ जैसे
केले के अंतर पत्रों ते इतर कछु नहीं निकस
ता ॥ तैसे आत्मा तें इतर जगत कछु नहीं निकस
ता ॥ जैसे बीज पुष्प फल भाव कों प्राप्त होता है ॥ तै
से ब्रह्म तें ब्रस्मादिक उत्पत होते हैं ॥ बहुड़ ब्रह्म
विषे लीन होते हैं ॥ अरु और आत्मा विषे कारण
कार्य बणते नहीं ॥ आत्मा अद्वैत अच्युत रूप है ॥
परिणाम तें रहित है ॥ अरु जब बीज अपणे भाव
कों त्यागता है ॥ तब फुल फल भाव कों प्राप्त होता
है ॥ अरु ब्रह्मसत्ता अपणे स्वभाव कों त्यागती न
हीं ॥ अरु बीज परिणामी सहकार रूप है ॥ इस का
रण तें परमात्मा बीज की न्यांई नहीं बणता ॥ आ
त्मा निराकार निर्विकार अच्युत है ॥ परिणाम तें र
हित है ॥ आकाश तें अकाशही उपजा है ॥ तातें आ
त्मा अभिन्न रूप है ॥ न कोऊ उपजा है ॥ न किसी
उपजाया है ॥ केवल ब्रह्म आकाश अपणे आप
विषे स्थित है ॥ जब द्रष्टा पुरुष दृश्य कों देखता
है ॥ तब आप कों नहीं देख सकता ॥ कौं है तें जो म
नोराज के कार्य जगत गण मंजाता है ॥ तब वि नॅबे
द्यमान की संभाल नहीं रहती ॥ देहादि कों विषे बसांत
आत्माभिमान करता है ॥ अरु जो पुरुष आत्मस
त्ता कों देखता है ॥ तिस कों जगत भाव नहीं रहता
अरु जो जगत कों देखता है ॥ तिस कों आत्मसत्ता

नहीं भासती॥ जैसे जो मृगतृष्णा की नदी कूं जलजा
नता है॥ तिसकों जलभावना नहीं होती॥ जब दृश्य
की ओर जाता है॥ तब आपकों नहीं देख सकता॥ अ
काश की न्यांई ब्रह्मसत्ता पूर्ण है॥ सो अज्ञानी कों न
हीं भासती॥ तिसकों दृश्य ही पडी भासती है॥ अरु
अनुभवसत्ता नहीं भासती॥ हे रामजी जो कोऊ स्थू
ल पदार्थ होता है॥ पहाड वृक्ष आदिक तिसके आ
गे पटल आवता है॥ तब उह भी नहीं भासता॥ जो
सूक्ष्म निराकार द्रष्टा पुरुष है॥ तिसके आगे आ
वर्ण आवै॥ तब उह कैसे भासे॥ जो द्रष्टा पुरुष है सो
अपणे द्रष्टाभाव विषे स्थित है॥ दृश्यभाव कों नहीं
प्राप्त होता॥ जब दृश्य भासती है॥ तब द्रष्टा देखणे
विषे नहीं आवता॥ सो दृश्य कछु वस्तु नहीं॥ तातें द्र
ष्टा एक परमात्मा ही अपणे आप विषे स्थित है॥ जो
आत्मदेव सर्वशक्तिरूप है॥ जैसा जैसा फुरणा ति
स विषे फुरता है॥ तैसा तैसा शीघ्र ही हो भासता है॥
जैसे बसंत ऋतु विषे एक ही रस अनेक रूप कों धा
रता है॥ सब फुल फल टास होता है॥ तैसे आत्मस
त्ता अनेक जीव देह होकर भासती है॥ जैसे अपने
अंतर ही अनेक स्वप्न भ्रम कों देखता है॥ तैसे जी
व अहं आदिक अनेक जगत भ्रम कों देखता है॥
पर स्वरूप तें कछु हूया नहीं॥ जैसे समुद्र तरंग अ
पणे आप विषे उठावता है॥ जैसे तिलों विषे तेल
स्थित है॥ तैसे चिदघन विषे अनेक शक्ति स्थित हैं॥
आकाश पवन अग्नि जल पृथवी सर्व तत्वों विषे
शक्ति स्थित हैं॥ ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं॥ जो चित्त
सत्ता तें रहित होवै॥ जहां चित्तसत्ता है॥ तहां तिसका
आभासरूप शक्ति स्थित हैं॥ जैसा तिस विषे फु
रणा होता है॥ तैसा तैसा हो भासता है॥ सबका अ
धिष्ठानरूप आत्मा है॥ जैसे जेते कमल हैं॥ तिनको
पूर्ण करणेहारा जल है॥ तिसकर सब प्रकाशते

हैं॥ अरु सुजीत होते हैं॥ तैसें सृष्टीको सत्ता देणे हा
रा आत्मा है॥ जैसे जलके विषे तरंग होते हैं॥ तैसे आ
त्म अनुभव विषे अनेक जगत होते हैं॥ सो अभि
न्न रूप हैं॥ तातें द्वैत भ्रमकौं दूर कर॥ न कोऊ देश
है॥ न काल है॥ न क्रिया है॥ न जगत है॥ केवल एक
अद्वैत तत्व अपणे आप विषे स्थित है॥ जैसे आका
श विषे आकाश स्थित है॥ तैसे आत्मसत्ता अपणे
आप विषे स्थित है॥ ब्रह्मा तें आदि चींटी पर्यंत जे
ता कछु जगत भासता है॥ सो एक आत्मा ही अप
णे आप विषे स्थित है॥ जैसे एक रस सत्ता फल फ
ल दास हो भासती है॥ तैसे एक परमात्म सत्ता क
हूं चैतन्य कहूं जड रूप दिखाई देती है॥ जो सर्व
गत अविनासी आत्मा है॥ सो ईसन का बीज रूप है
सन जगत तिसके अंतर स्थित हैं॥ जिसकौं आत्मा
का प्रमाद है॥ तिसकौं नानात्व रूप भासता है॥ जैसे
एक स्वप्नेकौं त्याग बहुड अवर स्वप्नेकौं प्राप्त हो
वे॥ तैसे प्रमाद दोष करके एक भ्रमकौं त्याग कर
अवर भ्रम नाना प्रकार के अज्ञान कर देखता है॥
अरु जगत आत्मा विषे भेद कछु नहीं॥ सन जगत
आत्मरूप है॥ काहे तें जो आत्मा ही जगत की न्याई
हो भासता है॥ जैसे विचार तें रहित पुरुषकौं स्वर्ण
विषे भूषण बुधि होती है॥ अरु विचार कीये तें भू
षण बुधि नष्ट हो जाती है॥ स्वर्ण ही भासता है॥ तैसे
जिसकौं सतसंग अरु सतशास्त्रौं तें विचार उपज
ता है॥ तिसकौं भोगौं की तृष्णा मिटती जाती है॥ अ
रु अनुभव परमार्थ सत्ता भासती है॥ जैसे किसीकौं
ताप चढ्या होता है॥ अरु औषध कर ताप निवर्त
हो जाता है॥ तब दोल हुए तिस विषे प्रत्यक्ष हो
ते हैं॥ एक तृषा अरु तप्त निवर्त हो जाती है॥ सीत
लता अरु भूष प्रगट होती है॥ तैसे जिउ जिउ विवे

२१

21

कहृ[illegible]होताहै॥ तिंउतिंउइंद्रीयोंकाजीतणासुगु
महोताहै॥ तबसंतोषकरअंतरशीतलहोताहै
मुखकेकहणेकरसंतोषनहीहोता॥ जैसेचित्र
कीमूर्तिपरअंमृतलिख्याहोताहै॥ सोपानहोणेअ
रअमरहोणेकाकार्यनहीकरती॥ जैसेमूर्तिकी
अग्निसीतकोंनिवृत्तनहीकरती॥ तैसेमुखकेवि
वेककरभोगोंकीतृस्नानिवर्त्तनहीहोती॥ सांति
कोंतौनहीप्राप्तहोता॥ हेरामजीअथमेंजोविवेक
आवताहै॥ तबरागद्वेषकोंनाशकरताहै॥ अरु
ब्रह्मलोकपर्यंतजेतेकछुविषयसुखहैं॥ तिन
कीतृस्नाअरुवैरभावकोंनष्टकरताहै॥ जैसेसू
र्यकेउदेहूएअंधकारकाअभावहोजाताहै॥ तैं
सेविवेककेउदेहूएअज्ञाननष्टहोताहै॥ अरपा
पद वनेकोंप्राप्तहोतीहै॥ ॥इतिस्थितप्रकरणे
जीवपिंडव्यापारोनामसर्गः॥१८॥ श्रीवसि
ष्ठोवाच॥ हेरामजीइसतेंआगेसुण॥ जिसके
जाणेतेंनिर्वाणपदकीप्राप्तहोतीहै॥ सर्वजीवों
काबीजपरमात्माहै॥ सोसर्वओरतेंअकाशकी
न्यांईस्थितहै॥ तिसकेफुरणेकानामजीवहै॥ सो
जीवजीवकेअंतरजगतहै॥ तिसकेआगेंओरना
नाप्रकारकीरचनाहै॥ वास्तवतेंजीवचिदघनस्व
रूपहै॥ सोअंतरबाहिरस्थितहै॥ सतजीवचिदघ
नरूपहै॥ जैसेकेलेकेथंभविषेपत्रहोतेहैं॥ तैंसे
आत्मसत्ताविषेजीवस्थितहैं॥ जैसेपुरुषकेअं
तरकीटहोतेहैं॥ तैंसेआत्माविषेजीवहैं॥ जैसेउ
ष्मकालविषेप्रस्वेदसेंजूयांलीखांआदिकउत्प
न्नहोत्यांहैं॥ तैंसेआत्मासोंचित्तकलाकेफुरणे
करजीवोंकेसमूहउत्पन्नहोआवतेहैं॥ बहुडजी
वजैसीजैसीसिधताकेनिमित्तयत्नकरतेहैं॥ तैंसी
गतिकोंप्राप्तहोतेहैं॥ जोदेवताकीउपासनाकर

ते हैं ॥ सो देवताकों पावते हैं ॥ जहीं के उपासक यहीं कों पावते हैं ॥ इसी प्रकार जिसकी उपासनां करते हैं ॥ तिसी कों प्राप्त होते हैं ॥ ब्रह्मके जो उपासक हैं ॥ सो ब्रह्मकों प्राप्त होते हैं ॥ तांते तुम महत पदकों अप्राप्ति यकरो ॥ जैसे शुक जी हरूप की ओर लागा ॥ तब अनेक प्रकार के हरूप नाम कों प्राप्त भया जब शुध बुधि की ओर आया ॥ तब निर्मल बोधकों प्राप्त भया ॥ तांते जिसकी कोऊ उपासनां करता है ॥ तिसी कों प्राप्त होता है ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन जाग्रत स्वप्न का जो भेद है ॥ सो कहो ॥ जाग्रत क्या है ॥ स्वप्न क्या है ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी दीर्घ काल का नाम जाग्रत है ॥ अरु अल्प काल का नाम स्वप्ना है ॥ इन विषे भेद कोऊ नहीं ॥ दोनों का अनुभव सम होता है ॥ जो शरीर के अंतर होकर जीवावता है ॥ तिसका नाम जीव तेज रूप है ॥ बीज रूप जीव धातु इह सभ तिसी के नाम हैं ॥ जीव धातु जब स्पंद रूप होती है ॥ सरीर रंध्रों विषे पसरती है ॥ तब मन वाणी देह कर सभ व्यवहार होता है ॥ रंध्र खुल जाते हैं ॥ तब इसकों जाग्रत कहीता है ॥ जब चित्त कला जाग्रत व्यवहार विषे थकती है ॥ अंतर मुख होय फुरती है ॥ तिस कर अंतर जगत नाम भासणे लागता है ॥ तब स्वप्ना कहीता है ॥ अब सुषुप्त का नाम सुणो ॥ मन वाणी सरीर कर जहां क्षोभ कोऊ नहीं ॥ अरु स्वछ तेज धातु अंतर स्थित होती है ॥ हिरदे को क्षोभ विषे प्राण वायु कर क्षोभ नहीं होता ॥ अरु नाडी रस कर पूर्ण होती हैं ॥ उस मार्ग सों प्राण वायु आवणे जावणे तें रहित होती है ॥ क्षोभ तें रहित सम चलती है ॥ तिसका नाम सुषुप्त है ॥ जैसे दीपक

इसचित

मतितकी

वायुतेंरहितग्रहविषेएकांतउजलप्रकासताहै॥
तैंसेसंवितसत्ताअपणेआपकाअनुभवलेती
है॥जैंसेतिलोंविषेतेलस्थितहोताहै॥तैंसेजी
वसंवितकलनांकरकलुषत मलीन तिसकालमोंअ
पणेआपविषेस्थितहोतीहै॥जैंसेबरफविषेशी
तलताहोतीहै॥घृतविषेचिकनाईहोताहै॥तैंसे
तहांसंवितविषेसंवितसत्तास्थितहोतीहै॥तिस
कानामसुषुप्तअवस्थाजडरूपहै॥तिससुषुप्त
अवस्थातेंजागे॥दृश्यभावकोंनप्राप्तहोवै॥निर्वि
कल्पसत्ताविषेस्थितहोवै॥सोज्ञानरूपतुर्याहै
तबव्यवहारपडाकरे॥तोभीजीवन्मुक्तिहै॥जा
ग्रतस्वप्नसुषुप्तविषेबंधमाननहीहोता॥हेराम
जीआत्मसत्तातेंफुरणांहोताहै॥अरुस्वरूपवि
स्मरणहोजाताहै॥अरुफुरणांदृढहोकरस्थि
तहोताहै॥इसकानामजाग्रतहै॥अरुस्वरूपतें
प्रमाददोषकरफुरेजगतभासे॥तिसकोंसतरू
पजाणे॥थोडाकालप्रतीतरहिकेबहुडनिवर्त्ते
होजावे॥तिसकानामस्वप्नाहै॥अरुदृश्यफुरणे
काअभावहोजावे॥अरुअज्ञानरूपजडतावृत्त
रहे॥तिसकानामसुषुप्तहै॥अनुभवविषेज्ञान
स्थितहै॥अरुजाग्रतस्वप्नसुषुप्तकाव्यवहारहो
वै॥अरुनिश्चेविषेइसकारागरंचकभीनहोवै
केवलज्ञानरूपविषेअहंप्रतीतहोवै॥वृत्ति
सतेंचलायमाननहोवै॥तिसकानामतुर्यापद
है॥तिसविषेजीवन्मुक्तिस्थितहोताहै॥औरजो
जीवहैं॥सोजाग्रतस्वप्नसुषुप्ततीनअवस्थाविषे
प्राप्तहोतेहैं॥जबनाडीअन्नकेरससोंपूर्णहोती
है॥प्राणपवनरिदेनामनाडीविषेनहीआवता
तबचित्तसंवितअज्ञानरूपसुषुप्तहोतीहै॥

जबअन्नरसनाडीसोंपचताहै॥ तबप्राणपवन
चलनेलागताहै॥ तबचित्तसंवित्तभोनरूपहो
करफुरणेलागतीहै॥ तिसफुरणेकरअपणे
अंतरहीवहिभ्रमजगतकोदेखतीहै॥ जैसेबी
जतेंवृक्षहोताहै॥ तैसेजगतभ्रमकोंदेखणेला
गी॥ जबवायुकास्वभावनाडीविषेबऊतहोताहै
तबचित्तसत्ताआकाशविषेउडतीहै॥ वायुअं
धारीआदिकपदार्थोंकोंदेखतीहै॥ जबकफ
कारसनाडीविषेअधिकहोताहै॥ तबफलव
जीजलमेघबगीचेआदिकपदार्थभासतेहैं॥
जबपित्तकीअधिकताहोतीहै॥ तबउष्णरूपअं
अग्निरक्तवस्त्रादिकभासणेलागतेहैं॥ इसीप्र
कारवासनाकेअनुसारजगतभ्रमकोंदेखती
है॥ जैसीजैसीभावनांद्रिढहोतीहै॥ तैसापदार्थ
होभासताहै॥ जबपवनक्षोभायमाननहोताहै॥
चित्तसंवितनेत्रादिकद्वारोंतेंबाह्यनिकसजा
तीहै॥ अरुरूपादिकोंकाअनुभवकरतीहै॥ सत
जानकर॥ तिसचिरपर्यंतकानामजाग्रतहै॥ वा
सनाकेअनुसारमनरूपीसरीरसाथनेत्रोंजि
कोंआदिकविनारूपरसादिककाअनुभवहो
ताहै॥ तिसकानामसुपनहै॥ स्वरूपतेनकोऊस्व
प्नाहै॥ नजाग्रतहै॥ नसुषुप्तहै॥ केवलब्रह्मसत्ता
अपणेआपविषेस्थितहै॥ तिसकेफुरणेकाना
मजाग्रतस्वप्नसुषुप्तहै॥ फुरणाचिरपर्यंतहोवे
तिसकानामजाग्रतहै॥ अल्पकालकानामस्व
प्नाहै॥ सोप्रतीतकाभेदहूया॥ वास्तवतेंकछूनहीं
जोवस्तुतेंभेदनहूया॥ तोजगतस्वप्नारूपहूयाकिं
उ॥ तांतेएहीभावनाहिरदेविषेदृढकरो॥ जोज
गतअसतरूपस्वप्नवतहै॥ सतभावनांकरणी

इस विषे दुःख का कारण है ॥ ॥ इति स्थितप्र
करणे जाग्रत स्वप्न सुषोपत तुर्यारूप वर्ननं ना
म सर्गः ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इह
मय तुजकों मन का स्वरूप निरूपण कर दिखा
या है ॥ अवस्था का निरूपण भी इसी निमित्त कीया
है ॥ और प्रयोजन कछु न था ॥ जैसा निश्चा चित्त वि
षे होता है ॥ तैसा ही होना सत्ता है ॥ जैसे अग्नि विषे
अकूती पाई अग्निरूप हो जाती है ॥ तैसे मन जिस
पदार्थ साथ मिलता है ॥ तिसी का रूप हो जाता है
अभाव भाव ग्रहण त्याग सभ मन ही कर होता है
और न कोउ सत है ॥ न असत है ॥ केवल मन की
चपलता कर के पड फुरते हैं ॥ मन के मोह कर जग
त भासता है ॥ मन के नष्ट हूएं सभ जगत नष्ट हो जा
ता है ॥ जो मन मलिन है ॥ सो आपणे फुरणे कर जग
त कों रचता है ॥ इह मन ही पुरुष है ॥ इसको तुम अ
शुभ मार्ग विषे नही जोडणा ॥ जब मन को जीतोगे
तब सभ जगत मों तुमारी जीत होवेगी ॥ मन के जी
ते सभ जगत जितीता है ॥ तब वेही विभूत प्राप्त
होती है ॥ जो सरीर का नाम पुरुष होवे ॥ तो सरीर
शुक्र का पडा था ॥ और सरीर न रचता सरीर उहां
पडा रहा ॥ अरु मन और सरीरों कों रचता फिरता
तां ते सरीर का नाम पुरुष नहीं ॥ मन ही का नाम पु
रुष है ॥ सरीर चित्त का कीया हूया है ॥ सरीर कां कृ (कॅया)
(की) या चित्त नहीं ॥ जिस ओर चित्त जो लागता है ॥ तिसी
पदार्थ की प्राप्त होती है ॥ इस विषे संसा नहीं ॥ तां ते
(सदा) अतुछ पद आत्म सत्ता है ॥ चित्त विषे तिसका अ
नुसंधान करो ॥ और नाम कों त्याग देवो ॥ जब मन
ह रूप की ओर संसरता है ॥ तब अनेक जन्मों के
दुःख कों पावता है ॥ अरु जो आत्मा की ओर इस

का प्रवाह होता है॥ तब परम पद को प्राप्त होता
है॥ तातें इस प्रपंच मन को त्याग कर॥ आत्म पद वि
षे स्थित होवो॥ ॥इति स्थितगकरलोभा
गविउपाख्याने समाप्तम्॥ २०॥ श्रीरामो
वाच॥ हे भगवन सर्व धर्मों के वेत्ता मेरे तांई ब
डा संसय उत्पतन भया है॥ जैसे समुद्र विषे तरंग
उपज कर पसरता है॥ तैसे देश काल वस्तु के
परिछेद तें रहित नित निर्मल विस्तृत निरा
मय आत्म सत्ता है॥ सो तिस विषे जीव मलिन सं
वित है॥ मन नाम भी सो कहींते आई है॥ अरु कैं
से स्थित भई है॥ जिस तें इतर वस्तु नहीं॥ न आ
गे होवेगी॥ तिस विषे कलंकता कहींते आई है॥
॥श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी तुझ भला पूछा
है॥ तेरी बुद्धि अब मोक्ष भागी हुई है॥ जैसे नंद
न वन के वृक्ष साथ मंजरी लागती है॥ तैसे ते
री बुद्धि अब पूर्व अपर के विचार विषे लागी
है॥ तूं अब तिस पद को प्राप्त होवेगा॥ जिस पद
को शुकादिक प्राप्त भए हैं॥ अरु तेरे प्रश्न का उ
त्तर मय सिद्धांत काल विषे कहूंगा॥ अरु ति
स काल विषे तुझ को आत्म पद हस्तामलवत
भासेगा॥ हे रामजी सिद्धांत काल के प्रश्न का
उत्तर भी सिद्धांत काल विषे शोभता है॥ जिज्ञासा
काल विषे जिज्ञासा ही को शोभता है॥ जैसे वर्षा
काल विषे मोर की वाणी शोभती है॥ तैसे प्रश्न
उत्तर भी जैसा समा होवे॥ तैसा ही शोभता है॥
हे रामजी मय तुझ को अनेक प्रकार के दृष्टां
त युक्तां कर के कहूंगा॥ मन का रूप अरु जि
स प्रकार निवर्त्त होता है सो भी कहूंगा॥ मन
के शांति होने का उपाव वेदों ने कहा है॥ अरु
शास्त्रों ने भी कहा है॥ सो श्रवण कर॥ चंचल

जोमन है॥ जैंसा जैंसा भाव तिसनें अंगीकार कीया
है॥ तैंसा रूप होकर भासणे लागता है॥ जैसे पव
न जैंसी सुगंध साथ मिलता है॥ तिसका रूप होजा
ता है॥ जैंसे जल जिस रंग साथ मिलता है॥ तैसा रू
प होभासता है॥ तैसे मन जिस पदार्थ साथ मिलता
है॥ तिसका रूप होजाता है॥ जोक्रिया मन विनां स
रीर साथ करीती है॥ तिसका फल कछु नहीं होता
अरु मन करके करता है॥ तिसका फल पूर्ण हो
ता है॥ जिस औरमन जाता है॥ सरीर भी तिसी औ
र लागा जाता है॥ जोकर्म इंद्रीयों द्वोनवान होती
होवें॥ अरु बुधि इंद्री भी द्वोनकों प्राप्त होवे॥ अरु
देह इंद्री स्थित होवे॥ तो कार्य होता है॥ जैसे घड
द्वो भायमान होवे॥ तब पवन विनां आकास्रावि
बेउफ नहीं सकती॥ अरु पवन द्वो भायमान हो
वे॥ तब भावें कैंसी घूड स्थिर होवे॥ पवन उसकों
उफा लेजाता है॥ तैंसे देह पडा रहता है॥ अरु मन
अपने फुरणे कर स्वप्न विषे अनेक अवस्थाकों
प्राप्त कर्त्ता है॥ अरु देहकों भी लेजाता है॥ तांते स
भ कार्यों का बीज मन है॥ मनतें सभ कार्य होते हैं
इह परस्पर अभिन्न रूप हैं॥ जैसे फल अरु सुगं
ध अभिन्न रूप हैं॥ तैसे मन अरु कर्म अभिन्न रू
प हैं॥ जिस कर्मका अभ्यास मन विषे द्रिड होता है
तिस कर्मकी सा खा पसरती है॥ अरु तिसी फल
कों प्राप्त होता है॥ अरु तिसी स्वादका अनुभव क
र्त्ता है॥ जिस जिस भावकों चित ग्रहण कर्त्ता है॥
तिसी भावकों प्राप्त होता है॥ अरु तिसीकों कल्या
ण मानता है॥ धर्म अर्थ काम मोक्ष इह चार पदा
र्थ हैं॥ तिस विषे मन जिसकी भावना कर्त्ता है॥
तिसीकों सिध करता है॥ कपलदेव मुनि जो आ
र्ष कीए हैं॥ तिसनें निर्णय कीया है॥ प्रक्रित जो है

माया तिसके दो स्वभाव हैं॥ एक अनुलोम प्रणा
म है॥ दूसरा प्रतिलोम परणाम है॥ जब प्रतिलो
म प्रणाम होता है॥ तब इह पाप भाव कों प्राप्त होता
है॥ अरु जब अनुलोम प्रणाम होता है॥ तब अं
तर्मुख आत्मा की ओर आवता है॥ आत्मा शुध
रूप है॥ आत्मा की ओर अनुलोम प्रणाम मोक्ष
का कारण है॥ अवर उपाव कोऊ नही॥ अरु वेदां
तवादी उनो इह निश्चा कीया है॥ जो इह सर्व ब्रह्म
ही हैं॥ सम दम आदिक करके जब मनन में पूर्न हो
ता है॥ तब इह धारणा निश्चै होती है॥ जो सर्व ब्रह्म
है॥ ब्रह्म ज्ञान बिनां मुक्ति नही होती॥ अवर यत
न विषे मुक्ति नही॥ उनके चित्त विषे एही निश्चा है॥
अरु विज्ञानवादी कहते हैं॥ जब लग बुधि पडी
फुरती है॥ तब लग संसार है॥ जब इसका फुरणा
अपणे स्वभाव विषे होता है॥ उस काल विषे स्व
रूप स्थित होता है॥ जब उह काल आवेगा॥ तब
मोक्ष की प्राप्त होवेगी॥ अरु हे रत जो सर्व वडा हैं
तिन कों अपणे निश्चे के अनुसार है॥ जैसा निश्चा
दृढ होता है॥ तैसा ही भासता है॥ मीमांसा पातंजल
सांख्य न्याइ ते आदि लेकर जो शास्त्र हैं॥ अपणी
बुधि करके जैसा निश्चा तिनों धारता है॥ तैसा ही
तिन को भासता है॥ स्वरूप तें न कोऊ मत्त है॥ न शा
स्त्र है॥ सभना का कारण मन है॥ मन कों अंगीकार
करके सभने मत कूए हैं॥ सभना का कारण मन है॥ न
निमक टुक है॥ नां नासिष्ट है॥ न अगनि उष्म है॥
न चंद्रमा शीतल है॥ जैसा जैसा जिसके मन विषे
निश्चा होता है॥ तैसा तैसा तिसको हो भासता है॥
किसको निम ग्रातम होती है॥ किसकों गना कदु
क लागता है॥ अरु विरोहणी स्त्री कों चंद्रमा अग
नि की न्याई भासता है॥ अरु चकोर अगनि कों भक्ष
ण कर लेता है॥ जैसी भावनां पदार्थ विषे होती

है॥ तैसा तैसा होना सत्ता है॥ सन जगत भावना
मात्र है॥ जिस पुरुष को दृश्य की भावना है॥ सो
अनेक दुःख नाम को देखता है॥ अरु जिन को
सम दम आदिक साधन करके अरु उत्तम पद
की भावना हुई है॥ उस विषे मन तदाकार भया
है॥ सो अंत को प्राप्त होता है॥ और नहीं प्राप्त हो
ता॥ हे रामजी इह जगत दृश्य तेरे मन के स्मर
ण विषे स्थित है॥ सो तुच्छ रूप है॥ इस को त्याग
करो॥ इह दृश्य महा नेम को देणेहारी है॥ इस
की भावना नय का कारण है॥ जगत साथ सं
वित का तनमय होवणा इस का नाम बुधीश्वर
कर्म कहते हैं॥ जब द्रष्टा को दृश्य साथ संयोग
होता है॥ तब म ह को प्राप्त होता है॥ दृश्य सा
थ मिलकर तमसों अनात्मा विषे आत्मा निमा
न करता है॥ देहादिकों को अपणा आप जानता
है॥ स्वरूप की पछाण इस को नहीं रहती॥ इस
का नाम बुधीश्वर मन कहते हैं॥ जिस के आगे
मन का पटल है॥ तिस को स्वरूप भान नहीं हो
ता॥ जैसे सूर्य के आगे मेघ का आवर्ण आवता
है॥ जो वह मेघ का अरूप है॥ तो भी नहीं भासता॥
तैसे मन के आवर्ण कर के आत्मा नहीं भासता
तो तै मन रूपी आवर्ण को नाश करो॥ मन का
स्फुरणा है॥ तिस को संकल्प विकल्प कहता
है॥ जो संकल्प फुरे॥ तिस को त्याग कर निसंक
ल्प होणा तब मन नष्ट हो जाता है॥ हे रामजी इ
स भाव कर तूं असंग संग होवेंगा॥ तब सर्व सम
विषे द्रष्टा पुरुष प्रसन्न होवेगा॥ तिस कर नि
र्विकल्प चिदात्मा की प्राप्त होवेगी॥ तहां जगत
की न सत्ता है न असत्ता है॥ न सुख है न दुःख है
केवल केवली भाव है॥ अपणा आप विषे प्रका

जाता है ।। जब संसार की भावनां तेरे हृदे सों उठ जा
वेगी ।। निर्मल स्वभाव विषे स्थित होवैगा ।। जैसे जेव तब
डी के सम्यक ज्ञान कर के सर्प भ्रम नष्ट हो जाता है
तैसे चैतन्य आत्मा के सम्यक ज्ञान कर दृश्य बुधि
नष्ट हो जाती है ।। जैसे दिन के उदै राति का अभाव
हो जाता है ।। तैसे चैतन आत्मा के सम्यक ज्ञान कर
दृश्य बुधि नष्ट हो जाती है ।। हे रामजी तेरा स्वरूप आ
त्मा है ।। तूं बुधि आदिकों की कलनां मत कर ।। जैसे
गैठ कों सिंह जान कर बालिक भयमान होता है
तैसे अग्य जड सरीर विषे अहं बुधि होती है ।। तब भै
य कों पावता है ।। इह मय हों इह और है ।। इत्यादिक
कलना जो आत्मा विषे होती है ।। सो असे है ।। जैसे बा
लिक कों अपणे परछावें विषे वेताल भासता है ।।
तैसे इस कों अपणी कलनां कर भावा भाव पडे भा
सते हैं ।। एक स्त्री विषे काम बुधि होती है ।। अरु एक
स्त्री विषे माता बुधि होती है ।। तिस तें काम भावनां
जाती रहती है ।। ता तें तूं देख जैसी भावनां होती है ।।
तैसा तैसा होना सता है ।। भावनां के अनुसार इस कों
फल होता है ।। असा पदार्थ कोऊ नहीं ।। जो सत नहीं
अरु असा पदार्थ कोऊ नहीं ।। जो असत नहीं ।। जैसे
जैसे किसी नें निर्णय कीया है ।। तिस कों तैसे ही भास
ता है ।। ता तें इस संसार की भावनां को त्याग कर स्वरू
प विषे इस्थित होवो ।। हे रामजी मणि विषे जो प्रति
बिंब पडता है ।। तिस के दूर करणे कों समर्थ कोऊ न
हीं होता ।। तूं चैतन्य आत्म रूप हैं ।। तेरे विषे जो दृश्य
अनात्मा का प्रतिबिंब पडता है ।। तिस का त्याग क
र ।। जो इस दृश्य का संकल्प मिथ्या भ्रम है ।। तिस कों
त्याग ।। अरु अप्रकित व्यवहार आन प्राप्त होवे ।। तिस
कों कर ।। परम मणि की न्यांई अंतर तें निर्लेप हो ।। जैसे
प्रतिबिंब बाहिर दृष्ट आवता है ।। अंतर तें रंग नहीं

चडता॥तैंसेबाल्यदृष्टव्यवहारतेरेविषेनासें॥पर
अंतरतेंरागद्वेषसपरसनकरे॥ ॥इतिस्थित
प्रकरणेविज्ञानवादोनामसर्गः॥२१॥श्रीव
सिष्टोवाच॥हेरामजीजबइसजीवकोंसंतोंके
संगकरअरुसतशास्त्रोंकेविचारकरविचारउ
त्पनहोताहै॥तबअौरतेंवृत्तउपशमहोजातीहै
अरुसंसारकामननभावदूरहोजाताहै॥अरु
विवेकरूपीबुधिआनउदेहोतीहै॥तबसंसार
दृश्यकात्यागउपजताहै॥द्रष्टाआत्मापुरुषप्रत्य
क्षभासताहै॥अरुदृश्यअदृश्यताकोंप्राप्तहोती
है॥अर्थइह॥जोद्रष्टादृश्यकोंअसतरूपजानता
है॥इहपुरुषज्ञातज्ञेयहोताहै।परमतत्वविषेजा
गताहै॥जबअैसीबुधिदृढहोई॥तबमनअपणी
सत्ताकोंत्यागकरआत्मरूपहोताहै॥जैसेबरफ
कापुतलासूर्यकेतेजकरजलरूपहोजाताहै॥तैं
सेमनआत्मरूपहोताहै॥जबमनविषेसंसारकी
सत्ताहोतीहै॥तिसफुरणेकरमनजडभागीहो
ताहै॥जबविवेकरूपीबुधिउदेहोतीहै॥तबआ
त्मरूपहोजातीहै॥जैसेमारुस्थलविषेजलका
अभावभासताहै॥तैंसेसंसारकीदृश्यभावनान
ष्टहोजातीहै॥हेरामजीसंसाररूपीवासनाकोजा
लहै॥तिसविषेजीवरूपीपंखीफासतेहैं॥जबवै
राग्यरूपीचूहावासनारूपीजालकोंकाटै॥तब
जीवबंधनतेंछुटै॥जैसेमलिनजलनिर्मलीके
डारनेतेंजलनिर्मलहोताहै॥तैसेवैराग्यकरजीव
निर्बंधनहोताहै॥अरुजगतभ्रमनष्टहोजाताहै
अरुज्ञानतिसुखकरपूर्णहोताहै॥जैसेपूर्णमासी
काचंद्रमाशोभताहै॥तैसेज्ञानवानशोभताहै॥रा
गद्वेषनष्टहोजातेहैं॥सर्वसमताभावविषेस्थित
होताहै॥जैसेपवनतेंरहितसमुद्रअचलरूपहो

ता है॥ तैसे असंगपुरुष द्रष्टा का वासनों तें रहित
[redacted]॥ अचल होता है॥ जिसकी बुद्धि विवेक वि
चार कर प्रफुल्लित होती है॥ उह सन्चेतन्य प्रका
श रूप देखता है॥ जैसे सूर्य के उदे हूए सूर्यमुखी
कमल प्रफुल्लित होते हैं॥ तैसे उह पुरुष ब्रह्मलक्ष्
मी कर शोभता है॥ सो ज्ञानतें यह पुरुष आकाशवत्
निर्मल होता है॥ हेय उपादेय तें रहित आत्मपद वि
षे स्थित होता है॥ विचार करके जिन आत्मतत्व को
जाण्या है॥ सो तिस पद को प्राप्त होता है॥ जहां ब्रह्मा
विष्णु रुद्र स्थित हैं॥ इस पर सन्त प्रसन्न होते हैं॥ अ
रु इह सन्त को आत्मरूप देखता है॥ प्रगट अकार
उसको भासता है॥ पर उह अंतर अहंभाव तें रहि
त होता है॥ विकल्पों के समूह उसको खैंच नहीं स
कते॥ जैसे जल के अभाव ज्यों ते मृगतृष्णा की
नदी खैंच नहीं सकती॥ तैसे उसको विकल्प खैंच
नहीं सकते॥ हे रामजी आविर्भाव (प्रगट) अरु तिरोभा
व जो संसार है॥ तिसको रमणीक जानकर ज्ञान
वान खेद नहीं पावता॥ न देह के नाश विषे नाश मा
नता है॥ न देह के रहणे विषे सुष मानता है॥ जैसे घ
ट के उपजे तें आकाश उपजता नहीं॥ अरु घट के
अभाव हूए नष्ट नहीं होता॥ तैसे देह के उपज
णे तें आत्मा उपजता नहीं॥ अरु देह के नष्ट हूए
नष्ट नहीं होता॥ जो ऐसे देखता है॥ सोई यथार्थ
देखता है॥ जो सन्चेतन्य भासता है॥ अरु मय भी अ
नंत चिदाकाश हों॥ देश काल के परिछेद तें रहित
निर्विकार हों॥ ऐसे जो देखता है॥ सोई देखता है॥
बाल के अग्र को लखवां भाग करीये॥ इसतें भी
सूक्ष्म हों॥ सर्वव्यापी हों॥ जो ऐसे देखता है॥ सोई
देखता है॥ अध ऊर्ध विषे व्यापा हों॥ सर्वशक्ति अ
नंतात्मा हों॥ मुजतें इतर कछु नहीं॥ जो ऐसे देखता
है॥ सोई देखता है॥ जैसे समुद्र के मणे के परोए होते हैं

परमात्मा हैं

सर्व २

२८

27.

तैसे सन मुजकर परोए हैं ॥ जो ऐसे देखता है ॥ सो
ई देखता है ॥ अरु तुंनी कहता है ॥ न मय हों न ज
गत है ॥ केवल ब्रह्मसत्ताही सर्व स्थित है ॥ सत अ
सत के मध्य विषे जो एक देव प्रकाशता है ॥ अरु
त्रिलोकी विषे तुंही व्यापक है ॥ सो मय एक पुरुष
अविनाशी हों ॥ जैसे समुद्र विषे तरंग फुरते हैं ॥ अ
रु लीन भी होते हैं ॥ जो ऐसे देखता है ॥ सोई देखता
है ॥ प्रथम मय होती है ॥ तब पाछे दृश्य जगत होता
है ॥ सो न मय हों ॥ न दृश्य जगत है ॥ केवल एक आ
त्मसत्ता है ॥ अहं मम तिस विवेको कछु नहीं ॥ जो ऐ
से देखता है ॥ सोई देखता है ॥ मय दृश्य ते रहित चैत
रूप न्य अपार हों ॥ अरु जगतजाल को पूर्ण कर रहा हों ॥
ऐसे जो देखता है ॥ सोई देखता है ॥ जो ज्ञानवान पु
रुष है ॥ सो सुख दुःख विषे चलायमान नहीं होता ॥
केवल अपने स्वरूप विषे स्थित होता है ॥ अवर ज
अफुर रूप है
गत की भावनां ते रहित सन्मात्र अनाभास रूप है ॥
हेय उपादेय ते रहित अप्रकाश वत सर्वात्म भाव वि
षे स्थित है ॥ सर्व कलनां ते रहित स्वच्छ रूप है ॥ उदे
अस्ति ते रहित सम वर्त्तते है ॥ ॥ इति स्थितु गक
रतो अन उत्तमपदस्वरूपविश्रांत नाम सर्गः ॥ ॥
॥ २२ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी उत्तम पद का
जिस आश्रय लीया है ॥ ऐसा जो जीवन्मुक्ति पुरु
ष है ॥ सो कुंभार चक्र की न्याई प्रारब्ध तिस की शेष
रहती है ॥ सो पुरुष सरीर रूपी नगर विषे राज करता
है ॥ अरु लिपायमान भी नहीं होता ॥ तिस को भोग
मोक्ष दोनों तुल्य हैं ॥ उह सरीर के सुख साथ सु
खी नहीं होता ॥ अरु दुःख साथ दुःखी नहीं होता
अपने स्वरूप विषे स्थित रहता है ॥ श्रीरामोवा
च ॥ हे मुनीश्वर सरीर रूपी नगर कैसा है ॥ अरु

तैसे मेरे विषे जगत फुरते है

सविषे रहि कर योगीराज कैसे कर्त्ता है ॥ सुख कैं
से भोक्ता है ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी ज्ञानी
का सरीररूपी नगर कैसा रमणीक होता है जैं ॥ स
र्वगुणसंयुक्त ज्ञानवान कों आनंद विषे आनंद
विलास है ॥ जैसे सूर्य का प्रकाश उदे होता है ॥ तै
से उह मन बेललछमी कर सोभता है ॥ प्राणवायु
आदिक जीव विचरते हैं ॥ नाडी विषे । आत्मचिं
तामणि कल्पलता तिस विषे रहती है ॥ अरु श्रेष्ट
बुधि इंद्रीयां रूपी बांतर बाध्य छोडते हैं ॥ हसणे
रूपी तिस विषे महाफुलते हैं ॥ ऐसा सरीर ज्ञान
वान कों सुख के नमित्त है ॥ सो नाम सुंदर रूप है
सरीर के सुख दुःख कर ज्ञानवान सुख दुःख न
ही मानता ॥ सरीररूपी नगर विषे निहकंटक रा
ज कर्त्ता है ॥ लोभ तें रहित । लोभ अरु अज्ञान श
त्रों कों अपणे देस विषे आवणे नहीं देता ॥ अरु
तिन के देस विषे आप भी प्रवेश नहीं कर्त्ता ॥ अ
पणा देस कवन है ॥ उदारता धैर्य संतोष वैराग्य
समता मैत्री ज्ञानवान का देस है ॥ तिन विषे अ
ज्ञान कों प्रवेस नहीं करणे देता ॥ अपणे नगर वि
षे सतता अरु एकता दोनों स्त्रीयां कों साथ राख
ता है ॥ तिन कर सदा सोभायमान रहता है ॥ जैसे
चंद्रमा रोहणी अरु विसाखा दोनों स्त्रीयां कर
सोभता है ॥ तैसे ज्ञानवान सतता अरु एकता क
र सोभता है ॥ मनरूपी घोडे पर आरूढ होकर ती
र्थी के स्नान कों गमन कर्त्ता है ॥ अरु विचाररूपी
तिस की लगाम राखता है ॥ अरु जीव ब्रह्म की ए
कतारूपी संगम तीर्थ विषे स्नान करता है ॥ सदा
जैसे प्रकार पिता पुत्र
आनंदमान रहता है ॥ भोग मोक्ष दोनों कर संपन्न
होता है ॥ जैसे इंद्र अपणे पुर विषे सोभता है ॥ तैं

से ज्ञानवान देह विषे शोभता है ॥ जैसे घटके फू
टनेतें आकाशकी कछु ऊनता नही होती ॥ जिंउ
का तिंउ होता है ॥ तैसे ज्ञानवानको देहके नाशतें
एक कछु हानि नही होती ॥ जैसे आकाशको घट
का स्पर्श नही होता ॥ तैसे ज्ञानवान किसी विषे
लिपायमान नही होता ॥ सदा एकरस भगवान
आत्मदेव स्थित होता है ॥ समता अरु एकता
सदा तिसके पास रहती है ॥ तिनकर सोभता है
आनंदमान विचरता है ॥ अवर जीवोंको चिंता
रूपी अगारेसाथ कटीता देखता है ॥ जैसे कोऊ प
हाडऊपर चडकर पृथिवीऊपर लोकोंको जल
ता देखे ॥ अरु आप आनंदमान रहे ॥ तैसे ज्ञान
वान जीवोंको चिंता मो जलता देखकर आपको
आनंदमान देखता है ॥ उसकी दृष्टि विषे तो स
दा अद्वैत भासता है ॥ पर आत्मानंदको अप्राप्त हो
कर अनात्मधर्मवालोंको दुःखी देखता है ॥ उ
सके निश्चय विषे जगत जीव कोऊ नही ॥ सर्व ब्रह्म
सत्ता ही भासती है ॥ अरु चारो प्रयोजन धर्म अ
र्थ काम मोक्ष तिसके पूर्णताको प्राप्त भए हैं ॥
किसी औरतें उसको न्यूनता नही भासती ॥ सदा
संपदा संपन्न विराजमान होता है ॥ जैसे पूर्णमा
सीका चंद्रमा न्यूनतातें रहित विराजता है ॥ तैसे
भोगोंको भोक्ता हुआ आवता है ॥ पर रिदे कर कभी
नही भोगता ॥ जैसे कालकूट विषको सदाशिव पा
न कीया ॥ पर तिसको दुःख दाइक न भई ॥ तैसे
ज्ञानवान भोगों विषे अभोक्ता है ॥ जैसे चोरको प
किडकर ख वसी कीया ॥ तब मित्रताव होजा
ता है ॥ तैसे ज्ञानवानको भोग दुःख नही देते ॥ हे
रामजी जैसे कोऊ यात्राको जाता है ॥ अरु मार्ग
विषे स्त्रीयों पुरुष मिलते हैं ॥ तिन विषे बंधायमान
नही होता ॥ तैसे ज्ञानवान संसारके पदार्थों विषे

वंधायमाननहीहोता॥ जैंसेमोरकेपुछकरपहा
डचलायमानुनहीहोता॥ तैंसेज्ञानवानसंसार
केरागद्वेषविषेचलायमाननहीहोता॥ तिस
कीवासनाकेसमूहसम्यकज्ञानकरनष्टभए
हैं॥ चक्रवर्तीराजाकीन्याईशोभताहे॥ जैंसेक्षी
रसमुद्रअपणेआपकरशोभताहे॥ तैंसेज्ञानवा
नअपणेआपकरशोभताहे॥ हेरामजीइसजी
वकोंभोगोंकीइछानाशकरतीहे॥ तिसकरआ
त्मपदतेंगिडताहे॥ अनात्मपदविषेप्राप्तहोतेहैं
केकालताकोंपावतेहैं॥ तिनकोदेखकरआत्म
पदवालेहसतेहें॥ जोइहमिथ्यावस्तसाथमि
लकरदीनभएहे॥ जैंसेस्वामीहोकरस्त्रीकेव
सहोवे॥ अरुस्त्रीस्वामीकीन्याईहोवे सोचेंचल
मनहींजीवोंकोंआत्मपदतेंगिडायकरदीनता
कोंप्राप्तकीयाहे॥ तातेमनरूपीहस्तीकोंविचार
रूपीकुंडेकरवशकरो॥ तबसिधताकोंपावो॥
जिसकामनविषयोंकीओरधावताहे॥ सोसंसा
ररूपीविषकाबीजपडाबोवताहे॥ तातेप्रथम
इसमनकोंताडनांकरो॥ तबशांतिकीप्राप्तहोवे
जोमानीहोताहे॥ अरुउसकीमानकरीतीहै॥ तब
उहउपकारकछुनहींमानता॥ जबप्रथमउस
कोंताडनांकरीतीहै॥ तबपाछेंथोडेउपकारकी
येतेंभीप्रसन्नहोताहै॥ जैंसेधानजलदेणेकर
वर्धमानहोताहे॥ अरुफलकोंपावताहे॥ तैंसेप्र
थमेंमनकोंताडनांकरवसकरीए॥ तबपाछें
मित्रभावकरणापरवानहै॥ सोताडनांक्याहे॥
जोविषयोंतेंसंयमकरावणा॥ जबसंयमकर
केनिर्मानहूया॥ तबशत्रुभावत्यागकरमित्रभा
वहोजाताहे॥ जिसपुरुषनेंइसमनकोंमर्दनकी
याहे॥ तिसकोंमेरानमस्कारहे॥ उहवडीविभूत

पूर्णहोतेहैं जबजलकेसंचणे
करडुनतेंउपकारनहीहोता
अरजोजेठआखाडकीधू
पकरतपतहोरहे तेहैंतब
थोराजलसंचणेकरभीउन
कोंअमृतवततहोताहे अर

कररुगोनताहै ॥ ॥ इतिस्थितप्रकरणेसरीर
नगरवर्णनंनामसर्गः ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठोवा
च ॥ हेरामजी अग्यानीजीवनरककोंप्राप्तहोते
हैं ॥ आसारूपीबाणोंकीसज्याकोंजागतीयांहै
इंद्रीयांरूपीशत्रुतिनकोंमारतेहैं ॥ सोइंद्रीयांबु
डीदुष्टरूपणहैं ॥ जिसदेहकेआश्रयरहतीहै
तिसकोंभीदुखदेतीहैं ॥ महादुखदायकहैं ॥ इन
कोंजीतो ॥ मनइंद्रीयांरूपीइलपंखीहैं ॥ जबबि
षयनहीहोते ॥ तबऊर्धकोंउडतीहैं ॥ जबविषय
ग्यानप्राप्तहोतेहैं ॥ तबनीचकोंगिडतीहैं ॥ जिस
पुरुषनेंविवेकरूपीजालसाथइनकोंबांध्या
है ॥ तिसकोंइहभोजननहीकरसकतीयां ॥ जैसे
पाषाणकेकमलकोंहस्तीभोजननहीकरस
कता ॥ हेरामजीइहभोगअपातरमणीयहैं ॥ जो
पुरुषइनविषेप्रीतकरताहै ॥ सोअंतनरककों
प्राप्तहोताहै ॥ अरुजोपुरुषग्यानकेधनकरसं
रूपादेश पन्नहूयाहै ॥ अरु देहविषेरहताहै ॥ तोभीपरम
सोभाकोंपावताहै ॥ आनंदमानहोताहै ॥ काहेतें
जोइंद्रीयांरूपीशत्रुतिनजीत्येहैं ॥ बडेईश्वर्य
कर ऐसासुखनहीप्राप्तहोता ॥ जैसासुखनि
नगर वासीग्यानवानकोंहोताहै ॥ (अपने) जिसरीरविषेरहिक
रइंद्रीयांअरुमनरूपीशत्रुकोंजीत्याहै ॥ सोपर
मसोभाकरसोभताहै ॥ जैसेहिमरुतकोंजीत
करबसंतरुतविषेमंजरीसोभतीहै ॥ जिसपुरु
षकेचित्तकागर्वनष्टभया ॥ अरुमनइंद्रीयांश
त्रुजीत्येहैं ॥ तिनकीभोगवासनानष्टहोजातीहै
जैसेसीतकालविषेकमलनीयांनष्टहोजाती
हैं ॥ हेरामजीवासनारूपीवेतालतबलगविच
रताहै ॥ जबलगएकताकादृढअभ्यासकर
मनकोंनहीजीत्या ॥ जबविवेकरूपीसूर्यउदे

होता है ॥ तब मनरूपी रात्रि नष्ट [illegible] हो जाती है ॥ जब
मन विवेक कर वस करीता है ॥ तब इंद्रीयां भी न्रत
ट हलूए हो जाती हैं ॥ अरु मनराजा भी मित्र हो जाता
है ॥ आप राजा होकर स्वरूप के राज कों भोगता है ॥ वि
वेकी कीयां इंद्रीयां पतिव्रता स्त्रीवत हो जाती हैं ॥ अ
रु मन पिता की न्यांई पालना करणे वाला होता है ॥
अरु चित्त सुहृद हो जाता है ॥ जब निश्चेवान पुरुष
शास्त्रों कों विचारता है ॥ तब परम सिधता कों प्राप्त हो
ता है ॥ अरु मन अपणे मननभाव कों त्याग कर शांत
रूप हो जाता है ॥ जैसे मणावों कों विंधके तागे साथ ई
परोवते हैं ॥ तब कंठ विषे पाए तें वडी शोभा पावते
हैं ॥ जैसे मनरूपी मणि कों आत्मविचाररूपी शिला
साथ चूर्ण करो ॥ अरु वैराग्य जल कर उच्चल करो ॥ चैसावो
अभ्यासरूपी सुलाक पाकर विवेकरूपी ताग से सा
थ परोवो ॥ बहुड कंठ विषे स्थित करणे कर बडी
शोभा देता है ॥ विवेक कैसा है ॥ जन्मरूपी वृक्षों का
कुहाडा है ॥ तिन कों काटता है ॥ अरु मनरूपी शत्रु
कों मित्र करता है ॥ सदा शुभ कर्मों कों करावता है ॥ अ
रु विषय भोगों कों निकट नहीं आवणे देता ॥ हे रा
मजी मनरूपी मणि है ॥ सो भोगों की तृष्णा कर कल
कित हो रही है ॥ विवेकरूपी जल कर इसकों शुध
करोगे ॥ तब शोभा कों पावोगे ॥ तातें तुम विवेक पद का
आश्रय करो ॥ बोध सत्ता कर आत्मपद का अवलो
कन करो ॥ इंद्रयरूपी शत्रुओं कों जीत कर संसार समु
द्र कों तर जावो ॥ सरीर भी असत है ॥ अरु भोग भी अ
सत हैं ॥ अरु तुज को दामव्यालकट की बुधि मत हो
वे ॥ भीम भास दृढ की स्थित कों ग्रहण करके विशोक
वान होवो ॥ अहं मम आदिक जो निश्चा है ॥ सो वृथा है
तिसकों त्याग कर तत पद का आश्रय करो ॥ चलतें
बैठतें खातें पीतें मन विषे मनन का अभाव होवे ॥

॥ इति स्थित प्रकरणे भ्रमनसत्तागतिपादनं
नाम सर्गः ॥ २४ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे राम
जी इस लोक विषे बोधवानों की न्याई विचरो ॥ प
रम सार कों प्राप्त होवोगे ॥ दामव्यालकट की न्यां
ई मत होवो ॥ भीम भास दृढ की स्थित कों प्राप्त हो
वो ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन संसार ताप के
निवर्त्त करणे हारे इह तुमों क्या कहा ॥ इस कों खो
ल कर कहो ॥ जो दामव्यालकट की न्यांई नही हो
वणा ॥ अरु भीम भास दृढ की स्थित कैसी है ॥ जैसे
वर्षा काल का मेघ तप्त कों निवर्त्त करता है ॥ अरु
मोर कों आह्लाद कर जगावता है ॥ तैसे तुम अपणी कृ
पा कर जगावो ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इ
नों की वार्त्ता सुण ॥ पाताल कुहर विषे संबर नाम
दैत्यराज होता भया है ॥ सो माया रूप मणी का समुद्र
था ॥ अरु सर्व आश्चर्य रूप मन के मोहणे हारा
रमणीक दैत्य हूया है ॥ अपणी माया कर आका
श विषे नगर को रचता भया ॥ बाग नाना प्रकार के
सुंदर रचे ॥ अरु चंद्रमा सूर्य रचे ॥ अनंत ऐश्वर्य क
र दैत्य रचे ॥ अरु रत्नों कीयां स्त्रीयां गान चर्ची क
रें ॥ तिनों गान कर देवतों कों स्त्रीयां जीत्यो ॥ ऐसे
वृक्ष रचे ॥ चंद्रमा वत तिन कों फल लागे ॥ अरु रत
नों कीयां कमलनीयां ॥ अरु श्वेत पीत स्वर्ण वत
हंस रचे ॥ अरु मोर सारस पंखी स्वर्ण के रचे ॥ अनंत
प्रकार के वृक्ष तिन साथ रत्नों के फल फल रचे
सुंदर स्थान बरफ की न्यांई सुंदर बाग रचे ॥ अरु
चंदन के बाग रचे ॥ इंद्र का नंदन बाग रचा ॥ तिस
विषे देवतों कीयां स्त्रीयां क्रीडा करें ॥ अरु इंद्रा
दिक देवते रचे ॥ सो भी क्रीडा कों करते फिरें ॥ बडे
ऐश्वर्य संयुक्त ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक ईश्वर रचे
अपणा नगर कीया ॥ रत्नों के तारागण रचे ॥ बडे
प्रकाश संयुक्त ॥ जब रात्रि पडे तब असउ चंद्रमा ण

कन्याउदे होवे ॥ अरु पुत्रजीयां त्रान करें ॥ अरु मा
याके हस्ती ऐसे रचे ॥ जो इंद्रके ऐरावत हस्तीको
जीत लेवें ॥ त्रिलोकीकी विभूततें उत्कृष्ट विभूत
रची ॥ अंतरबाह्य सर्व संपदा होकर नगर पूर्ण की
या ॥ सर्व ऐश्वर्य कर संपन्न सन दैत्स मंडलेश्वर
वेदना प्रणाम करें ॥ अरु आप सर्व दैत्सोंका राजा
हूया ॥ सो सेनो करणेहारे सन इसकी आज्ञा वि
षे वर्तै ॥ इस प्रकार संपूर्ण राजस्थानोंके मंडले
श्वर तिसनें रचे ॥ जब सांबर दैत्स सयन करे ॥ अ
थवा देशांतरकों जावे ॥ तब अवकाशपाकर देव
ता तिसकी सेनाकों मार जावें ॥ अरु लूट भी ले जा
वें ॥ तब सांबरनें रक्षाकरणेहारे सेनापती रचे ॥ ब
ऊ.डसमापाइके देवते तिनकों भी मार गए ॥ तब
सांबर सुणकरके क्रोध कीया ॥ जो इनकों नाश क
रों ॥ ऐसे विचारकर अमरपुरीपर चढी करी ॥ दे
वते भयभीत होकर सुमेर पर्वतमों नवानीआंक
रके चनौंपास जाछपत भए ॥ बनकुंजे अरु
समुद्र विषे जाछपे ॥ जैसे प्रलयकाल विषे सर्व
दिशा शून्य होजाती हैं ॥ तैसे देवतों बिनो अमरपु
री शून्य होगई ॥ तब दैत्स अमरपुरीकों शून्य देख
कर कोपमान हूया ॥ अग्नि लगा दई ॥ लोकपालों
के पुर सभ जला दीए ॥ अरु देवतोंकों ढूंढणे ला
गे ॥ पर कहूं दृष्ट न आए ॥ जैसे पापी पुरुषोंकों देखे
अरु कहूं दृष्ट न आवें ॥ तैसे देवते कहूं दृष्ट न आ
वें ॥ तब सांबर क्रोधवान होकर बडे बली राक्षस
सेनाकी रक्षाके निमित्त रचे ॥ मानों कालकी मूर्ति
हैं ॥ ऐसे होकर स्थित भए ॥ मानों पर्वतों संयुक्त पह
ड उठते हैं ॥ ऐसे सरीर दांमे खोज कंठे तिनका

नामराष्या। हाथींचे षेवदे ह्रस्व अरु कल्पवृक्ष की
न्याई भुजा। अरु निर्विकल्प चिन्मात्र उसका स्वरू
प। पर अपणे स्वभाव विषे न थे। अरु अनात्मभा
व विषे भी प्राप्त न भए थे। इक स्पंदमात्र चेतनाक
र्म रूप उन विषे था। सो कर्मों का बीज चित्त कला स्पं
द रूपणी हुई थी। देवतों के प्रहार करणे को उस
ने रचे थे। तिसको पडे करें। अरु अंतर उनके स्प
ष्ट वासना को उन फुरे। अकस्मात्र स्वभाविक क्रि
या उनकी पडी होवे। जैसे अर्धसुषुप्त बालिक अ
पणे अंगों को स्वभाविक हलावता है। वासना तें र
हित। तैसे उह वासना विना चेष्टा करें। जो हम इन
को मारते हैं। के हम मरते हैं। न दौड जाणें। न भाग
जाणें। इह भी न जाणे। जो हम जीवते हैं। अथवा म
रते हैं। अरु जीत हार को भी कछु न जाणें। केवल अ
स्त्रों का प्रहार कर जाणे। जैसे जंत्र की पुतली ला
गे कर पडी चेष्टा करती है। तैसे दाम व्याल कट चे
ष्टा करें। महाबली जिनो के प्रहार कर पहाड भी
चूर्ण हो जावें। तिनको देखकर सांबर तुष्टमान
हूया। जो इह सेना की रक्षा करणे को बडे बली हैं
इनका नास उनसे न होवेगा। काहे तें जो इनों को इ
ष्ट अनिष्ट कछु नहीं। जिनको इष्ट अनिष्ट का भा
न वासना नहीं॥ तिनका नास कैसे होवे॥ अरु भा
गें कैसे॥ जैसे देवतों के हाथी महाबली हैं॥ तो भी
सुमेर पर्वत को उखाड नहीं सकते॥ दैत उनके चू
र्ण हो जाते हैं॥ तैसे देवते बली भी हैं॥ पर इनको
मार न सकैंगे॥ इह बडे बली दैत हैं॥ ॥इति
स्थितप्रकरणे दामव्यालकट उत्पत्ति वर्णनं
नाम सर्गः॥ २५॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे राम
जी इस प्रकार निर्णय करके सांबर दाम व्याल

कटकों स्थापन कीया ॥ अरु भूतल विषे दैत्यों
की सैना भी आई ॥ जब सांबर कहता था ॥ तब भी
गाए थे ॥ अब दाम व्याल कट कों देखकर ब
हुड आए ॥ सैनां को देखकर ॥ समुद्र सों पहाडों सें
निकसकर उछले ॥ एक और देवते निकसे
वही सैनां सहित युध करणे लागे ॥ एक और
दैत्य निकसे ॥ युध होवणे लागा ॥ जो जैसें प्रलयका
ल के समुद्र [illegible] क्षोभते हैं ॥ अरु सन जलमयी हो
जाती है ॥ तैसे देवते अरु दैत्य सर्व और तें पूर्ण
हो गए ॥ वहु बाणों कर युध करणे लागे ॥ संखों
की धुन होवै ॥ अरु निगारे वाजें ॥ ऐसे शस्त्र च
लावैं ॥ जो तारों की न्याई शस्त्रों का चमतकार हो
वे ॥ सरीरों सों सिर कट जावें ॥ धड कंपकंप गिर
पडें ॥ परस्पर दोनों ओर तें युध होवे ॥ अरु दाम व्या
ल कट तीनों भाग जाणे नही ॥ मारते ही जावें ॥ जि
न के प्रहार कर पहाड चूर्ण होवें ॥ सन दिशा विषे
युध अरु शस्त्र पूर्ण हूए ॥ रुधिर की नदीयां चलें
देवते दैत्य मूए हूए वहते जावें ॥ महाप्रलय की
न्याई भयउदै हूया ॥ एक एक अस्त्र ऐसा चलै ॥
जिस कर शस्त्रों की यों नदीयां चलें ॥ कोऊ अग्नि
का अस्त्र चलावे ॥ दूसरा मेघ का अस्त्र चलावे ॥ को
ऊ सर्पों का अस्त्र चलावे ॥ दूसरा गरुडों का अस्त्र
चलावे ॥ इसी प्रकार युध करें ॥ कोऊ ब्रह्म अस्त्र
चलावे ॥ सिला पथर की वर्षा होवे ॥ पृथिवी रक्त मा
स कर पूर्ण हो गई ॥ अनेक जीवों के सीस अरु ध
ड गिड पडे ॥ जैसे वृक्षों तें फल गिडते हैं ॥ तैसे देव
ते दैत्य गिडें ॥ वडा युध हूया ॥ गंधर्व किंनर देवते
दैत्य बहुत नष्ट भए ॥ पर केइक दैत्यों की जीत
भई ॥ इस प्रकार मायावी सांबर की सैना अरु देव
त्यों का युध हूया ॥ जैसे वर्षा काल मों आकाश विषे

मेघघटापूर्ण होजाती है॥ तैसे देवते अरु दैत्यों की
सेना पूर्ण होगई॥ दिशा अरु विदिशा पूर्ण होग
ई॥ ॥इति स्थितिप्रकरणे दामव्यालकट
संग्रामवर्ननंनाम सर्गः॥२६॥ श्रीवसिष्ठो
वाच॥ हे रामजी इस प्रकार घोर संग्राम हूया॥
देवते अरु दैत्यों के अनेक मूए॥ जैसे पंख टूटें
तें पर्वत गिरे॥ तैसे देवते अरु दैत्य गिरे॥ रुधि
र के प्रवाह चले॥ वह शब्द करें॥ आकाश पृथि
वी शब्द कर भरी गई॥ दामनें देवतों के समूह वे
ष्टित कीये॥ व्यालनें पकिड पकिड देवतों कों प
हाड विषे पीसन कीया॥ कटनें देवतों के समूह
चूर्ण कीये॥ उनके स्थान तोड डारे॥ वडा घोर सं
ग्राम हूया॥ तब देवतों के हस्ती को जो मद थ्या
सो दूर होते भागा॥ अरु देवते भी भयभीत होकर
भागे॥ अरु दैत्यों की सेना वृध होत भई॥ जैसे म
ध्यान के सूर्य का बडा प्रकाश होता है॥ तैसे दैत्य
प्रकाशवान भए॥ देवते बहुत मारे॥ अरु भागे
जैसे पुल के टूटे तें जल का प्रवाह तीक्षण वेग क
र चलता है॥ तैसे देवते तीक्षण वेग कर भागे॥ दा
मव्याल जीत पावते भए॥ देवतों के पाछे लागे
मारते जावें॥ जैसे जाल तें निकस्या हूया पंखी
हाथ नहीं आवता॥ तैसे देवते इनके हाथ न आ
वे॥ भाग गए॥ दामव्यालकट तीनों सेना सहित
पाताल विषे आन स्थित भए॥ अपणें स्वामी जो
संबर थ्या॥ तिस पास प्रसन्नता को लीएं आए॥ अ
रु उहां देवतों ने श्रवण कीया॥ जो दैत्य पाताल
कौं जो प्राप्त भए हैं॥ तब विचार करके चितवत भ
ए॥ जो किसी प्रकार ईश्वर हमारी रक्षा करे॥ ऐसी
चिंता कर आतुर भए॥ तब देवते ब्रह्मा जी के नि
कट गए॥ अरु ब्रह्मा जी कों निकट देख्या॥ जिस
का तेज अमित है॥ अरु रक्त वर्ण हैं जिसके जैं

जिसकर मद थ्या
को तडि लोकर
क्षीण होगया

से संध्याकालमों रक्त बदल होते हैं ॥ तिन विषे चं
द्रमा शोभता है ॥ ऐसे शोभित रूप प्रकाशवान ब्र
ह्माजी कों देखकर इंद्रादि देवता नमस्कार करते भ
ए ॥ सांबर दैत्य की आतुरता सें न कही ॥ हे त्रिलोकी के
ईश्वर हम तेरी सरणि आए हैं ॥ हमारी रक्षा करो ॥ सां
बर दैत्य हम कों दुःख दीया है ॥ तिसके सेनापती
दाम व्याल कट हैं ॥ सो बडे दैत्य हैं ॥ सो किसी प्रकार
हम सें मारते नहीं जाते ॥ अरु उनों ने हमारी सेना ब
हुत चूर्ण करी है ॥ हे रामजी इस प्रकार संपूर्ण वृत्तां
त ब्रह्माजी प्रति कहते भए ॥ अरु कहा जो इनके
मारणे का उपाव हम कों कहो ॥ जिस कर इह नष्ट
होवें ॥ तब संपूर्ण जगत पर दया करणे हारे ब्रह्मा
जी ऐसे वचन कहते भए ॥ कैसे वचन कहे जो शां
ति का कारण हैं ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे अमरेस इह दै
त्य अब तो नष्ट न होवेंगे ॥ जब एक सहस्र वर्ष व्य
तीत होवेगा ॥ तब इह मरेंगे ॥ विष्णुजी इस कों मा
रेगा ॥ मय इनकी न विष्पत देखी है ॥ अरु दाम व्या
ल कट युध विषे नाश जानते ही नहीं ॥ अरु मर
णे मारणे का ज्ञान नहीं नहीं ॥ इह सांबर दैत्य की मा
या कर रचे हैं ॥ इनका नाश कैसे होवे ॥ जिस कों अ
हं मम का अभिमान होता है ॥ तिसका नाश होता है
सो अहं मम आदिक सब्दों कों इह जानते ही नहीं ॥
इह कैसे नाश होवें ॥ इस प्रकार इनका नाश कदा
चित नही होवेगा ॥ जब इनकों अहंकार उपजे
गा ॥ तब इनका नाश होवेगा ॥ सो अहंकार उपजणे
का उपाव मय तुज कों कहता हों ॥ तुम इनके साथ
युध करते रहो ॥ इस प्रकार कबहूं इनके आगे
होवो ॥ कबहूं दहनें । कबहूं बांधे होवो । कबहूं भा
ग जावो ॥ इस प्रकार जब तुम वारोवार करोगे । त
ब इनकों युध अभ्यास ते अहंकार का अंकुर

ग्यान उपजेगा ॥ जब हिरदे विषे अहंकार का चम
तकार उपजा ॥ तब तिस का प्रतिबिंब इ देरूप दे
खेगा ॥ बड़ उ वासना नीकुर आवेगी ॥ आप कौं
दाम व्याल कट जानेंगे ॥ तब तुम उन कौं वस क
र लेवोगे ॥ तुमारा जय होवेगी ॥ जैसे जाल विषे
फसया पंखी वस हो जाता है ॥ तैसे उह अहंकार
कर वस होवेंगे ॥ अब उह वस होणे के नही ॥ सुख
दुःख ते रहित वडे धैर्यवान हैं ॥ देवतों कर जी
तणे उन का कठिन है ॥ हे साधो जो पुरुष वास
नारूप तंतु साथ बांधे हूए हैं ॥ कीट की न्यांई
कामनों के वस हैं ॥ सो इस लोक विषे वशी होते हैं ॥
जो निर्वासी बुधिवान अरु सर्व आसक्ति बुध हैं
किसी विषे बंधायमान नहीं होते ॥ इष्ट की प्राप्ति
विषे हर्ष नहीं करते ॥ अरु अनिष्ट की प्राप्ति विषे
शोक नहीं करते ॥ सो किसी कर वस नहीं होते ॥ उ
ह अजीत पुरुष हैं ॥ अरु जिस के अंतर वासना
है ॥ वासनारूपी जेवड़े साथ बांधे हैं ॥ अरु देह
विषे अहं अभिमान है ॥ जो सर्व का वडा अरु वेत्ता
है ॥ तो बालिक भी उस कौं जीत लेते हैं ॥ अहं मम
कर आदिकौं जो कलंकित पुरुष हैं ॥ सो सन अपदा
का पात्र हैं ॥ सन अपदा तिस विषे ग्यान गवेषणा क
रती हैं ॥ हे साधो इह देहमात्र परिछिन्नरूप जो
पुरुष आप कौं जानता है ॥ जो सर्वज्ञ है ॥ तो भी कृ
पण है ॥ उस विषे उदारता अरु समर्थाई क हां ॥ हे
साधो जब लग दाम व्याल कट कौं जगत के पदा
र्थों विषे अर्थ भावना नहीं ॥ तब लग तुम इन के
जीतणे कौं समर्थ न होवोगे ॥ जैसे मछी वाइ के जी
तणे कौं समर्थ नहीं होती ॥ तैसे तुम उन के जीतणे
कौं समर्थ न होवोगे ॥ जिस कौं सरीर विषे अहं बु
धि है ॥ अरु जगत विषे सत बुधि है ॥ सो दीनता

को पावता है॥ भावें कैसा बली होवे॥ उसको जीतणा
सुगम है॥ हे देवतो जो वासनां संयुक्त है॥ सो पर
म रूपणता को पावता है॥ सो गुण अवगुणों कर
बांध्या हूया है॥ तांते जिसकर अहंमम दाम व्या
लकट के अंतर उपजे सोई उपाव करो॥ तब तुमा
री जय होवेगी॥ अरु जो वासना रूपी तंतु साथ बां
धे हूए हैं॥ सो अनेक जन्म दुःखों को प्राप्त होते हैं॥
जो धैर्यवान सर्वज्ञ है॥ कुल का अधिष्टाता वक्ता
ती है॥ परंतु क्षमा कर संयुक्त है॥ तब उह बांध्या हू
या है॥ जैसे सिंह पिंजरे अथवा संगलों साथ बां
धा हूया होवे॥ तब उसका बल अरु वडाई किसी
काम नहीं आवती॥ तैसे जो तु क्षमा कर बांधा हूया
है॥ सो तुछ है॥ जिसको देह विषे अहंभाव है॥ अरु
तिदे विषे तृष्णा पडी जलावती है॥ सो पुरुष ऐसा
है॥ जैसे तागे साथ पंखी बांध्या होता है॥ तिसको
बालिक भी खैंच लेता है॥ अरु जो निर्वासी पुरुष
है॥ तिसको बांध कोऊ नहीं सकता॥ जैसे आका
श विषे उडते पंखी को पकड कोऊ नहीं सकता॥
तैसे शास्त्र युध को त्याग कर वासनां उपजावणे को उनको
उपाव करो॥ हे इंद्र जिसको अहंमम आदिक वा
सनां नहीं॥ तिसको युधकर जीत नहीं सकीता॥ तां
ते दाम व्यालकट के जीतणे को अवर उपाव कर
समर्थ न होवोगे॥ युध के अभ्यास कर इनको अहं
कार उपजावो॥ तब इह तुमारे वस होवेंगे॥ इनके
जीतणे को समर्थ होवोगे॥ हे साधो इह सांबर दै
त्य कर रचे हूये हैं॥ इनके अंतर वासनां कोऊ नहीं
जैसे ही उस निर्वासी रचे हैं॥ तैसे ही निर्वासी हैं॥ ज
ब तुम इनों को जीतणे का अभ्यास करावोगे॥ तब

इनकों अहंकारवासनां उपज आवेगी। एतुमकों व
सकरणेकी परमयुक्त कही है। जबलग उसकें अं
तरवासनां नही उपजती॥ तबलग उहतुम कर अ
जीत हैं॥ ॥इति स्थितप्रकरणे रामभ्यालकट
उपाख्याने ब्रह्मावाक्यवर्ननं नाम सर्गः॥२८॥ श्री
वसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इसप्रकार ब्रह्माजीका
हिकर अंतर्ध्यान होत भया। जैसे समुद्रविषेतरंग
उपजकर लीन होजाता है। तैसे ब्रह्माजी अंतर्ध्या
न हूया॥ तब देवते अपणीवांछित दिशाको गमन
कर्त्ते भए॥ जैसे कमलकी सुगंधकों पवन लेजाता
है॥ तैसे ब्रह्माजीके वचनों कों लेगए॥ अपणे स्थानों
विषे जारहे॥ बहुड अपणे स्थानों तें युधके निमित
चले। प्रथम देवत्यों नें संख बजाए॥ जैसे प्रलयका
लकै मेघ गर्जते हैं॥ तैसे शब्द कर आकाश नरीज
गया॥ तब पाताल छिद्र विषे दैत्य शब्द सुणकर नि
कसे॥ आकाशमार्ग तें देवते आए॥ तब युध होणे
लागा॥ तब बरछी बाण मुगधर मू(सल)सल गदा चक्र
वज्र पहाड अग्नि वृक्ष सर्प गरुड तें आदिलेकर
शस्त्र अस्त्र चलाए॥ एक ओर तें देवते चलावें॥ ए
क ओर तें दैत्य चलावें। शस्त्रों के प्रवाह चले। देश
पर देश विषे पहाड पाथर चक्र मुगधर त्रिशूला
दिककी नदीयां चली॥ देवतों अरु दैत्योंके समूह
नष्ट होगए॥ सीस भुजा अंग काटे होगए॥ संपूर्ण पृथि
वी रक्त कर पूर्ण होगई॥ जैसे समुद्र के उछलणेक
र पृथिवी जलकर पूर्ण होजाती है॥ तैसे पृथिवी रु
धिरकर पूर्ण होगई॥ आकाश दिशा विषे अग्निका
तेज बधगया॥ जैसे प्रलयकाल विषे द्वादशसूर्य
का तेज होता है॥ अरु वज्रि पहाडों की वर्षा होवे॥ अ

रुरुधिर विषे देवते दैत्य भ्रमते फिरें॥ जैसे समुद्र
विषे तरंग होते हैं॥ हे रामजी ऐसा युध हूया॥ जो
क्षण विषे पहाडों के प्रवाह द्रिष्ट आवें॥ क्षण विषे
शस्त्रों के प्रवाह क्षण विषे सर्पों के क्षण विषे ग
रुडों के क्षण विषे अपत्सरा के गण भासें॥ क्षण
विषे जलमयी हो जावे॥ क्षण विषे सर्व स्थान पूर्ण
हो जावें॥ क्षण विषे सूर्य का प्रकाश भासे॥ क्षण
विषे अंधकार भासे॥ महा भयानक युध होणे
लागा॥ दैत्य आकाश विषे उड उड कर युध करें
अरु देवते वज्रादिक शस्त्र चलावें॥ जैसे पंखों
तें रहित पहाड गिडते हैं॥ तैसे दैत्य गिडें॥ अनेक
देवतों अरु दैत्यों के समूह गिडें॥ अनेक संकटों
को देवते अरु दैत्य प्राप्त भए॥ महा दारुण दुःख
होणे लागा॥ ॥इति स्थितिप्रकरणे दाम व्या
लकटोपाख्याने पुनः युधवर्ननं नाम सर्गः॥
॥२८॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इस प्रका
र देवतों अरु दैत्यों का युध हूया॥ तब देवतों का
धैर्य नष्ट हो गया॥ युधतें रूपण हो कर अंतर्धा
न हो गए॥ बहुड पैं त्रीवर्षों तें उपरंत आइके युध
करणे लागे॥ कबहूं दिन पांच सात अष्ट कबहूं
मास उपरंत युध करें॥ बहुड छप न हो जावें॥ जै
से विचार करके उनके साथ युध करें॥ कबहूं दा
म व्याल कट के दाहने॥ कबहूं बावे॥ कबहूं आ
गें॥ कबहूं पाछे॥ कबहूं भाग जावें॥ इस प्रकार
जब बहुत उपाव कीया॥ तब युध के अभ्यास
तें देवतों के पाछें दउडने लागे॥ ईधर ऊधर दे
खकर मारणे लागे॥ तब देहादिकों विषे तिन

कोंअहंकारफुरया॥ जैसेनिकटताँविषेगतिप्र
बिंबपड़ताहै॥ तैसेयुधकेअभ्यासकरअहंका
रफुरया॥ तबेपदार्थोंकीवासनांफुरआई॥ जो
हमकिसीप्रकारजीवतेरहें॥ जीवणेकीभावनां
करकेदीनताकोंप्राप्तभए॥ तबविचारकरणे
लागे॥ जोइसप्रकारहमारानासहोताहे॥ अरु
इसप्रकारहमारीरक्षाहोतीहे॥ सोईउपावकरें
जिसकरहमजीवतेरहें॥ इसप्रकारआसाकी
फांसीसाथबांधेहूए दीनताकोंप्राप्तभए॥ आ
पकोंदेहमात्रजानकेआस्थाकरतेभए॥ अरुजा
नणेलागे जोइहहमारेशत्रुहैं॥ हमकोंनाशक
रणेहारेहैं॥ इनतेंहमारीरक्षाहोवे॥ इसप्रकार
कीकाइरताकोंप्राप्तहोवें॥ धीर्यनष्टहोगया॥
जैसेजलविनांकमलकीशोभाजातीरहतीहे
तैसेइनकाधीर्यजातारहा॥ खानपानकीवास
नांभीफुरआई॥ युधकरें तबआसरालेकरक
रें॥ ढालादिककोंआश्रेलेकरकरें॥ अहंका
करकेभयभीतहूये॥ अरुभाग्य॥ महादीनजैसे
होगए॥ मुखकाशोभाजातीरही॥ ऐसेहोगए॥
जोकोईदेवताआगेंआनपड़े॥ तोभीतिसकोंमा
रनसकैं॥ जैसेकाष्टतेंरहितअग्निहीरकोंभीभो
जननहीकरसकती॥ तैसेउहनिबलभए॥ हेरा
मजीमरणेंतेंडरणेलागे॥ युधनकरसकें॥ देवते
वज्रादिककरतिनकाप्रहारकरणेलागे॥ तिन
करघाइलहोकरभागे॥ अपणेअपणेदेशोंकों
गए॥ देवत्तोंकीजीतभई॥ ॥इतिस्थितप्रकर
णेदामव्यालकटोपाख्यानेअसुरभयभीत
नोमणनामसर्गः॥२७॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥

हे रामजी जब देवतों कौं इस प्रकार जीत भई । अ
र दाम व्याल कट भयभीत होकर भागे । पाताल
कौं गए । देवतों सें भागे । अरु सांबर का भी भय पा
या । जैसे प्रलय काल की अग्नि प्रज्वालित होती है ।
तैसे सांबर अग्नि प्रज्वालित का रूप है । तिसके भ
य सें दाम व्याल कट सप्त मैं पाताल विषे जा स्थित
भए । तहां दैत्यों के मंडलों कौं छाड कर जहां यम कि
कर रहते हैं । तिन विषे जा रहे । कुकटा नाम होक
र तहां रहत भए । नरक रूप समुद्र की पैल कौं जम
किंकर हैं । तिनों ने दया करके इन कौं बैठाया । जैं
से पापी कौं चिंता प्राप्त होती है । तैसे इन कौं स्त्रीयां प्रा
प्त भई । तिस स्त्रीयां सहित पाताल विषे रहते भये ।
आगे इनों की वडी संतान भई । पुत्र पौत्रादिक तहां
सहस्त्र वर्ष व्यतीत भया । वासना दृढ हो गई । इहम
पहौं । इह स्त्री हैं । पुत्र पौत्रादिक विषे स्नेह बहुत भ
या । एक काल मों धर्मराजा अपणी इच्छा करके आ
या । तहां कछु कार्य करणा था । राजा कौं देखकर स
भ किंकर उठ खडे हूए । अरु प्रणाम कीये । अरु
दाम व्याल कट तिन की वडाई कौं न जानते भये । तां
ते प्रणाम न कीया । तब वैवस्वत यमराजा नैं क्रोध की
या । जो इह दुष्ट मानी हैं । इन कौं सासना दई चाहीये ।
तब धर्मराजा नैं भ्रकुटी चढाय कर कहा । अग्नि की
जो षाई है । तहां इस कौं डार देवो । परवार बांधवों सं
युक्त । तब वहु हा पुकार ते रुदन करते रहे । उनों ने प
रवार संयुक्त डार दीये । जैसे दावा अग्नि विषे सर्व प
दार्थ जल जाते हैं । तैसे पडे जलैं । तब भी च वासनां क
रके किरात देश के राजा के किंकर जीवर जा हूये । उ
हां जीवों की हिंसा करते रहे । जब झीवरों का सरीर छू
टा । तब वंग जा हूए । बहुड इलां हूए । बहुड बगले जा
हूए । बहुड तिर्यग देश विषे झीवर हूए । बहुड विब

र देश विषे कछूं होये । मागध देश विषे कीडे हूए
हे रामजी इस प्रकार दाम व्याल कट तीनों वासनां
करके अनेक जन्मों कों पावते भए । अब कश्मीर
देश विषे एक ताल है । तिन विषे तीनों मछ हूए हैं ।
अरु तहां बन विषे अग्नि लागी थी । तिस कर जल
भी सूक गया है । अल्प जैसा जल उष्म रूप रहा । तिस
विषे रहते हैं । अरु उही जल पान करते हैं । न मरते
हैं । न जीवते हैं । जीवने की जो कौउ संपदा है । तिस
कौं भी नहीं पावते । चिंता करके पडे जलते हैं । हे राम
जी अज्ञान करके उपजते भी रहे । अरु मरते भी रहे
जैसे समुद्र विषे तरंग उपजते हैं । अरु मिट भी जाते
हैं । जैसे जल विषे तृण आया हूया भ्रमता है । तैसे उ
ह वासनां कर भ्रमते हैं । अब लग उनकौं शांति नहीं
प्राप्त होती । अहंकार वासना महा दुखों का कारण है
इस जीव कों इसके त्याग तें सुख है । अन्यथा सुख न
हीं ॥ ॥ इति स्थित प्रकरणे दाम व्याल कटोपा
ख्याने जन्मांतर वर्ननं नाम सर्गः ॥ ३० ॥ श्रीव
सिष्ठोवाच ॥ हे रामजी तेरे प्रबोध के निमित्त तुजकों
मय दाम व्याल कट का प्रसंग कहा है । जो तिनकी न्यां
ई बुधि किसी की न होवे । इस निमित्त इतहास कहा है
जो अविवेकीयां का निष्फल ऐसा है । अनेक अपदा
कों प्राप्त करता है । कहां सांबर दैत्य की सेना के नाथ
अरु कहां देवतों का नाश कर्त्ता । अरु कहां तप्त जल
के मछ जर्जरी भाव कों प्राप्त हूए दुःख पावते हैं । अ
रु कहां उह धीर्य अरु बल जिस कर देवतों कों नाश
करते थे । अरु कहां अनेक जन्मों का भोगणा । अरु
कहां उह निरहंकारता अरु उदारता । अरु शांति धै
र्य उह कहां । अरु कहां मिथ्या अहंकार सोए ते दुःख अ
वस्था कों पावणा । सो सभ अहंकार करके प्राप्त हूए हैं
सो संसार रूपी वृक्ष का अंकुर अहंकार है । जब लग

अहंकार है॥ तब लग अनेक दुःख प्राप्त होते हैं॥
तो ते तुम यत्न कर अहंकार को मार्जन करो॥
जो न में हो॥ न जगत है॥ सर्व आत्म रूप परमानं
द स्वरूप है॥ हे रामजी आत्मारूपी अमृत का
चंद्रमा है॥ शीतल शांति रूप तिसके अंग है॥
अहंकार रूपी मेघ आके आत्मारूपी चंद्रमा कों
आछादनी या है॥ जब विवेक रूपी पवन चले
तब अहंकार रूपी बदल नष्ट होवे॥ अरु आ
त्मा रूपी चंद्रमा प्रगट ता से॥ अहंकार रूपी पि
शाच उपजा॥ तब दाम व्याल कट तीनों वही
आपदा को प्राप्त भए॥ अब कस्मीर देशा के
ताल विषे मछ पडे हैं॥ केवल सिवाल को तोल
न करते हैं॥ जो अहंकार न होता॥ तो एती आप
दा कों किउ प्राप्त होते॥ श्रीरामोवाच॥ हे भ
गवन सत का अभाव नहीं होता॥ अरु असत का
भाव नहीं होता॥ असत दाम व्याल कट सत्त कैं
से भए॥ ए तो माया मात्र थे॥ श्रीवसिष्टोवाच॥
हे रामजी इसी प्रकार है॥ जो सत है॥ सो असत न
ही होता॥ अरु जो असत है॥ सो सत नहीं होता॥
परंतु असत किसको कहते हैं॥ अरु सत कि
सकों देखते हैं॥ सो कहो॥ श्रीरामोवाच॥ हे
भगवन इह तुम हम जो सन जगत है॥ सो सत्त
रूप हैं॥ अरु दाम व्याल कट आदिक जो थे॥ सो
असत रूप माया मात्र थे॥ सत्त कैसे भए॥ सो क
हो॥ श्रीवसिष्टोवाच॥ हे रामजी जैसे दाम व्या
ल कट आदिक माया मात्र असत ही सत्त होकै
र स्थित न थे॥ तैसे ही तुम हम आदिक देवदान
व संपूर्ण संसार असत माया मात्र सत हो भास
ता है॥ वास्तव तें कछु भया नहीं॥ जैसे स्वप्न विषे

अपणा मरणा देषता है ॥ सो सब असत है ॥ तैसे
तुम हम आदिक सर्व जगत असत रूप है ॥ जैसे
स्वप्ने विषे अपणे बांधव मूए हूए आन मिल
ते हैं ॥ तैसे इह जगत असत रूप है ॥ हे रामजी इ
ह जो मेरे वचन हैं ॥ सो मूढों का विषय नत नहीं
उनकों सुणने ते भी नहीं ॥ काहे ते जो अज्ञानी के
रिदे विषे संसार का दृष्ट अर्थ दृढ है ॥ सो अभ्या
स विना इस निश्चे का अभाव नहीं होता ॥ जैसा
निश्चा किसी के रिदे विषे होता है ॥ सो दृढ अभ्या
स के यतन विना निवर्त नहीं होता ॥ जिस को इ
ह निश्चा है ॥ जो जगत सत है ॥ सो मूर्ख उन्मत्त है ॥
अरु जो ज्ञानवान हैं ॥ तिस के रिदे विषे जगत
का सद्भाव नहीं ॥ उनकों केवल ब्रह्म सत्ता का
भानु होता है ॥ अरु अज्ञानी कों जगत भासता
है ॥ सो ज्ञानवान के निश्चे कों अज्ञानी क्या जाणे
जैसे अंधकार अरु प्रकाश एकठे नहीं होते ॥
जैसे धूप अरु छाया एकठी नहीं होती ॥ तैसे ज्ञा
नी अज्ञानी का निश्चा एकठा नहीं होता ॥ सो ज्ञान
वान कों सर्व ब्रह्म स्वरूप भासता है ॥ और कछु
दिखाई नहीं देता ॥ अरु अज्ञानी कों सर्व जगत
नाना प्रकार कर्तृत्व भोक्तृत्व भासता है ॥ आ
त्म अनुभव सदा सर्वदा सत स्वरूप है ॥ सो इह
वचन प्रबुध का विषय हैं ॥ तिस कों सुणने ते हैं ॥
अरु सम्यक दर्सी कों सत्त अनुभव सत्ता नाम
रूप ते परे जागती जोति भासती है ॥ सर्व जगत
जोति रूप उदे अस्ति ते रहित भासता है ॥ जैसे
फुरणे कर दाम व्याल कट आदिक भासे थे ॥
तैसे तुम हम आदिक भी संवेद के फुरणे विषे
स्थित हैं ॥ जैसे स्वप्ने का नगर भासता है ॥ जैसे म

गतृष्णाकी नदी भासती है॥ तैसे तुम हम आदिक
जगत भासता है॥ प्रबुधकों सत आत्मसत्ता चि
दाकाशही भासता है॥ जो आत्माकी ओर जाग्र
हैं॥ अरु जगतकी ओर सोए हैं॥ सो मोक्षरूप हैं॥ अ
रु जो आत्माकी ओरतें सोए हैं॥ अरु जगतकी ओ
र जाग्रे हैं॥ सो अज्ञानी बंधरूप हैं॥ वास्तवतें नको
ऊ सोया है॥ न जागता है॥ केवल चिदाकाशरूप
आपणे आपविषेइ स्थित है॥ सोई फुरणेकरि ज
गतरूप हो भासता है॥ निर्वाणसत्ताही जगतकी
लक्ष्मी होकर भासती है॥ अरु जगत निर्वाणरूप
है॥ हेयकछु नहीं सत आत्मसत्ताही है॥ सो दोनों
एकही वस्तुके नाम हैं॥ तैसे ब्रह्म अरु जगत दोनों
पर्याय है॥ दोनों एकही वस्तुके नाम हैं॥ जैसे वृक्ष
अरु द्रुपत्र दोनों एकही वस्तुके नाम हैं॥ जैसे आ
काशविषे तिरवरे भासते हैं॥ अरु हैं नहीं॥ आका
शही है॥ तैसे अज्ञानीको ब्रह्मविषे जगत भासता
है॥ अरु है नहीं॥ अरु ज्ञानवानको सर्व ओरतें चि
दाकाश एक विस्तृतरूही भासता है॥ महासिलि
घनवत स्वच्छ तुम भी आपणे आपविषे स्थित हो
वो॥ ॥इति स्थितप्रकरणे निर्वाणउपदेशो ना
म सर्गः॥ ३१ ॥श्रीरामोवाच॥ हे भगवन अ
सत ही सतकी न्यांई स्थित हूया है॥ जैसे बालिक
को पिछावें विषे वेताल हो भासता है॥ तैसे अज्ञा
नीको जगत भासता है॥ अरु दाम व्याल कट केदुः
खका अंत कब होवेगा॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रा
म जी जब तिनको यमराज अग्निकी खाई विषे
पाया॥ तब यमराजसों किंकर पूछते भए॥ हे प्र
भु इनका उधार कब होवेगा॥ तब यमराज कहा
है किंकरो जब एतीनों बिछुड जावेंगे॥ आपणी स
र्वलक थापक व्रणकरेंगे॥ तब निरसंदेह होकर

जैसे वट पत्र अरु दस्म
एकही वस्तुके दोनों हि
है

३९

38

मुक्ति होवेंगे ॥ इह इन कीनेत है ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे
भगवो इह अपणा वृंतांत कब सुणेंगे ॥ अरु कहां
सुणेंगे ॥ अरु कौन निरूपण करेगा ॥ श्रीवसिष्टो
वाच ॥ हे रामजी कश्मीर देश विषे एक बडा ताल
है ॥ अरु कमलों कर पूर्ण है ॥ तिसके निकट एक छो
त टा लीव है ॥ तिस विषे चिरकाल पर्यंत वारों वार
मछ होवेंगे ॥ अनेक जन्म परंपरा मछों की व्यती
त करेंगे ॥ तब मछों का सरीर त्याग कर सारस पं
खी होवेंगे ॥ कमलों के ताळों पर रहेंगे ॥ बहुड तीनें
आपस में विछड जावेंगे ॥ कश्मीर देश विषे एक
पहाड है ॥ तिसके शिखर पर एक नगर वसेगा
तिस सिखर का नाम प्रद्युम्न होवेगा ॥ तिस शिख
र पर एक कमलों कर पूर्ण ताल होवेगा ॥ तहां ए
क राजा का स्थान होवेगा ॥ ईशान्य कोण की ओर
राजा का मंदर होवेगा ॥ तिस मंदर में व्याल नामा
दैत्य आजण बणा कर चिडा होकर रहेगा ॥ ति
स काल विषे श्रीशंकर देव नामा राजा होवेगा ॥
गुण विभूति कर संपन्न मानों दूसरा इंद्र है ॥ राम
नाम दैत्य तहां कडी के छिद्र विषे मछर होकर रहे
गा ॥ नैतंत्राष्ट्रक तीर हेगा ॥ अरु कट नामा दैत्य त
हां कीडी का पंखी होवेगा ॥ रतनों के जडे हूए पंज
र विषे रहेगा ॥ तिस राजा का मंत्री बडा बुधिवान
होवेगा ॥ सो राजा नीं बडा बुधिवान होवेगा ॥ बंधमु
क्ति का ज्ञान नी तिस मंत्री को होवेगा ॥ अरु नरसिं
ह मंत्री का नाम होवेगा ॥ सो मंत्री राजा के आगे दा
कट म व्याल कीं कथा सलोक बंध कर सुनावेगा ॥ ति
स कथा के श्रवण करणे सों इनकों अपणा व
तांत स्मरण में आवेगा ॥ तिसकों विचारेंगा
तब मिथ्या अहंकार शांति हो जावेगा ॥ अरु परम
निर्वाण पद को प्राप्त होवेंगा ॥ इसी प्रकार राजा के

तब कर कर
नाम पंकी है
आजो कट दैत
है सो विजेरे वि
षमा वीण करेगा

मेदरविषेव्यालनामादैत्यचिडाहूयाअवलोक
रेगा॥उहभीपरमनिर्वाणसत्ताकोंप्राप्तहोवेगा
इसीप्रकारलंकडीकेछिद्रविषेरहणेवालादा
मनामादैत्यमछरहोकरअवलोकरेगा॥सोभी
मुक्तिहोवेगा॥अरुकर्करपंखीचिडामछरती
नोंपहाडकेशिखरपरमुक्तिरूपहोकरविचरेंगे
हेरामजीसंपूर्णसंसारमायामात्रहे॥अरुअसं
तअसतरूपअविचारितसिधहै॥विचारकीये
तेंशांतिहोजाताहे॥अहंकारकरकेजीवमोह
अंधघोरमेंचलेजातेहैं॥जैसेदामव्यालक
टमहाजालविषेपडेंअहंकारकरकेअनेकदुः
खोंकोंपावतेभए॥अहंकारकरकेरंजितहूए जैसे
मिथ्याभ्रमकोंदेखतेहैं॥जबअपणाआपंवि
दाकाशप्रकाशरूपअहंकारअंधकारतेंरहि
जीवकं
तनासया॥तबचिदाकाशप्रकाशरूपसत्ताकें
त्यागेंबिनांत्यागेकीन्याईंउनकोंनासया॥अप
णीवासनाकरजगतदृश्यरूपनासयाथा॥जैं
सेमृगतृष्णांकाजलमिथ्याभ्रमकरकेभासता
हे॥इससंसारसमुद्रकेंतरणेकोंउहीसमर्थहोता
हे॥जोसतशास्त्रहेंअरुसंतोकेवीचारद्वारापुरु
षार्थकीसिद्धयाहे॥हेरामजीअपणाअनुभवरू
पजोप्रसिधमार्गहे॥तिसविषेजोप्राप्तभएहै॥ति
सकोंप्रमादनहीआवता॥सुखपूर्वकचलेजा
तेहैं॥ब्रह्मनिरूपणजोशास्त्रहे॥सोनिर्दोषमार्ग
हे॥तिसकोंश्रवणकरकेविचारीये॥तबसंसा
रभ्रमभिटजाताहे॥इहजगतअसतरूपभ्रम
मात्रहे॥विचारकीयेतेंरहितानही॥जैसेदीप
ककेजागेतेंअंधकारनष्टहोजाताहे॥तैसेज्ञा
नप्राप्तहूएजगतभ्रमनष्टहोजाताहे॥अरुति
सपुरुषकोंपरमात्मसत्ताकाचमतकारभया

है॥सोब्रह्मलोकअरुपातालतेंलेकरजोविषयप
दार्थहैं॥सोतिनकोंतृणकीन्याईजानताहै॥जैसे
जीवआपदाकोंत्यागितेंसुखीमानताहै॥तैसेज्ञा
नवानऐश्वर्यआपदारूपजानकेत्यागताहै॥ता
तेंअंतरनिश्चआत्मतत्वविषेराखो॥अरुबा
ह्यजैसाआचारहोवैतैसेकरो॥शास्त्रअनुसा
रचेष्टाकरो॥सोकल्याणकाकारणहै॥सतशा
स्त्रअरुसंतजनोंकीसंगतवडाप्रकाशकरती
है॥जोपुरुषइनकासेवनकर्त्ताहै॥सोअंधकूप
कोंनहींप्राप्तहोता॥हेरामजीवैराग्यसंतोषधीर्य
उदारताआदिकजोगुणहैं॥सोजिसकेहिरदेविषे
प्रवेशकर्त्तेहैं॥सोपरमसंपदाकोंप्राप्तहोताहै॥
अरुआपदातिसकीनष्टहोजातीहै॥जोपुरुषशु
भगुणोंकरसंपन्नहूयाहै॥अरुसतशास्त्रोंके
श्रवणविषेरुचहै॥अरुतिसकेहिरदेरूपीआ
काशविषेविवेकरूपीचंद्रमाप्रकाशताहै॥ति
नकेहिरदेविषेविष्णुविराजताहै॥तिनकोंकिसी
दृश्यपदार्थकीइछानहीरही॥हेरामजीजिसपु
रुषोंकेगुणचंद्रमाकीन्याईशीतलहैं॥तिनके
गुणसिधदेवतागायनकर्त्तेहैं॥तातेंतुमभीपर
मार्थसत्ताकोंआश्रयकरो॥तबपरमसिधताकों
प्राप्तहोवैं॥अरुयथाशास्त्रक्रियाकरेचिरका
लअतीतहोवै॥अरुसिधतानहोवै॥तोभीउद्वेग
वाननहोवै॥उहफलपरपक्कहोकरप्राप्तहोवै
गा॥जैसेवृक्षसोंफलपरपक्कहोकरउतरताहै
तबअधिकमिष्टहोताहै॥अरुसुखदायकहो
ताहै॥तैसायथाशास्त्रव्यवहारकर्णा॥तिसप
दकोंप्राप्तहोताहै॥जहांसंतशोकभयनष्टहो
तेहैं॥अरुपरमशांतिकोंप्राप्तहोताहै॥हेरामजी

तुम संसार विषे नहीं गिडनां तुम उदारात्मा हो ॥ अ
पणे पुरुषार्थ को आश्रय करो ॥ अरु इस शास्त्र
को विचारो ॥ जो अमर पद की प्राप्त होवे ॥ एही विचा
रो जो कर्तव्य है ॥ और जेते कष्ट अनर्थ हैं ॥ सो सन
अनर्थों का कारण है ॥ सत मार्ग कों अंगीकार कर
के अपणे अनुभव रूप विषे स्थित होवो ॥ अरु इह
संसार दुःखों का कारण है ॥ इस विषे चित्त कों नहीं
लगावणा ॥ जो पुरुष विवेकी हैं ॥ तिसका संसार नष्ट
हो जाता है ॥ अरु आर्बलायरा गुण लक्ष्मी बध हो
जाती है ॥ जैसे बसंत रुत की मंजरी प्रफुल्लित हो
ती है ॥ तैसे उह शुभ गुणों कर प्रफुल्लित होता है ॥

॥ इति स्थित प्रकरणे दाम व्याल कटो पाख्याने
शास्त्र निरूपणं नाम सर्गः ॥ ३२ ॥ श्री वसि
ष्ठोवाच ॥ हे रामजी सर्व सुख के देणे हारा स
र्व समें अपणे शुभ कर्म का फल होता है ॥ जो विचा
र सहित उद्वेग तें रहित चेष्टा करते हैं ॥ सो सुख कों
पावते हैं ॥ एक पुरुष ने दीगण एक सरोवर पर
जाकर सदा शिवजी का पूजन कर्त्तनया ॥ अरु मि
त्र बांधवों कों सुख देणे हारा तनया ॥ अपणे शुभ य
तन कर के हूया ॥ अरु दैत्य जो देवतों कों मारते हैं
सो भी अपणे पुरुषार्थ कर मारते हैं ॥ कैसे देवते हैं
जो सन्मतें उतकृष्ट वर्त्तते हैं ॥ जैसे हस्ती कमलों कों
तोड डारता है ॥ तैसे दैत्य देवतों कों मारते हैं ॥ सो भी
अपणा ही पुरुषार्थ है ॥ अरु मारुत राजा के यज्ञ
विषे संवर्त नाम ऋषि आया था ॥ तिसने देवता दैत्य
मनुष्यादिक अपणी सृष्टि रची नी ॥ मानो दूसरा
ब्रह्मा है ॥ तो ऐसी सृष्टि अपणे पुरुषार्थ कर रची
किंउ ॥ अरु विश्वामित्र वारो वार तप कीया ॥ अरु
तप की अधिकता तें राजऋषि तें ब्रह्मऋषि हूया
सो भी अपणे शुभ आचार कर हूया है ॥ हे रामजी

वा॰ ४

तिंस करमका
शिवप्रसनन
ए प्रपसंह
यासे नेंदीग
एनामपया

एक दुर्भाग ब्राह्मण था। उपमन्यु तिसका नाम था।
तिसकों अपणे गृह विषे भोजन की समानता
प्राप्त होवे। तब उसने एक के गृह विषे पितासं
युक्त भोजन कीया। दुधचावलखंड सहित
भोजन करके गृह मों आए। बहुड़ पिता कों क
हिणे लागा। जो मुझकों उही भोजन देह। जो उ
हां खाया था। तब पिता सवाक के चावल अरु
आटे की दो धी घोल कर दई। तब उह भोजन की
या। तब तिसकों तैसा स्वादन आया। तब पिताकों
कहा। मुझकों उही भोजन देवो। जो उहां खाया था।
पिता कहा हे पुत्र उह भोजन हमारे पास नहीं। उह
भोजन सदाशिव पास है। जब उह देवे तब हम
खावें। उह ब्राह्मण सदाशिव का तप करणे ला
गा। ऐसा तप कीया जो सरीर अस्थि मात्र हो रहा
अरु रक्त मांस सुक गया। तब शिवजी प्रसन्न हो
कर दर्शन दीया। अरु कहा हे ब्राह्मण जिसकी
तुझकों इछा है सो वर मांग। तब ब्राह्मण कहा दु
धचावलखंड देवो। तब शिवजी कहा दूधचाव
लखंड क्या है परंतु जो कहा है सो एही भोजन की
या करो। अरु जब तूं चिंतन करेंगा। तब मय दर्श
न देवोंगा। तब उसकों उही भोजन प्राप्त होवे। हे
रामजी इह भी तो अपणा पुरुषार्थ हूया। कि उ
अरु त्रिलोकी के प्रतिपालन करणे हारे विष्णु भ
गवान अरु ब्रह्मा अरु शिव है। तिनकों भी का
लेतण की न्याई मर्दन कर्ता है। तिस काल कों श्वे
तने जीत्या है। सो भी अपणा पुरुषार्थ हूया। अरु
सावित्री का भर्ता मृत्यु भया था। उह पतिव्रता थी।
उसने तन मन सकार करके जमराजा कों प्रसन्न क
र्तनइ। तब भर्ता कों परलोक तें ले आई। इह भी
अपणा पुरुषार्थ हूया। श्वेत नाम को एक रुषी

श्वरथा॥ सो अपणे पुरुषार्थ कर काल कों जीत कर
मृत्युंजय नाम कों पावता भया॥ तातें ऐसा पदार्थ
कोऊ नहीं॥ जो यथा शास्त्र उद्यम कीये तें प्राप्त न हो
वे॥ जो अपणे पुरुष प्रयतन का त्याग न करे॥ तब
सर्व सुख फल की प्राप्त होती है॥ जो अविनाशी सुख
की इछा होवे॥ तब आत्मज्ञान का अभ्यास करो॥ अ
वर जेते कछु संसार के सुख हैं॥ सो दुःखों का मूल हैं
अरु आत्मसुख दुःखों का नाश करता है॥ किसी दुः
ख साथ मिल्या हूया नहीं॥ अरु वास्तव तें सम अस
म निर्मल स्वरूप है॥ जद्यपि ऐसे है॥ तो भी सम परम
कल्याण का कर्ता है॥ तांते देहाभिमान को त्याग कर
सम कों आश्रय करो॥ अरु निरंतर बुधि कर विचा
र करो॥ संतों का संग करो॥ तब परम पद कों प्राप्त होवे
गे॥ हे रामजी संसार समुद्र के पार करणे कों ऐसा अ
वर उपाव कोऊ नहीं॥ जैसा शास्त्रों अरु संतजनों के
सेवणे कर भवसागर कों सुखयन तरणा होता है॥ अ
रु जिस पुरुष के कामक्रोधादिक विकार नष्ट हो जा
ते हैं॥ यथा शास्त्र विचरणा होता है॥ सो ऐसे पुरुष
कों संतजन कहीता है॥ तिसकी संगत संसार तें पार
कों करती है॥ और इह जो तिन की संगत कर संसार
का असंताभाव हो जाता है॥ जब दृश्य का असंताभा
व हूया॥ तब शेष आत्मा ही रहता है॥ इस कर के जी
व को जीवत्व निवृत्त हो जाता है॥ शेष शुध आत्म त
त्व रहता है॥ ज्ञानवान कों सर्वदा ऐसे भानु होता है॥
जो जगत न उपजा है॥ न आगें होवेगा॥ न अब है॥ इ
स प्रकार मय तुज कों अनेक युक्तों कर कहा है॥ अच
ल जो चिदाकाश आत्मा है॥ तिस विषे चित्त संवित का
फुरणा हूया है॥ तिस कर जगत होता सता है॥ जैसा जै
सा फुरता गया है॥ तैसा तैसा होता सता है॥ पर वस्त
तें कछु हूया नहीं॥ आत्मा रूपी सूर्य है॥ जगत तिसकी

किरणों है॥ जैसे सूर्य अरु किरणों विषे कछु भेद नही
तैसे जगत अरु आत्मा विषे कछु भेद नही॥ अहं रूप
भी आत्मा है॥ जब आपकों आप नु जानता भया॥ सो
आत्माकाश विषे मेघ मलिनता है॥ जब परमार्थ तें
अहं भाव कों ऐसे जाणे॥ तब आत्मा विषे अहं भाव
लीन हो जावे॥ तब चिदाकाश साथ जीव की अत्यंत
एकता होती है॥ जैसे घट के फूटे तें घटाकाश की
महाकाश साथ एकता होती है॥ तैसे अहं आदिक
जो दृश्य है॥ सो निश्चे कर अभाव हो जाती है॥ वस्तु तें
कछु उपजी नहीं॥ विचार कीये तें रहिती कछु नहीं
जैसे बालिक कों परछावें विषे वेताल भासता है॥ सो
भ्रम मात्र है॥ तैसे इह जगत भ्रम मात्र है॥ अपणी क
ल्पनां ही जगत रूप हो भासती है॥ सो दुःखों का कारण
है॥ अरु विचार कीये तें नष्ट हो जाता है॥ हे रामजी आ
त्मारूपी चंद्रमा की जगत चांदनी है॥ अहंकाररूपी
तिसके आगे मेघ बदल आया है॥ तिसकर परमा
र्थरूपी बुधि कमलनी विकासवान (प्रफुल्लित) नही होती॥ जब
विवेकरूपी वायु चले॥ तब अहंकाररूपी बदल न
ष्ट होवे॥ नर्क स्वर्ग ग्रहण त्याग सन अहंकार कर
पड़े फुरते हैं॥ रिदेरूपी आकाश विषे तब जगगकी
ष्टा उदे नहीं होता॥ जब लग विचाररूपी अफुरता उ
दे नहीं होती॥ जब विचाररूपी अफुरता उदे नहीं है
ती जब विचाररूपी अफुरता प्राप्त होती नहीं॥ जब
विचाररूपी अफुरता प्राप्त होवे॥ तब अहंकार दूर
होवे॥ तातें यतन करके इनकों नाश करो॥ जब लग
अहंकाररूपी अंधकार रहे॥ तब लग चिंतारूपी पि
शाचनी विचरती है॥ अरु अहंकाररूपी पिशाच
जिसकों ग्रहण कीया है॥ तिसकों मंत्र तंत्र भी नहीं
छुडा सकते॥ जब सतगुरों की संगत अरु विचार
वेती बुधि प्राप्त होवे॥ तब अहंकाररूपी पिशाचन

ष्ट होवे ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन निर्मल चिन्मा
त्र जो आत्मसत्ता है ॥ सो आपणे आप विषे स्थित है
तिस विषे अहंकार रूपी मल कहां ते प्रतिबिंबत
हूई है ॥ श्रीगुरुवसिष्टोवाच ॥ हे राघव अहंका
र रूपी कलंकता का जो चिमत्कार भासता है ॥ सो
वास्तव नहीं मिथ्या है ॥ भ्रम कर उदे हूया है ॥ पुरु
षप्रयतन न करने नाश हो जाता है ॥ कैसे नाश होता है
सो सुण ॥ न मय हों ॥ न मेरा है ॥ अहं मम वस्तु कछु
नहीं ॥ मय आत्मस्वरूप हों ॥ अहं त्वं द्वैतरूप मेरे विषे
कोऊ नहीं ॥ हेय उपादेय भी भ्रांति हो जाता है ॥ सर्व
समता आनंद उदे होती है ॥ अरु अहंकार का होणा
दुःख का कारण है ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे प्रभो अहं
कार का रूप क्या है ॥ अरु त्याग कैसे होता है ॥ इस
का त्याग करणे सरीर साथ होता है ॥ अथवा सरी
र तें व्यतिरेक होता है ॥ अरु इसके त्यागणे तें फल
क्या होता है ॥ श्रीवसिष्टोवाच ॥ हे रामजी अहं
कार तीन प्रकार का है ॥ दो प्रकार का अंगीकार क
रणे योग्य है ॥ अरु तीसरा त्याग करणे योग्य है ॥
सो सुण ॥ इह दृश्य सब मय ही हों ॥ सो मय परमात
मा अचिंत रूप हों ॥ मुज सो इतर कछु नहीं ॥ इह नि
श्चा जिसके रिदे विषे है ॥ सो अहंकार मोक्ष के दे
णे हारा है ॥ बंधन का कारण नहीं ॥ अरु दूसरा अ
हंकार इह है ॥ जो मय सर्व तें व्यतिरेक हों ॥ वाल के
अगला
अग्र भाग तें भी सूक्ष्म हों ॥ ऐसा जो निश्चा है ॥ सो जी
वन्मुक्त का है ॥ सो भी मोक्षदायक है ॥ बंधन का का
रण नहीं ॥ अरु तीसरा अहंकार इह है ॥ हस्त पा
द मुख तें लेकर जो अहंकार है ॥ इतना मात्र आप
को जानणा इस विषे जिसका निश्चा है ॥ सो तुच्छ है
बंधन का कारण है ॥ इसका त्याग करो ॥ इह दुष्ट
परम दुःख का कारण है ॥ इसकर जीव मारते हैं

ईस प्रकार जब
इसका होणा सांत
हूया तब अहंका
र भी नष्ट हो जा
वेगा जब अहंका
र नष्ट हूया तब

सो परमार्थ की ओर तें अन्य हूए हैं ॥ इह अहंकार
रूप जो शत्रु है ॥ सो बडा चतुर अरु बली है ॥ नाना
प्रकार के सरीर अरु मानुषी दुःख काम क्रोध रा
ग द्वेष आदिक का देणे हारा है ॥ सब जीवों कों नी
च कर्त्ता है ॥ इस के त्यागे तें पाछें जो शेष रहता है ॥
सो आत्म भगवान मुक्तिस्वरूप सत्ता है ॥ हे राम
जी लोकों विषे जो अहंकार भावना है ॥ सो वपु की
है ॥ जो मय एता मात्र हों ॥ सोई दुःखों का कारण है ॥ इस
कों महापुरुषों नें त्याग कीया है ॥ उह जानते हैं ॥ जो ह
म देह नहीं ॥ शुध चिदाकाश स्वरूप हैं ॥ प्रथम जो म
य दो अहंकार कहे हैं ॥ सो अंगीकार करणे योग्य हैं ॥
सो मोक्षदायक हैं ॥ अरु तीसरा अहंकार त्यागणे
योग्य है ॥ इसी अहंकार कों अंगीकार करके दाम
व्याल कट अपदा कों प्राप्त भए ॥ श्रीरामोवाच ॥
हे ब्राह्मण तीसरा अहंकार जो तुम लौकिक कहा
है ॥ तिस के त्यागे तें पुरुष का क्या भाव रहता है ॥ अरु
तिस कों क्या विशेषता प्राप्त होती है ॥ श्रीवसिष्ठो
वाच ॥ हे रामजी जब इह पुरुष अनात्म अहंकार
कों त्यागता है ॥ तब परमपद कों प्राप्त होता है ॥ परमा
नंद स्वरूप के आगे ही एही अहंकार आवर्ण है ॥ जि
स का अनात्म भाव नष्ट भया है ॥ तिस कों भोगादिक
हर्ष नहीं देते ॥ तृष्णा रागादिक नष्ट होजाते हैं ॥ जैसे
सूर्य के आगें अंधकार नष्ट होता है ॥ तैसे स्वरूप के
जाणे तें अनात्म भाव नष्ट होजाता है ॥ अरु केवल
आत्मतत्व का भानु होता है ॥ ॥ इति श्री स्थित प्र
करणे दाम व्याल कटोपाख्याने नाम सर्गः ॥ ३३
श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जब दाम व्याल कट
युध तें भागे ॥ अरु सांबर के नगर की इह अवस्था
हूई ॥ जो सांबर की जेती कछु सेना थी ॥ सो सब नष्ट
होगई ॥ जैसे सरित काल विषे मेघ नष्ट होजाते हैं ॥
तैसे नष्ट हूई ॥ तब देवतें सांबर के नगर कों मार

लूटके अपणे स्थानोंपर जा बैठे ॥ अरु सांबर भी ति
नकों त्यागके बैठ रहा ॥ जबके तेइक वर्ष व्यतीत भ
ए ॥ तब देवतोंके मारणे निमित सांबर युक्त चित
वता भया ॥ जो दाम व्याल कट मयं माया कर रचे थे
सो मूर्ख थे ॥ बल करके वडे थे ॥ पर मिथ्या अहंका
रका बीज तिनों विषे पडा था ॥ सो फुर आया ॥ तिस
कर नष्ट हूए ॥ अब मय ऐसे योधे रचों जो आत्म
वेत्ता ज्ञानवान निरहंकार होवें ॥ तिनकों जीत कोऊ
न सकेगा ॥ सभ देवतोंकी सेनाकों मारेंगे ॥ इस प्रका
र चितवकर माया रूप दैत्य रचता भया ॥ जैसे समु
द्र तें बुदबुदे उपजते हैं ॥ तैसे सांबर दैत्योंकों रचता
भया ॥ जो सर्वज्ञ विद्याके वेत्ता अरु वीतराग विर
क्त आत्मा यथाप्राप्त विषे प्रवर्तते ॥ सदा आत्म निष्ठ
क ऐसे उत्तम पुरुष उपजाए ॥ भीम भास दृढ ति
सके नाम राखे ॥ उह संपूर्ण जगतकों तृणकी न्यां
ई जाणे ॥ तिनके हृदे परम पवित्र ऐसे पुरुषों कों
उपजाया ॥ इंद्रादिक देवता इनकों श्रवण करके
बडी सेनाकों ले आए ॥ अरु इह भी बडे बली बिजु
लीकी न्यांई चमतकार है जिसका ॥ सो महा बडे यो
धे दोनों ओर तें युध होणे लागा ॥ सस्त्रोंकी नदीयों
का प्रवाह चले ॥ अरु भीम भास दृढ तीनों धैर्य सों
खलोते युध करें ॥ जब बडा युध हूया ॥ देवतोंकी
सेना दैत्योंने मारी ॥ कछूएक भीम भास दृढनें खा
इ लीनी ॥ जो बच रहे सो भागे ॥ जैसे पहाड तें गिडता ज
ल वेग सों चलता है ॥ तैसे देवते तीक्ष्ण वेग कर भा
गे ॥ सो क्षीर समुद्र विषे विष्णु भगवानकी सरणि
कों जा प्राप्त भए ॥ जैसे वायु कर चलाए मेघ बदल
पहाडके आश्रय जा रहते हैं ॥ तैसे भय करके वि
ष्णु भगवानकी सरणि जा प्राप्त भए ॥ तब तिनकों वि
ष्णु भगवान देखकर कहा ॥ तुम ईहां बेगे ॥ भय

उनकों युधकरके मार आवता हों ॥ ऐसे कहिक
रसुदर्सनचक्र कों हाथ लीया ॥ अरु सांबर दैत्य की
ओर आए ॥ तब विष्णु भगवान अरु सांबर का यु
ध होणे लागा ॥ बडा युध हूया ॥ मानों अकांड प्रलय
आई है ॥ वडे वडे भूचाल होवें ॥ अरु पर्वत उछलें
बडा युध होवे ॥ तब सांबर चल खडा हूया ॥ महा भ
का ज्ञारूप ॥ सुदर्शन चक्र साथ विष्णु भगवान सां
बर कों मार लीया ॥ सांबर सरीर कों त्याग कर विष्णु
पुरी कों प्राप्त भया ॥ बहुड विष्णु भगवान भीम भा
सदट के अंतर पुर्यष्टका विषे जाग वेशा कीया ॥
अरु उनकी चित्तकला जो प्राणों साथ मिली हूई
थी ॥ तिसकों अस्त कीया ॥ मार डारा ॥ जैसे पवन दी
पक कों निर्वाण कर्त्ता है ॥ तैसे उनकी पुर्यष्टका फु
रणें निर्वाण कीया ॥ आगे जीवन्मुक्ति थे ॥ अब वि
देह मुक्त हूए ॥ हे रामजी उह भीम भास दट निर्वा
सी थे ॥ इस कारण तें दीपक की न्यांई निर्वाण होग
ए ॥ तां ते वासनां कर जो संयुक्त है ॥ सो बंध्या हूया
है ॥ अरु निर्वासी है ॥ सो मुक्ति रूप है ॥ तुम भी विवेक
कर के निर्वासी होवो ॥ जब ए ही निश्चा होवे ॥ जो सभ
जगत असत रूप है ॥ तब इसकी भावनां नही फुर
ती ॥ इह यथार्थ देखणा है ॥ जो किसी जगत के प
दार्थ विषे आसक्ति बुधि होवे ॥ तब बंधमान कह
ता है ॥ जगत की आसक्त तें तब मुक्ति होवे ॥ जब स
तकां अवलोकन सम्यक ज्ञान कर होवे ॥ अरु
आत्मपद कों प्राप्त होवे ॥ जो चित्त वासनां संयुक्त
है ॥ तिस विषे अनेक पदार्थों की भावना होती है
तिस भावनां तें मुक्ति है ॥ सो मुक्ति कहीता है ॥ अरु
जिसकों नाना प्रकार के घटपटादिक भासते हैं
सो तिस कर भय कों प्राप्त होता हैं ॥ जैसे बालिक कों
वैताल भ्रम कर के भासता है ॥ तैसे नानात्व चित्त

के भ्रम करके भासता है ॥ हे रामजी जैसी जैसी भा
वना कौं चित्त लेकर फुरता है ॥ तैसा तैसा आका
र तिस्कै विषे हो भासता है ॥ दाम व्याल कट भी चि
त्त करके इस अवस्था कौं प्राप्त भए ॥ अरु भीम भा
स दृढ भी चित्त कौं अलगता कर स्थित रहे ॥ सो
भीम भास दृढ का निश्चा तुज कौं होवे ॥ हे रामजी
इह वृत्तांत मुज कौं पूर्व ब्रह्मा जी कह्या था ॥ सो
मय अब तुज कौं कहा है ॥ इस संसार विषे को
ऊ विरला सुखी है ॥ अरु अवर सभ दुःखी हैं
जब तुम इस संसार की भावना त्यागोगे ॥ तब
देहादिकौं विषे बंधमान न होवोगे ॥ ॥ इति
स्थितप्रकरणे भीम भास दृढोपाख्याने सम
प्त नाम सर्गः ॥ ३४ ॥ श्रीवसिष्ठोवाचा ॥ हे रा
मजी अविद्या कर जो मन संसार की ओर सें मु
खलया है ॥ अरु जिन पुरुषों तिस मन कौं जी
त्या है ॥ उही सूरमें हैं ॥ अर उही सुखी हैं ॥ तिन की
जय होवे ॥ इह संसार सभ तें उपद्रव के देणेहारा
है ॥ इसका उपाव एही है ॥ जो अपणे मन कौं वि
चार कर वस करणा ॥ अरु इह जो मेरा आत्म
है ॥ सो सर्व ज्ञान संयुक्त है ॥ इसकौं सुण कर आ
प कौं विचारे ॥ जो मय क्या हौं ॥ अरु इह जगत क्या
है ॥ ऐसे विचार कर भोगों तें उपरत (निवरत) होणा ॥ अ
रु आंतिरूप आत्मा का अभ्यास करणा ॥ अ
र जेती कछु भोगों की इच्छा है ॥ सो बंधन का का
रण है ॥ अरु भोगों की इछा त्यागणे कौं मोक्ष क
हते हैं ॥ तिसतें शुभ गुण वैराग धैर्य उदारता
शांति उत्पत होती है ॥ अरु मन बुधि निर्मलभा
व कौं प्राप्त होते हैं ॥ जैसे शुक्लपक्ष के चंद्रमा की
कला वर्धती जाती है ॥ तैसे शुभ गुण विवेक व

44

थलेलागताहे इन विचार अरु सतसंगकर मोह अंधकार नष्ट होता हे जैसे सूर्य के उदे हूए तम नष्ट होता हे तैसे विवेक अरु सतसंग गुण वर्ध तेजाते हें अरु ज्ञान रूप अरु विचार द्वारा महा आनंद शीतल शांति प्रगट होता हे जैसे पूर्णमासी के चंद्रमा की कांति होती हे तैसे सतसंग अरु सतसंगकर विवेक रूपी फल प्राप्त होता हे तिस विवेक ते समता रूपी अमृत श्रवता हे तिसकर जीवन्मुक्ति अलेप होकर वर्त्तते हें निरइछित निरुपाध होता हे कोऊ इछा संसार की तिसको स्पर्शी नहीं करती सोई ईश्वर रूप हे अरु जिस पुरुष ने भोगों की तृष्णा को नाश नहीं कीया सो अनेक जन्म दुःखों को पड़ा पावता हे अरु जब विषयों की तृष्णा घटती हे तब मन भी सूक्ष्म हो जाता हे जब मन सूक्ष्म हूया तब कल्याण हूया मन विषे जो स्थूलता हे सो भोगों की तृष्णा हे जब तृष्णा नष्ट हूई तब मन भी नष्ट हो जाता हे हे रामजी जो नलेट हिल्लए होते हें सो स्वामी की जीत निमित्त रण विषे तृण की न्याई सरीर को त्यागते हें तिसकर स्वामी की जय होती हे सो मन का उदे होवणा दुःख का कारण हे अरु मन का नाश होवणा जीव को सुख का कारण हे अरु ज्ञानवान का मन नष्ट हो जाता हे अरु अज्ञानी का मन वध हो जाता हे तां ते संपूर्ण जगत मनोमात्र हे स्थावर जंगम जेता कछु जगत हे सो सब मनोमात्र हे मन किस का नाम हे शुध चैतन्य तत्व विषे जो फुरणा हूया हे अरु उही संवेदन संकल्प विकल्प कर मलिन हूई हे अरु स्वरूप विस्मरण भया हे तिस का नाम मन हे

ही

सोईमनवासनाकरकेसंसारभागीहोताहै॥ जब
चित्तसंवेदनदृश्यसाथमिलतीहै॥ तिसफुरणे
करमलिनहोजातीहै॥ तिससाथतन्मयहोणेतें
तिसकानामजीवहोताहै॥ सोईजीवदृश्यवर्गसा
थमिलकरसंसारदशाकोंचल्याजाताहै॥ अने
कविस्तारकोंप्राप्तहोताहै॥ अरुजोआत्मापुरु
षहै॥ सोपरब्रह्मस्वरूपहै॥ उहसंसारीनहीं॥ न
सरीरनसरीरादिकहैं॥ कोहेतें जोउहआत्मा
काशकीन्यांईनिर्लेपहै॥ जोसरीरकोंभिन्नभि
न्नकरदेखीये॥ तोरुधिरमांसअस्थितेंइतरक
छुनहीं॥ तैसेमनजीवरूपहै॥ इतरआकारकोउ
नहीं॥ मनहीसर्वभावविकारकोंप्राप्तभयाहै॥
हेरामजीइसपुरुषकोंबंधनकाकारणआपणी
कल्पनाहै॥ जैसेघुराडूणाअपलेयतनकरबंध
नकोंप्राप्तहोताहै॥ तैसेजीवआपणीवासनाक
रआपहीसंसारबंधनकोंप्राप्तहोताहै॥ तातेंदे
हवासनाकोंत्यागकर॥ जोसंसारकाबीजवास भ्रमको=
नाहीहैं॥ जैसेजिसवासनासंयुक्तदिनविषे
विचरताहै॥ तैसाहीस्वप्नाआवताहै॥ जैसेइस
कीवासनादृढहोतीहै॥ तैसेहोभासताहै॥ जैं
सेबडापुन्यवानहोताहै॥ तिसकोंस्वप्नेविषेअ
पणीइंद्रकीमूर्त्तिभासआवतीहै॥ अरुजिन
भूतोंकीसंगतवालेकोंजिनभूतदृष्टआवते
हैं॥ तैसेवासनाकेअनुसारपरलोकभासआ
वताहै॥ तातेंदुर्वासनाकोत्यागकरपूर्णमासी
केचंद्रमावतविराजमानहोवो॥ चित्तविषेस्प
र्शकिसीकानराखो॥ अलेपरहो॥ इहसंसारभ्र
ममात्रहै॥ अज्ञानकरकेभेदभासताहै॥ इह
सभइंद्रजालकीन्यांईमिथ्याभ्रमरूपहै॥ जैं

सेगंधर्वनगरमिथ्याहोताहै ॥ जैसेमृगतृष्णाका
जलभ्रममात्रहै ॥ तैसेइहजगतभ्रममात्रहै ॥ अस
तरूपहै ॥ अरुभ्रमकरकेसतहोभासताहै ॥ ऐसा
निश्चाहोरहाहै ॥ जोमयअनंतात्मानहीं ॥ मयलघ
नीचहौं ॥ जबचित्तसोंइसनिश्चेकाअभावहोवे ॥ अरु
आपकोंनिश्चेकरअनंतात्माजाणे ॥ प्रथमइसका
अभ्यासकरे ॥ तबद्रिढविषेस्थितहोवे ॥ इसनिश्चे
करउसनीचनिश्चेकाअभावहोजावेगा ॥ अरजि
सकोंस्वछनिर्मलआत्माविषेदृश्यभ्रमभासता
है ॥ सोक्षुद्रजैसेगुप्तचक्रकीन्याईअपणेसंकल्पकर
आपहीबंधमानहोताहै ॥ अरुजिसकोंस्वरूपकी
भावनाहोतीहै ॥ तिसकोंआत्मसत्ताबंधमोक्षतेंर
हितभासतीहै ॥ तबउहकिसीपदार्थविषेबंधा
यमाननहीहोता ॥ मननभावतेंरहितअमनहो
जाताहै ॥ तबब्रह्मसत्ताकेंप्राप्तहोताहै ॥ अन्यथा
नहींहोता ॥ जबवैराग्यअभ्यासजलकरकेमन
निर्मलहोताहै ॥ तबब्रह्मज्ञानरूपीरंगचढजाता
है ॥ सर्वआत्माहीभासताहै । जबसर्वआत्माकी
भावनाहूई । तबग्रहणत्यागकीवृत्तिनष्टहोजा
तीहै ॥ जबमनभोगोंकीवासनातेंरहितहोताहै
शास्त्रोंअरुसंतोंकेसंगकरविचारउत्पत्तिहो
ताहै ॥ तबप्रथमबोधकोंपावताहै ॥ बुद्धिकमल
नीकीन्याईखिडआवतीहै ॥ तबसंम्यकज्ञानउ
देहोताहै ॥ तबअंतरबाहिरदृश्यकात्यागकर्त्ता
है ॥ अरुअमनस्वभावसत्ताविषेस्थितहोताहै
तबपरमपदकोंप्राप्तहोताहै ॥ हेरामजीइहदृ
श्यअरुदृश्यस्पष्टभासताहै ॥ सोअसतरूपहै
जोपदार्थआदिअंतविषेनहोवे ॥ अरुमध्य
विषेभासे ॥ तिसकोंभीअसतरूपजाणीये ॥ सो
इहदृश्यआदिविषेनथी ॥ अरुअंतविषेभी

नरहेगी॥ अरु मध्य विषे जो भासती है॥ सो भी मिथ्या
रूप है॥ जिसकौं अज्ञान कर सत्य भासती है॥ ति
सकौं दुख प्राप्त करती है॥ सो आत्मभावना विनां
दुख निवर्त्त नहीं होता॥ जब दृश्य विषे आत्मभाव
ना होती है॥ तब भावनां के अनुसार इसकौं सुख
दाइक भासती है॥ जल अवर है॥ अरु तरंग अ
वर हैं॥ सो इह अज्ञानी का निश्चा है॥ जल तरंग वि
षे भेद नहीं॥ एक रूप हैं॥ इह निश्चा ज्ञानवान का
है॥ अरु जगत कौं नाना स्वरूप कर देखणा॥ इह
निश्चा अज्ञानी का है॥ तिस कर दुःख पावता है॥ ग
हण त्याग की बुधि विषे पडा भटकता है॥ अरु ज्ञा
नवान कौं सर्व आत्मा ही पडा भासता है॥ भेद भाव
नां तें रहित अंतर मुख होता है॥ हे रामजी नानात्व जो
भासता है॥ सो मन के फुरणे कर भासता है॥ अरु
मन नहीं रूप है॥ जो असत रूप है॥ तिसके सत जान
णे विषे क्लेश होता है॥ जैसे जिसका बांधव परदे
श सें आवता है॥ अरु उसकौं पछाणता नहीं॥ तब
अपणे की भावनां नहीं करता॥ जब पछानता है
तब अपणे की भावनां करता है॥ तैसे जब आत्म
सत्ता विषे अहं प्रतीत होती है॥ तब देहादिकौं के दुः
ख सुख का स्पर्श नहीं कर्त्ता॥ हे रामजी जब जीवत
त्व का ज्ञान होता है॥ कैंसा शिव है॥ जो दृष्टा अरु दृश्य
विषे व्यापक है॥ जब ऐंसे भासता है॥ तब दुःख कौ उ
नहीं रहता॥ तिस शांति रूप सत्ता विषे स्थित हूए तें
मन भी शांति हो जाता है॥ बहुड़ इस संसार रूपी कुहीड
का अभाव हो जाता है॥ अरु वर्षा रूपी वासना का
[illegible]व हो जाती है॥ तब अज्ञान रूपी मेघ भी नष्ट हो
ता है॥ अरु तृष्णा रूपी वल्ली रिदे सों सूक जाती है
जैसे प्रातह काल विषे रात्रि नष्ट हो जाती है॥ तैसे
अज्ञान रूपी तम के छीण हूए देहाभिमान रूपी

रात्रि नष्ट हो जाती है। जब अहंकाररूपी मेघ गाजी
ता है। तब संकल्परूपी मोर निर्तक रती है। जब
अहंकाररूपी मेघ नष्ट हो जाता है। तब परम नि
र्मल चिदाकाश भासता है। तब जीवरूपी सूर्य
स्वच्छ प्रकाशता है। जब मोहरूपी वर्षाकाल का
अभाव भया। तब ज्ञानरूपी सरतकाल विषे दि
शा निर्मल होती है। आत्मरूपी चंद्रमा शीतल
चांदनी सों प्रकाशता है। सो सर्व संपदा कों देणे
हारा है॥ अरु परम आनंद को बढावणे हारा है
जब शुभ गुणों कर विवेकरूपी बीज सिंचित हो
ता है॥ सो शुद्ध मन सर्व संपदा कों देणे हारा है॥१
तिस विवेकी पुरुष कों सर्वात्मा ही प्रकाशता है
सो निर्मल तें निर्मल होता है॥ रिदारूपी ताल बा
सनों तें रहित होता है॥ तिस विषे धार्य उदारता
रूपी कमल उपजते हैं॥ सो पुरुष सर्वज्ञ सर्व तें
श्रेष्ठ अपणे देहरूपी नगर विषे विराजता है॥१
जिस कों आत्म प्रकाश उदे होता है॥ तिस बुधि
वान के विकार नष्ट हो जाते हैं॥ अरु देहरूपी न
गर विषे विगतज्वर होकर विचरता है॥ इति
स्थित प्रकरणे उपशमरूप वर्णनं नाम सर्गः॥
॥ ३५ ॥श्रीरामोवाच॥ हे ब्राह्मण आत्मा जो चे
तनरूप है॥ अरु दृश्य तें अतीत है॥ तिस चिदात्मा
विषे दृश्य कैसे स्थित भई है॥ बोध की दृढता के न
मित्त मुझ कों कहो॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे राम जी
जैसे सोम जल विषे तरंग आवर्त रूप भासते हैं॥
सो जल तें इतर कछु हूया नहीं॥ जल ही रूप है॥ तै
से आत्मा विषे जगत आत्मरूप है॥ संकल्परूप
है॥ जैसे थंभे विषे सिलपी पुतलीयां कल्पता है॥
सो पुतलीयां थंभे रूप हैं॥ पर सिलपी के मन वि
षे फुरती हैं॥ सो संकल्परूप हैं॥ तैसे आत्मा विषे

अणे होता जगत भासता है ॥ सो आत्मरूप है ॥ इतर
नहीं ॥ अरु भासता है ॥ तो भी उही रूप है ॥ आत्मा दे
ह इंद्रीयों विषे प्रतिबिंबत होता है ॥ अरु भासता
त्रिदेपुर्यष्टका विषे है ॥ सो आत्मा सर्व संकल्पों तें
रहित है ॥ तिसकों ज्ञानवान उपदेश के निमित्त ना
म कल्प्य करके कहते हैं ॥ तिसके आगें आकाश भी स
कलंक है ॥ आत्मा निःकलंक है ॥ पर अभ्यास कर
के जगतरूप होभासता है ॥ अवर जगत कछु वस्त
नहीं । जैसे जल द्रवता करके तरंगरूप होकर भा
सता है ॥ सो जलतें इतर कछु नहीं । तैसे जगत आ
त्मारूप है ॥ आत्मातें इतर कछु नहीं । चैतन्यसत्ता
फुरणे करके जगतरूप होभासती है । अरु जग
त कछु नहीं । जो ज्ञानवान पुरुष हैं । तिनों कों आ
त्मसत्ता ही भासती है ॥ अरु अज्ञानी कों जगत दुः
खदायक भासता है ॥ अरु ज्ञानवान कों केवल
आत्मसत्ता अपणे आप विषे स्थित भासती है ॥
अनुभव आत्मा अपणे स्वभाव करके प्रकाश
ता है ॥ सूर्यादिक प्रकाश कों भी उही प्रकाशदेणे
हारा है ॥ अरु सर्व स्वादों का स्वाद उही है । सो सत्ता
उदे अस्त तें रहित है । अरु अपणे आप विषे स्थि
त है । जैसे तरंग जलरूप होता है । तैसे आत्मा जग
तरूप होभासता है । अपणी संवेदन के फुरणे क
र जगतरूप होभासता है । जब ऐसे आत्मा वि
षे इह भावना करती है । जो इह मय हों । अरु इह मेरे
हैं । तब अनेक दुःखों का भागी होता है । जब अ
पणे अनुभव स्वरूप कों जाणता है । तब अहं इदं
भावना नष्ट होजाती है । जैसे बीज विषे वृक्षसत्ता
प्रणाम करके बढती जाती है । तैसे आत्मसत्ता ।
चित्तसंवेदन करके जगतरूप होभासती
है ॥ सो संवेदन फुरणे कर आत्मसत्ता के आश्रे

जगतविस्तारभासताहे सोसमनसंकल्परूपहे सं
कल्पकीदृढताकरकेजगतरूपहोभासताहे॥
तिसविषेनेतरूईहे जोइहपदार्थऐसेहे इह
ऐसेहे सोअन्यथानहींहोता वसंतरुतविषेर
सअधिकविस्तारकोंपावताहे कार्त्तिकविषेधा
न्यउत्पतहोताहे अरुहिमरुतविषेजलगाढा
होजाताहे अरुअग्निउष्णरूपहे बरफशीत
लरूपहे इत्यादिकपदार्थजैसेरचेहैं तैसेही॥
स्थितहें अन्यथाभावनहींहोते जगतविषेचौ
दसप्रकारकेभूतजातहैं जिनकोंआत्मज्ञान
प्राप्तहोताहे सोज्योतिरूपआत्माकोंपाकरआ
नंदमानहोतेहैं अरुजोप्रमादीहैं सोपडेभ्रमते
हें जन्ममरणकोंप्राप्तहोतेहैं जैसेकर्मकोंकर्त्ते
हें तैसीगतिकोंपावतेहें जैसेसमुद्रविषेतरंग
उपजतेहैं बहुडलीनहोतेहें॥ तैसेजन्मतेमरते
जीवप्रमादीपडेहोतेहैं॥ ॥इतिस्थितप्रक
रणेचिदआत्मस्वरूपवर्ननंनामसर्गः॥३६
॥वसिष्टोवाच॥ हेरामजीइहजगतस्थितभास
ताहे सोमहाचंचलप्रणामीरूपहे जैसेसमुद्र
विषेतरंगप्रणामीहोतेहैं तैसेजगतचंचलप्र
णामीहे अरुआत्मातेंजगतआकसमात्रफु
रताहे सोकिसीकारणकरनहींफुरता पाछेका
रणकार्यभावहोतेभासतेहें अरुकृयाकर
नहीं जैसेजलसेंतरंगहोताहो अरुलीनहोजा
ताहे तैसेआत्मातेंजगतफुरताहे अरुलीन
होजाताहे जैसेमृगजलभासताहे अरहेनहीं
तैसेआत्माविषेजगतभासताहे परहेकछुन
हीं हेरामजीइहजगतआत्माविषेनसतहे न
असतहे जैसेस्वर्णविषेभूषणभासतेहैं तैसे
आत्माविषेजगतआकारभासतेहें तांतेतु

मद्रूपकों त्यागकर। दृष्टा विषे स्थित होवो। सो ज
ब जगत उस द्रष्टा तें इतर भासता है। तब जगद्
रूप साथ बांधा हूया है। जब आत्मा तें इतर न
भासे। तब किसकी वांछा करे। अरु त्याग ग्रहण
किसका करे। कर्त्ता करण कर्म तीनों ए कहें। न
कोऊ आधार है। न अधेय है। द्वैत कल्पना का अ
संभव है। अहं त्वं आदिक कोऊ नहीं। केवल ब्र
ह्म सत्ता अपणे आप विषे स्थित है। तांते हे राम
जी आपकों अकर्त्ता की भावना करो। अरु बाह्य
देह कर जगत के कार्य करो। जब शांतात्मा विषे
तुमारी बुधि स्थित वान होवेगी। तब तुम भी शांता
त्मा होवोगे। जब सर्व दृश्यरूप पदार्थों को त्याग कर
शेष अपणा स्वरूप रहता है। सो चिदात्मा शांति
स्वरूप है॥ ॥इति स्थितप्रकरणे शांति उप
देशो नाम सर्गः॥३७॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रा
मजी जो ज्ञानवान पुरुष हैं। तिस विवेक कर्त्ते त्वदृ
ष्ट आवता है। पर स्वरूप तें उसको या कछु नहीं
अरु जो मूर्ख हैं। जो कर्त्ते हैं। सो भोगते हैं। जिस वा
सना कर कर्त्ते हैं। तिसका फल भोगते हैं। शुभ
कर्मों कर स्वर्ग सुख भोगते हैं। अरु अशुभ कर्मों
कर नरक दुःख भोगते हैं। अरु जो पुरुष प्रसन्न हू
कर्म नहीं करते। पर आत्मा को अज्ञात है। उह वा
सना कर के फल के भागी होते हैं। अरु जो ज्ञानवा
न पुरुष हैं। जिनके रिदे विषे पदार्थों का सद्भाव
अरु इछा नहीं। तांते भोक्ता भी नहीं। शरीर कर क
र्त्ता है। तो भी अकर्त्ता है। पूर्वली प्रारब्ध कर सु
ख दुःख भोगता है। तो भी रिदे कर कछु नहीं भोग
ता। तिसको आत्मा तें भिन्न नहीं भासता। सर्व ब्रह्म
ही देखता है। अरु जो अज्ञानी आपकों कर्त्ता मान
ते हैं। सो कर्मों के अनुसार सुख दुःख भोगते हैं। जि

48

स काम न अनात्म भाव विषे मग्न है॥ सो अकर्त्ता भी
कर्त्ता है॥ तातें मन कर कीया है॥ सो कीया है॥ इह
सर्व जगत भी मन तें उपजा है॥ सो मन ही रूप है
अरु मन कर के स्थित है॥ जिन का मन अमन
भाव कों प्राप्त भया है॥ तिस कों सर्व शांति रूप
है॥ जैसें मृग जल के आतपे तें शांति हो जाता है॥ तैं
सें आत्म ज्ञान कर सर्व जगत शांति हो जाता है
संसार के सुख दुख स्पर्श नहीं करते॥ उह सर्व
विकल्पों ते रहित है॥ संसार की वासना तिस कों
नहीं फुरती॥ तातें सुखरूप है॥ अरु अज्ञानी संसा
र की भावना कर के पडे डुबते हैं॥ अरु दुख पाव
ते हैं॥ हे रामजी अज्ञानी अकर्त्ते विषे कर्त्ता है॥ जो
स्वप्ने विषे विकार कर्त्ता है॥ सो स्वप्ने विषे दुःख भो
गता है॥ तातें जैसा मन कर्त्ता है॥ तैसी सिधता कों
पावता है॥ तुम असंसक्ति होकर कर्म करो॥ तब
अकर्त्ता भाव रहोगे॥ हे रामजी जेता कछु जगत
भासता है॥ सो आत्मा तें इतर कछु नहीं॥ इह नि
श्चा जिस कों प्राप्त भया है॥ तिस ज्ञानवान कों सु
ख दुःख स्पर्श नहीं कर सकता॥ द्रष्टा दर्शन दृ
श्य इच्छा अनिच्छा आत्मा तें भिन्न कछु नहीं भास
ता॥ सो सर्व पदार्थों तें आप कों व्यतरेक सूक्ष्म दे
जब इसकूं ऐसा निश्चय होता है जो मैं देह नहीं
खता है॥ अरु सर्व का अकाश आप कों देख
ता है॥ अरु दृश्य जगत भी आत्मा कों देखता है॥
इस निश्चे कर सुख दुःख का क्षोभ नहीं होता॥ वि
गत ज्वर होकर स्थित होता है॥ अरु परम आनं
द विषे लीला करता विचरता है॥ जैसे चंद्रमां
की चांदनी शीतल करती है॥ तैसे उस पुरुष का
संग शीतल कर्त्ता है॥ सो शांति कर्मों कों कर्त्ता भी
कछु नहीं कर्त्ता॥ मन कर सदा अलेप रहता है॥

हे रामजी हाथ पादादिक इंद्रीके करणेका नाम कर्म नहीं मनके फुरणेका नाम कर्म है॥ मनही सर्वकर्मोंका कर्ता है॥ अहंत्व सर्वकर्मोंका बीज मनही है॥ अरु जब मन नष्ट होवे॥ तब सम कर्म नष्ट हो जाते हैं॥ सर्व दुःख नीचीण हो जाते हैं॥ अरु सर्व आनंदोका आनंद पावता है॥ जैसे बालिक मनकरके नगर रचे बहुड लीन कर लेवे॥ तिसको उपजावणेका हर्ष अरु लीन करणे विषे शोक नहीं होता॥ तैसे ज्ञानवानको कर्मका लेप कछु नहीं लागता॥ कर्ता हूया भी कछु नहीं कर्ता॥ सो असंसक्त मन कहीता है॥ अरु ज्ञानवानको केवल आत्मसत्ता भासती है॥ एक द्वैत की कलनातें रहित है॥ जैसे जलतें तरंग भिन्न नहीं भासता॥ तैसे आत्मातें भिन्न जगत नहीं भासता॥ न बंध है॥ न मोक्ष है॥ न बंधन बोधणे योग्य दृश्य है॥ तुम भी अहंत्व मिथ्या कलनाको त्याग कर॥ आत्मपद विषे स्थित होवो॥ बोधवान होकर प्रकृत्ति आचार विषे विचरो॥ ॥

॥ इति स्थितप्रकरणे महारामायणे मोक्षउपाये आत्मबोध नाम सर्गः॥ ३८ ॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन सत चित आनंद अद्वैत निर्विकार इत्यादिक गुणों कर वेष्टित जो आत्मतत्व है॥ तिस विषे विद्यमान जगत अविद्या विचित्र कहांते आई है॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इह संपूर्ण जगत ब्रह्मरूप है॥ ब्रह्मसत्ता सर्व व्याप्ति है॥ इस कारणतें जगत द्रष्टरूप होकर उही भासता है॥ सत असत द्वैत अद्वैत इत्यादिक रूप हो भासता है॥ परवास्तवतें कछु हूया नहीं॥ जैसे जल नाना प्रकारके तरंग बुदबुदे हो भासता है॥ तो भी जलतें इतर कछु नहीं॥ तैसे आत्मसत्ता अनेक विदघनरू

49 पहोभासती है॥परकछुयाकछुनहीं॥कहूंकर्मरूपक
हूंवाणीरूप॥कहूंगुणरूप॥कहूंमनकेहूंबुधिक
हूंप्रेरणाघोषणरूपहोभासताहै॥सर्वपदार्थोंका
बीजसत्ताउहीआत्माहै॥जैसेजलतेंतरंगउपज
करलीनहोजातेहैं॥तैसेसर्वपदार्थउपजकरब्र
ह्मसत्ताविषेलीनहोजातेहैं॥श्रीरामोवाच॥हेभ
गवनजोतुमारेवचनहैं॥इनकाउदारअगाधभीहै
तोभीसमझणइनकाकठनअरुगंभीरहे॥इन
कातोजनहीपायाजाता॥जांतेअतोलहैं॥इनकाय
थार्थभावमैंनहीपासकता॥मनसहितषटइंद्री
योंकीवृत्तितेंजिसकास्वरूपअतीतहै॥अरुसभ
काकर्त्ताहै॥अरुसर्वदृश्यरूपभीउहीहै॥जैसेदीप
कतेंजगायादीपककोंहीरूपहोताहै॥मानुषतेंमा
नुषजैसेउपजताहै॥तैसेनिर्विकल्पआत्मातेंजग
तउपजताहै॥सोउहीरूपहै॥आत्मानिराकारनिर्वि
कारउपशांतिरूपहै॥तिसतेंकलंकरूपकैसेउप
जा सोकहो॥श्रीवसिष्टोवाच॥हेरामजीइहजग
सन तब्रह्मस्वरूपहै॥नानाप्रकारकाजोमलिनसंसा
रभासताहै॥सोमलिनतानहीं॥जैसेतरंगोंकेसम
हसमुद्रविषेफुरतेहैं॥सोउहीजलरूपहीहैं॥तैसे
आत्माविषेजगतभासताहै॥सोकलंकतानहीं॥
उहीरूपहै॥जैसेअग्निविषेउष्मताहोतीहै॥सोअ
ग्निरूपहै॥तैसेआत्माअरुजगतएकरूपहै॥इतर
नहीं॥श्रीरामोवाच॥हेब्राह्मणनिर्दुःखब्रह्मतें
दुःखरूपजगतकैसेउपजा॥इहतोकलंकहै॥इ
हजोतुमारेवचनहैं॥तिनोंकोंमयजाणनहीसको
वाल्मीकोवाच॥हेपुत्रजबरामजीइसप्रकारक
हा॥तबवसिष्टजीरामजीकेउपदेशनिमित्तचित्त
विषेविचारतनए॥जोअबलागपरमप्रकाशकों

इनकी बुधि नहीं प्राप्त भई ॥ कछुइक निर्मल भाव कों प्रा
प्त भई है ॥ पदार्थ भूमिका कों जानणे लागी है ॥ अरु पर
मार्थ वेत्ता नहीं भई ॥ ऐसा जो ज्ञात ज्ञेय है ॥ जिस कों परमा
र्थ बोध प्राप्त हूया है ॥ अरु मन जिसका शांतिवान हूया
है ॥ ऐसा जो ज्ञात ज्ञेय पुरुष है ॥ अरु मोक्ष पद कों पाव
ता भया है ॥ संसार अविद्यक मल उसकौं नहीं भासती ॥ कछु
केवल अद्वैत सत्ता भासती है ॥ जब लग अवर उपदे
श न करे ॥ तब लग विश्रांत कौं न प्राप्त होवेगा ॥ जो अ
प्रबुधि है ॥ तिन कों सर्व ब्रह्म का कहणा नहीं शोभता ॥
जिस कों परम दृष्ट प्राप्त भई है ॥ तिस कों भोगों की इ
छा नहीं रहती ॥ ताते सर्व ब्रह्म का कहिणा राम जी कों
सिधांत काल विषे कहोंगा ॥ प्रथम शिष्य कों सर्व
ब्रह्म कहणा नहीं बणता ॥ प्रथम शम दम आदिक
कर शिष्य के रिदे कों शुध करे ॥ तब पाछे सर्व ब्रह्म
का उपदेश करे ॥ जो प्रबुध है ॥ तिस की भोगो की इछा
छीण हो जाती है ॥ उह निहकाम पुरुष है ॥ तिस कों
अविद्या मल नहीं रहती ॥ वशिष्ट जी अज्ञान तम के रूप
नाश कर्त्ता बोलत भए ॥ श्री वशिष्ठोवाच ॥ हे रा
घव कलनां रूपी कलंक ब्रह्म विषे है ॥ अरु नहीं
इह मय तुज कें सिधांत काल विषे कहोंगा ॥ अथवा
तें आप जाण लेवेंगा ॥ सर्व शक्ति ब्रह्म सत्ता सर्व व्याप
क है ॥ सर्व तिसी कर रचित है ॥ जैसे इंद्रजालक विचि
त्र कर अनेक रूप रचिता है ॥ सत कों असत अरु अ
सत कों सत कर दिखावता है ॥ तैसे आत्म सत्ता है ॥ जो
न बणे तिस कों बणावे ॥ जो बणे तिस कों न बणावे ॥
सो तिस कों आत्म सत्ता की शक्ति है ॥ वली विषे पथर
लागते हैं ॥ अरु पथरों विषे वली लागती है ॥ जैसे सु
मेर के तट पर नंदन वन है ॥ अरु बन की पृथिवी कों
अकास करती है ॥ आकाश कों पृथिवी चाकती है ॥

अरुवृक्षवल्लीसाथपथरलागतेहैं।जैसेकल्पवृ
क्षसाथरतनलागतेहैं॥अरुआकाशविषेवनलाग
तेहैं॥जैसेगंधर्वनगरआकाशविषेभासताहै॥अरुव
नकोंआकाशाकर्त्ताहै॥जैसेमनोराजकीसृष्टिशून्यव
नविषेहोतीहै॥हेरामजीइहविचित्ररूपसृष्टितुजकों
कहीहै।जोशुद्धअव्यक्तअचेतचिन्मात्रविषेचेतना
कालक्षणजाणो॥तिसीकररचीहै॥कैसीहैउहचित्तसं
वेदनजाननरूपफुरणेकरकेजगतरूपहोभासती
है॥तांतेंसर्वत्रसर्वप्रकारसर्वरूपउहीहै॥नानाप्रकार
केविपर्ययरूपहोकरभासतीहै॥अरुउहअपणेस्व
भावविषेसत्तारूपस्थितहै॥काहेतेंजोदृश्यरूपउनको
अपणेस्वरूपकाआभासफुरताभासताहै॥सोजी
वतत्वसंवेदनकेस्पंदकलाकरफुरताहै॥नानाप्रका
रकेदेशकालक्रियाद्रव्यहोकरभासतेहैं॥इसप्रपं
चकोंआत्मसत्ताकिसीयतनकरतोनहींरचती॥स्व
भाविकफुरणेकरपडेहोतेहैं॥जैसेसमुद्रयतनक
रकेतरंगनहींउपजावता।स्वभाविकपडेउपजतेहैं
तैसेआत्मसत्ताविषेस्वभाविकसृष्टीफुरतीयांहैं॥
जैसेसमुद्रअरुतरंगोंविषेभेदनहीं॥तैसेआत्माअ
रुजगतविषेकछुभेदनहीं॥उहीरूपहैं॥जैसेदूध
घृतरूपहै॥जैसेतंतुपटरूपहै॥तैसेआत्माजगत
रूपहोभासताहै॥हेरामजीआत्माविषेनकोउकर
ताहै॥नभोक्ताहै॥केवलआत्मतत्वनिरामयअप
णेआपस्वभावविषेस्थितहै॥इहजगतआत्माका
प्रकाशहै॥जैसेदीपककाप्रकाशस्वभाविकहै॥जै
सेसूर्यकाप्रकाशस्वभाविकहै॥तैसेजगतआत्मा
काफुरणास्वभाविकहै॥किसीकारणकार्यभावक
रनहींहूया॥जगतआत्माकास्वभावहै॥अभासरूप
है॥आत्मातेंइतरकछुनहीं॥जैसेपवनकास्वभाव
चलणाहै॥तैसेआत्माकास्वभावफुरणाहै॥सोउ

हीरूपहै॥ इतर नहीं॥ कबहूं जगत प्रकट भासता है॥
कबहूं अरूप होजाता है॥ नसत है॥ न असत है॥ ना-
नाप्रकार विचित्ररूप प्रणामी है॥ उपज उपज कर न
ष्ट होजाता है॥ अरु आत्मसत्ता जगत के उपजणे अ
रु नष्ट होणे विषे एक रस है॥ वास्तव तें न जगत उप
जा है॥ न नष्ट होता है॥ आत्मसत्ता ही अपणे आप विषे
स्थित है॥ असम्यक ज्ञान कर के जगत भासता है॥ अ
नंत शाखां कर पसरता है॥ इसकों ज्ञानरूप कुहाडे सें
पकाटो॥ तब सुखी होवो॥ जगतरूपी वृक्ष है॥ अरु अ
सम्यक ज्ञान इसका बीज है॥ शुभ अशुभ नरूपी फल
हैं॥ आसारूपी वल्ली कर वेष्टित है॥ दुःखरूपी इसकी
शाखां हैं॥ रोगरूपी पत्र हैं॥ जरारूपी फल हैं॥ त्रिष्णा
रूपी तलाव सों नसर भासता है॥ ऐसा जो संसार रू
पी विषका वृक्ष है॥ तिसकों यतन कर के आत्मज्ञान धूड
कर काटो॥ तब मुक्तिरूप आत्मा होवो॥ जैसे गजपति मूसर
अपणे बलकर सांगलों को तोड के सुख यन विचरे पृथवी प्राप्त
ता है॥ तैसे तुम निर्बंध नहोके विचरो॥ इति स्थितप्र
करणे सर्व एकता प्रतिपादनं नाम सर्गः॥ ३२॥ श्री
रामोवाच॥ हे भगवन इह जो जीव हैं॥ इनकी उत्पत
ब्रह्मपद तें कैसे भई है॥ अरु केते इक हूए हैं॥ सो मुझ
कों कहो॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे महाबाहु रामजी जै
से इह विचित्रता तें उत्पत होते हैं॥ अरु जैसे नाशकों प्रा
प्त होते हैं॥ अरु जैसे बढते हैं॥ अरु जैसे स्थित होते हैं
सो क्रम कर के तुझकों कहता हों॥ हे निहपाप रामजी
शुध जो ब्रह्मतत्व है॥ तिसकी शक्ति जो चेतनता है
सो निर्मल है॥ जब उह फुरणेरूप होती है॥ तब कलना
रूप होकर स्थित होती है॥ जब उह घनतेकों प्राप्त होती रूप
है॥ तब संकल्परूपकों धारता है॥ बहुडतन्मयरूप
होकर मनरूपकों धारती है॥ सो मन संकल्पमात्र ज
गतकों रचता है॥ विस्तार भावकों प्राप्त होता है॥ जैं

सेगंधर्वनगरलत्तणविषेहोताहै॥ तैंसेदृश्यकामनके
फुरणेंकरविस्तारहोताहै॥ ब्रह्मदृष्टकोत्यागकर
दृश्यकोंरचताहै॥ सोसभआत्मसत्ताकाचमतकारहै
बणयाकछुनहीं॥ हमकोतोसभआकाशरूपभासे
ताहै॥ अरुदुरदृष्टीकोंजगतरूपभासताहै॥ जैसाचि
त्तसंवितविषेजगतसंकल्पफुरताहै॥ सोचित्तसंवि
तआपकोंब्रह्मारूपदेखतभई॥ ब्रह्मारूपहोकरज
गतकोंकल्पतीहै॥ आपप्रजापतिहोकरचौदसप्र
कारकेभूतजातकोंरचतीहै॥ वास्तवतेंकछुहूयानहीं॥
चित्तकेफुरणेकरजगतभासताहै॥ सोचिन्मात्रआ
काशरूपहै॥ संकल्पकेंफुरणेकरभासताहै॥ तिसभां
तिरूपजगतविषेजोजीवभासतेहैं॥ सोकेईमोहसं
युक्तहैं॥ केईअज्ञानीहैं॥ केईजिज्ञासीहैं॥ केईज्ञानवा
नहैं॥ केईउपदेष्टाहैं॥ जेतेकछुभूतजातहैं॥ सोसभ
आधिव्याधिकरदीनहूएहैं॥ तिसविषेज्ञानवानसा
त्विकसात्विकाहै॥ अरुराजससात्विकीहैं॥ सोशांता
त्मापुरुषहैं॥ तिनकोंसंसारदुःखकदाचित्स्पर्शी
नहीकरता॥ उहसदाब्रह्मसत्ताविषेस्थितहैं॥ हेराम
जीइहजोमयतुजकोंभूतजातकहेहैं॥ सोसभब्रह्म
सत्ताशांतिरूपसर्वव्यापीहै॥ निरामयचेतनस्वरूप
अनंतात्माआधिव्याधितेंरहितहै॥ तिसकेकिसीको
णविषेजगतस्थितहै॥ जैसेसमुद्रकेकिसीस्थानवि
षेतरंगफुरतेहै॥ तैंसेब्रह्मकेकिसीस्थानविषेजग
तप्रपंचफुरताहै॥ श्रीरामोवाच॥ हेभगवनश्री
मतत्वजोनिराकारनिर्विकारअनंतरूपहै॥ तिस
काणकस्थानकहांतेंहूयाहै॥ निरवयवविषेअवय
वक्रमकैंसेहोताहै॥ श्रीवसिष्टोवाच॥ हेरामजी॥
तिसकरकेउपजेहैं॥ अथवातिसतेंउपजेहैं॥ इहजोउ
आरंभित पादानकारणहै॥ सोभ्रांतिमात्रहै॥ इहआरंभकारोंनेव्य
वहारकेनिमित्तकहाहै॥ परमार्थतेंकछुनहीं॥ अवय
वकरजोदेशादिककल्पनाहोतीहै॥ सोभ्रमतेंउत्प
हैं

तन नहीं भई ॥ उदय अस्ति पर्यंत दृश्यमात्र भी होती है ॥ प
रकल्पना मात्र है ॥ सो कल्पना भी आत्मरूप है ॥ आ
त्मा तें इतर कल्पना भी कछु नहीं ॥ न हुई है ॥ न होवे
गी ॥ तिस विषे जो कर्मादिक दृष्ट हैं ॥ सो व्यवहार के
निमित्त हैं ॥ परमार्थ तें कछु नहीं ॥ वास्तव तें सब आत्म
सत्ता शांतिरूप है ॥ इतर नहीं ॥ जैसे अग्नि तें अग्नि की
यां लाटां फुरतीयां हैं ॥ सो अग्निरूप हैं ॥ तैसे जन्म म
रण कार्य कारण दृश्य अर्थ कलना मात्र हैं ॥ आत्मा
विषे कोउ नहीं ॥ जहां प्रतियोगी विच्छेद संख्यानु
म होता है ॥ तहां द्वैत नानात्व होता है ॥ प्रतियोगी कही
ये प्रतिपक्षी ॥ जैसे चेतन का प्रतियोगी जड ॥ अरु जड
का प्रतियोगी चेतन ॥ अरु विच्छेद कहीये परिछिन्न
जैसे घट विषे आकाश होता है ॥ संख्या कहीये जीव ई
श्वर जो दृश्य अर्थ हैं ॥ सो द्वैत कलना विषे होते हैं ॥ ज ६६
हां एक आत्मसत्ता ही है ॥ तहां दृश्य अर्थ कहां होवे ॥
जैसे समुद्र विषे तरंग लहरी चक्र सब जल ही जल
है ॥ इतर कछु नहीं ॥ तैसे दृश्य अर्थ कलना सब ब्रह्म
रूप है ॥ इतर कछु नहीं ॥ जो बोधवान पुरुष हैं ॥ तिन
को सर्व ब्रह्म ही भासता है ॥ चित्त भी ब्रह्म है ॥ मन भी ब्र
ह्म है ॥ ज्ञान दृश्य अर्थ भी ब्रह्म है ॥ ब्रह्म तें इतर कछु न
हीं ॥ तिस विषे जो इतर भासे ॥ सो मिथ्या भ्रममात्र है ॥
इतर नहीं ॥ निश्चै कर परमार्थ तें सर्व ब्रह्म है ॥ सिधां
त काल विषे तुज को एही दृष्ट उपजेगी ॥ ॥ इति
श्री महारामायणे स्थितिप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रति
पादनं नाम सर्गः ॥ ४० ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भग
वन इह जो तुमारे वचन हैं ॥ सो क्षीरसमुद्र के तरंग
वत उज्जल शीतल स्निग्ध हैं ॥ तीन तापों के नाश कर्त्ता
अरु रिदे की मैल निवर्त्त करणे कों मानो निर्मली हैं ॥
अरु अज्ञान तम के नाश कर्त्ता ज्ञानरूपी सूर्य हैं ॥ तां
ते मेरा संसय निवर्त्त करो ॥ जो आत्मा अप्रमेय सत्ता

रूपहे ॥ असतरूपतें रहितसतसरूप है ॥ तिस अ
द्वैततत्व विबेककलनों कहां ते आई है ॥ श्रीवसिष्टो
वाच ॥ हे रामजी जो कछु मय तुजकों कहा है ॥ सो मे
रे वचनों का यथाभूत अर्थ है ॥ जैसे कहा है ॥ तैसे ही
है ॥ जिसके रिदे विबेक रहि रे ॥ तिसकों आत्मसत्ताकी
प्राप्त करे ॥ इनका फल भी प्रगट है ॥ जिनके धारने तें
सर्व दुःख निरत जाते हैं ॥ अरु पूर्व अपरविरोधी न
ही ॥ जो प्रथम अवर कहें ॥ पाछें अवर कहें ॥ जो कछु क
हा है सो यथार्थ कहा है ॥ अरु जब ज्ञान दृष्ट कर तेरा
रिदा प्रकाशेगा ॥ विस्तृत बोध सत्ता चित विषे प्रकासे
गी ॥ तब तूं मेरे वचनों के तातपर्य कों रिदे विषे जाणेगा
अब जो तुजकों वचन कहता हों ॥ सो वाचवाचक संबं
ध शास्त्रों के उपदेश आनमित कहता हों ॥ अरु जब इन
वचनों अरु युक्तों करतूं जागेंगा ॥ तब तुजकों अद्वैत
सत्ता निर्मल भासेगी ॥ अवर वाचवाचक शब्द अर्थ
रचनों कों त्याग करेंगा ॥ ज्ञानवान कों सदा परमार्थ स
त्ता भासती है ॥ इछा आदिक कलनां कछु नहीं पाई
ती ॥ जब लग आत्मसत्ता नहीं प्रकाशती ॥ जिंउ कातिं
उ आत्मबोध नहीं होता ॥ तब लग उपदेश है ॥ जब आ
त्मबोध नहीं होता ॥ तब लग उपदेश है ॥ जब आत्म
बोध होवेगा ॥ तब आपही जाण लेवेंगा ॥ अज्ञानरू
प जो तम है ॥ सो वाक विस्तार विनां शांत नहीं होता
सो मय बहुत युक्तों कर कहोंगा ॥ हे रामजी शुध जो
आत्मसत्ता है ॥ तिसके आश्रय संवेदन स्पंद फुरी
है ॥ तिसी का नाम अविद्या है ॥ सो अविद्या दो रूप रा
खती है ॥ एक उतम है ॥ एक मलिन है ॥ जो स्पंद केल
ना अपलो अज्ञानके नमित्त प्रवर्त्तती है ॥ सो उतम है
विद्या भी तिसीका नाम है ॥ सर्व दुःखों कों नाश करती
है ॥ अरु जो संसार की ओर फुरती है ॥ सो अविद्या क
हाती है ॥ जो आत्मा के सन्मुख होती है ॥ सो विद्या है ॥

अरु जो दृश्य जगत की ओर फुरती है ॥ सो अविद्या
है ॥ सो दोनों स्वप्नरूप हैं ॥ तातें विद्या कर अविद्या कों
नाश करो ॥ जैसें ब्रह्मशस्त्र कों ब्रह्मशस्त्र ही नाश
कर्त्ता है ॥ जैसें शत्रु कों शत्रु नाश कर्त्ता है ॥ तैसें अवि
द्या कों विद्या नाश करती है ॥ तातें तुम अविद्या ना
श करो ॥ विचार कीये तें जाणी नहीं जाती ॥ जो अवि
द्या कहां गई ॥ जैसें दीपक साथ अंधकार कों देखी
ये ॥ तब जाण्या नहीं जाता जो कहां गया ॥ बडा आश्च
र्य है ॥ बडा आश्चर्य है ॥ जो जीवों का ज्ञान इस आछा
दलीया है ॥ जो सदा अनुभव आत्मसत्ता है ॥ सो जी
वों कों नहीं भासती ॥ सो अविद्या कैसी है ॥ जब लग जा
णी नहीं ॥ तब लग पडी फुरती है ॥ जब जाणी तब न
हीं जाणी जाती जो कहां गई ॥ बडा आश्चर्य है ॥ जो अ
विद्या मायानें सर्व संसार को बांध्या है ॥ आप को सत
की न्याई दिखावती है ॥ अरु असत है ॥ बुधिवानों
कों भी इस नाश कीया है ॥ तो इतर जीवों की क्या का
हणी है ॥ निरंतर अभेदरूप आत्मा है ॥ तिस विषे
अविद्या भेद कलना कोऊ नहीं ॥ जिस पुरुष संसा
र कों मायामात्र जाण्या है ॥ सो पुरुषों विषे उत्तम है ॥ ति
स कों इस भावना हूई है ॥ जो अविद्या परमार्थ तें क
छु वस्तु नहीं ॥ असतरूप है ॥ जब लग तैं स्वरूप विषे
जाण्या नहीं ॥ तब लग मेरे वचनों विषे आस्तिक बुधि
करो ॥ जो अविद्या नाशरूप है ॥ है नहीं जेता कछु दृ
श्य जगत भासता है ॥ सो मन का मननरूप है ॥ जिस कों
इह निश्चे हूया है ॥ सो पुरुष मोक्षभागी होता है ॥ इह
जो मन का फुरणा दृश्यभाव कों प्राप्त हूया है ॥ सो सत
ब्रह्मस्वरूप है ॥ इह निश्चा जिस के रिदे विषे स्थित
हूया है ॥ सोई मोक्षभागी होता है ॥ अरु जिस कों चर
अचर जगत विषे दृढ भावना है ॥ सो बंध है ॥ जैसें पं
खी जाल विषे बंधमान होता है ॥ तैसें उह पुरुष बांध्या

हूयाहै॥ हेरामजीजगतविषे जिसकों असतबुधि
प्राप्तहूईहै॥ अथवाब्रह्मबुधिहूईहै॥ सोअसक्त
होकरजगतदुःखोंविषेडूबतानहीं॥ अरुजिस
कोंअनात्मदेहादिकोंविषेआत्मभावनाहै॥ सोहर्ष
शोकादिकवडीआपदाकोंपावेगा॥ अरुजिसकों
आत्मस्वरूपकाबोधहूयाहै॥ अरुअनात्मधर्म
कात्यागकीयाहै॥ तिसकोंसंसारभावनानहींरह
ती॥ जैसेसमुद्रविषेधूडनहींउडती॥ तैसेतिसपु
रुषकेह्रिदेविषेरागद्वेषनहींहोते॥ जोज्ञानवान
पुरुषहैं॥ तिनकोंजगतकेशब्द अर्थकारंगनहीं
चडता॥ तिसकोंसभ आत्मरूपभासताहै॥ जैसे
जलतरंगरूपहोताहै॥ तैसेआत्माजगतहोताहै
इतरकछुनहीं॥ जबआत्मज्ञानहोताहै॥ तबअवि
द्याकानाशहोजाताहै॥ सोआत्मज्ञानसंतोंकेसंग
अरुशास्त्रोंकेविचारकरहोताहै॥ जिसकोंआत्म
ज्ञानहूयाहै॥ सोअविद्यारूपनदीकोंतरजाताहै॥
आत्मसत्ताकेप्राप्तहूए अविद्याक्षयहोतीहै॥ आ
त्मआनंदविषेमगनहोताहै॥ हेरामजी अविद्याजि
सकोंउपजतीहै॥ तिसकोंमोहभ्रमविषेप्राप्तकर्ती
है॥ अरुआत्मपदकों आछादलेतीहै॥ जैसेसूर्यकों
बदलआछादलेतेहैं॥ तैसेआत्माकोंअविद्याआ
छादलेतीहै॥ हेरामजीतांतेइहविचारोजोअविद्या
नाशकैंसेहोवे॥ इसकेनाशकाउपावकरो॥ तबइस
कीउत्पतभीजाणोगे॥ अरुइसकारूपभीजाणोगे॥ इ
सकाकारणभीजाणोगे॥ कार्यभीजाणोगे॥ हेरामजी
अविद्यावस्तुतेहैनहीं॥ अविचारकरकेपडीभासती
है॥ अरुविचारकीयेतेंनष्टहोजातीहै॥ तबजाणीनहीं
जाती जोकहांगई॥ जबस्वरूपकाविस्मरणहोताहै॥ सो
उसीकानामअविद्याहै॥ दुःखोंकाकारणहै॥ तांतेब
लकरइसकानाशकरो॥ वडेवडेसूरमेहूयेहैं॥ तिन

कोंनी अविद्याव्याकुल कीया है॥ ऐसा बुधिवान को
ऊ विरला है॥ जिसकों अविद्या व्याकुल नहीं कीया।
[illegible]यतन करके इसका औषध करो॥ जिसकर
बहुर जन्म दुःखों की प्राप्त न होवे॥ अज्ञानरूपी वृक्ष
का अविद्या मूल है॥ अनर्थरूपी अर्थों की इह जन
नी है॥ ऐसी अविद्यारूपी मल को निवर्त्त करो॥ मोह
मय अपदा के देणेहारा है॥ जब अविद्यारूपी मल
को नाश करोगे। तब प्रबुधशांति की प्राप्त होवेगी॥
॥इति स्थितप्रकरणे अविद्याकथनं नाम सर्ग
॥४१॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी जब अविद्या
को काटकर स्थित होता है। तब विचाररूपी नेत्रों
कर देखके इसका नाश कर्त्ता है॥ सो पुरुष श्रेष्ठ
सात्विक है॥ तिस पद को प्राप्त होता है॥ जिसकों आ
त्मा ब्रह्म सर्वव्यापी निरामयं प्रकाशरूप कहते
हैं॥ जब उह चैतन्य प्रकाशरूप चित्तसंवेदनरू
प होय फुर्त्ता है॥ तब जगत होभासता है॥ जैसे समुद्र ते
तरंग फुर आवें॥ तैसे आत्मतत्व चित्तसंवेदन क
र जगत फुरता है॥ जैसे आकाश विषे आकाश स्थित
है॥ तैसे आत्मतत्व विषे जगत स्थित है॥ जैसे समुद्र
विषे तरंग फुरते हैं॥ तैसे आत्मा विषे चित्तकला सों
जगत फुरते हैं॥ जैसे आकाश विषे अणहोती मुक्ति
माला भासती है॥ तैसे आत्मा विषे अणहोती विश्व
भासती है॥ परिछिन्न की न्याई होभासती है॥ पर आ
त्मा ते इतर कछु नहीं॥ जैसे जैसे चित्तकला चेतती
है॥ तैसे तैसे होभासती है॥ अपणे आत्मस्वरूप वि
स्मरण करके दृश्यतन्मय होभासती है॥ इतर क
छु नहीं॥ उही रूप है॥ जैसे स्वर्णते भूषण भिन्न नहीं
तैसे चित्तशक्ति आत्मा ते भिन्न नहीं॥ पर अपणे आ
त्मस्वभाव के विस्मरण करके देश काल क्रिया द्रव्य
कों प्राप्त भई है॥ विकल्प कलना कर अपणे रचत

अविद्यारूप कोशों
का मूल है

तैं

कैं

आकारकों देखती है ॥ चित्तरूपतें क्षेत्रज्ञ भावकों प्रा
प्त होती है ॥ अरु सरीरका नाम क्षेत्र है ॥ सरीरके अं
तर बाहिर जानणे कर क्षेत्रज्ञ नाम होता है ॥ सो क्षे
त्रज्ञ जब अहं भावकी भावना कर्त्ती है ॥ तिस अहंके
कों करणेसें आत्मातें इतर चित्तकला अहंकाररूप
धारती है ॥ बहुड़ अहंकारसें निश्चे कलना होती
है ॥ तिसका नाम बुधि होता है ॥ संकल्प विकल्प क
रमन तें नाम होता है ॥ उही चित्तकला मन भावकों प्रा
प्त होती है ॥ जब मनतें अनेक विकल्प उठते हैं ॥ त
ब शब्द स्पर्श रूप रस गंधकी भावना कर इंद्रीयां
फुर आवती हैं ॥ बहुड़ हस्तपाद प्राणसंयुक्त देह
भास आवता है ॥ इस प्रकार जगत विषे देहकों पा
कर जन्ममरणकों पावता है ॥ वासना साथ बांध्या हु
या जीव दुःखोंके समूहकों प्राप्त होता है ॥ कर्म कर
के चिंता भावकों पावता है ॥ जैसा कर्म कर्त्ती है ॥ तैं
से आकारकों धारता है ॥ जैसे समे पाकर फल पर
पक्क होता है ॥ तैसे स्वरूपके प्रमाद कर्के जीव दृश्य
भावकों प्राप्त होता है ॥ आपकों कारण कार्य मान
ता है ॥ अहंकार भावकों प्राप्त होता है ॥ अरु निश्चे
भाव कर बुधिकों प्राप्त होता है ॥ अरु संकल्पविक
ल्प कर मन भावकों पावता है ॥ सो मन देह इंद्रीयां
हो कर स्थित होता है ॥ अरु अपणा अनंतरूप भू
ल जाता है ॥ परछिन्न भावकों ग्रहण करके प्रति
योगी विविछेद भावकों पावता है ॥ तब इछा मोहा
दिक सर्पोंकों प्राप्त होता है ॥ जैसे समुद्र विषे नदी
यां आन प्रवेश कर्त्तीयां है ॥ तैसे देहादिक अहंका
र कर विपता आदिक दुःख होते हैं ॥ जैसे घकराइण
आपणे स्थानकों रचकर आपही बंधमान होती है
तैसे मन आपणे दृश्य संकल्प कर आपही दुःखी
होता है ॥ अभिमान फुरणे करना ना भावकों पावता

हे॥ कर्तृं मन कर्तृं बुधि कर्तृं अहंकार कर्तृं प्रकित्ति
कर्तृं माया कर्तृं कर्म कर्तृं विद्या कर्तृं अविद्या अ
नेक संज्ञा को पावता है॥ सो देहादिकों की प्रीत क
रणी संज्ञा कों पावता भया है॥ तांते इन का त्याग क
रके आत्मपद की ओर सन्मुख होवो॥ वैराग्य अभ्या
स कर इन सों मन कों निकासो॥ अपणा उधार करो
जिस पुरुष कों अपणे मन पर दया नही होती॥ तिस होता
कों तरणा कठिन है॥ तांते तुम अपणा उधार करो॥
॥इति स्थित प्रकरणे जीववैवर्णनं नाम सर्गः
॥४२॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इस प्रकार जी
व आत्मसत्ता तें फुरकर संसार की भावना कर्त्ते भू
ए॥ तिन की संख्या कछु करी नही जाती॥ केई पूर्व
उपजे हैं॥ केई अब उपजे हैं॥ जैसे जल के झरणे
कर जल निकसता है॥ तैसे ब्रह्मसत्ता तें जीव पडे
उपजते हैं॥ अपणी वासना सों बांधे हूए पडे भट
कते हैं॥ चिंता कर के लीन होते जाते हैं॥ दशों दिशा
जल थल विषे पडे भ्रमते हैं॥ जैसे जल विषे तृण
भ्रमते हैं॥ तैसे जीव जन्म मरण कों प्राप्त होते हैं॥
किनों का प्रथम हूया है॥ किनों का सहस्रवां जन्म जन्म
हूया है॥ किनों कों असंख्य जन्म हूए हैं॥ केई आ
गे होवेंगे॥ अनेक कल्पों के बीत गए हैं॥ जो पडे भ्रम
ते हैं॥ केई जरा विषे स्थित हैं॥ केई यौवन विषे स्थि
त हैं॥ केई दीर्घ वपु होकर स्थित हैं॥ केई अल्प
वपु कर स्थित हैं॥ केई सूर्य की न्याई उदित रूप हैं
केई किन्नर केई विद्याधर होकर स्थित हैं॥ केई
इंद्र वरुण कुबेर होकर स्थित हैं॥ केई ब्रह्मा विष्णु
सदाशिव होकर स्थित हैं॥ केई यक्ष वैताल सर्पादि
क होकर स्थित हैं॥ केई ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र
क होते हैं॥ केई किरात चंडाल होकर स्थित हैं॥ के

ईतृणपत्रऔषधीहोकरस्थितहैं॥केईलतागु
छेपथ्थरशिखरहूएहैं॥केईकरदमतालवृक्षहूए
हैं॥केईमंडलेश्वरचक्रवर्त्तीहूएहैं॥केईमुनीश्व
रमौनविषेस्थितहैं॥केईपंखीहोकरस्थितहैं॥के
ईसूर्यचंद्रमाकीकिरणांविषेस्वाद लेतेस्थितहैं
केईज्ञानवानकेईअज्ञानीहैं॥तिनकीसंख्याकछु
नहीं॥जबलगअपनेआत्मस्वरूपकोंनहींपाव
ते॥तबलगअनेकजन्मोंअरुअनेकदुःखोंकों
प्राप्तहोतेहैं॥अरुकेईबुधिवानब्रह्मतत्वतेंउप
जकरतिसीजन्मविषेब्रह्मतत्वकोंप्राप्तभएहैं॥
केईबहुतेजन्मोंकरप्राप्तहोतेहैं॥केईगंधर्वके
ईदेवताजोनिकोंप्राप्तभएहैं॥जैसेसमुद्रतेंतरं
गउपजतेहैं॥तैसेसृष्टिउत्पत्तिहोतीहैं॥अरुमि
टजातीहैं॥तिनकीसंख्याकछुनहीं॥अरुजेतेक
छुजीवहैं॥सभसमेपाअपणेआत्मपदविषेस्थि
तहोतेहैं॥स्वरूपतेंइनकाहोवणाउपजणामिथ्या
है॥स्थितअरुबंधनभीमिथ्याहै॥नष्टहोणाभीमि
थ्याहै॥इतिस्थितप्रकरणेजीवबीजअसं
ख्यवर्ननंनामसर्गः॥४३॥श्रीरामोवाच॥
हेभगवनइसक्रमकरजीवआत्मस्वरूपविषे।
स्थितहैं॥बहुडअस्थिमांसकरपूर्णदेहइसकों
कैसेप्राप्तभईहै॥श्रीवसिष्टोवाच॥हेरामजी
तैं अप्रथमसमयतुझकोंबहुप्रकारकरकहाहै॥
बलगज्ञानतनहीभया॥पूर्वअपरविचारकरणे
वालीतेरीबुधिकहांगईहै॥जेतेकछुसरीरादिक
स्थावरजंगमजगतहै॥सोसभआभासमात्रहै॥स्व
प्नकीन्याईहूयाहै॥मिथ्याभ्रमकरकेभासताहै
जैसेआकाशविषेदूसराचंद्रमाभ्रमकरभास
ताहै॥तैसेअज्ञानकरकेजगतसतभासताहै॥जि
नपुरुषोंकीअज्ञाननिद्रानष्टभईहै॥अरुनि

आभासनामउस
काहैजोहोवेनां
अरुआभासेजैसे
मृगत्रिष्णाकाज
लथुक्तिमेंरजत
जेवरीमेंसर्पअर
कारमेंबनू

क्षे कर संसारकी भावना नष्ट भई है॥ सो प्रबुधचि
त है॥ सो संसार कों स्वप्नमात्र देखता है॥ चित्त के
भ्रम कर जगत उपजा भासता है॥ सो मन के फुर
णे विषे हूया है॥ अरु अफुर हूआ नष्ट हो जाता है
हे रामजी स्वप्ने विषे जो मन फुरता है॥ तहां ही देश
पतन बण लेता है॥ तातें इह देह अरु जगत मन
कर रचा हूया है॥ जैसे मृगत्रिष्णा का जल असत
होता है॥ तैसे इह जगत असतरूप है॥ जैसे स्वप्ने
विषे देहादिक भासते हैं॥ तैसे मन के फुरणे कर
दृश्य भ्रम भासता है॥ हे रामजी स्रिष्टि के आदि जो
आभास मात्र संकल्परूप पद्मकोश [कंवल] विषे ब्रह्मा जी
उत्पत भया है॥ तिसने संकल्प के क्रम कर विस्ता
र कीया है॥ जैसे संकल्प फुरु होवे॥ तैसे विस्तार की
या है॥ सो सभ माया मात्र है॥ तिस माया की घनता क
के दृश्य जगत भासता है॥ अरु वास्तव तें हूया कछु
नहीं॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन आदि जीव म
न के फुरणे कर ब्रह्मपद कों प्राप्त भया है॥ सो मु
ज कों क्रम कर के कहो॥ श्रीवसिष्टोवाच॥ हे म
हाबाहु रामजी प्रथम ब्रह्म सरीर कों ग्रहण की
या॥ बहुड़ अपणी शक्ति कर देश काल क्रिया क
ल्पित करी॥ तिस जीव के एते नाम हूए॥ मन बुधि
चित्त हृदय कमलां के सन्मुख हूए॥ प्रथम तेही
चेतसत्ता मानसी शक्ति होकर आकास की भाव
ना करते भई॥ तब आकाश फुरता॥ बहुड़ स्पर्श बी
तन्मात्र जे के सन्मुख भई॥ तब पवन फुरता॥ तब पवन के ष
घसणे संघर्षण कर अग्नि भई॥ वह्न प्रकाश हूया॥ बहुड़
रस तन्मात्रा की भावना भई॥ तब जल फुरता॥ जैं
से बहु उष्मता तें स्वेद निकस आवता है॥ तैसे

जलहोतभया ॥ बहुडगंधतन्मात्राकीभावनांभई
तिसकरघ्राणइंद्रीनिकसआई ॥ स्थूलताकीभा
वनांकरजलसोंपृथ्वीहोतभई ॥ इसीप्रकारश
ब्दस्पर्शरूपरसगंधतन्मात्राभई ॥ अपतेजवायु
आकाशपृथ्वीहोकरस्थितभए ॥ आकाशविषे
वनाप्रकाशहूया ॥ अहंकारकीकल्पनाकरबु
धिरूपाबीजमनवतभई ॥ बहुडजीवसत्ताहूई
इनइसनोंकानामपुर्यष्टिकाहै ॥ सोदेहरूपक
मलौकाजेमराभई ॥ तिसदेहविषेतीव्रभावना
करकेउहीचित्तसत्ताआपणास्थूलवपुदेखतभे
ई ॥ जैसेधातुसांचेविषेद्रवताकरकेभूषणहोती
है ॥ तैसेब्रह्माजीअपणीचित्तसंवेदनभावनांके
अनुसारस्थूलताकोंपावतेभए ॥ तहांइहफुरणा
क्रमकरइसप्रकारहूयाहै ॥ जोऊर्धसीसहै ॥ मध्य
उदरहै ॥ अरुअधहपादहैं ॥ अरुदिशाहस्तादि
कहैं ॥ जैसेनौतनबालिकप्रगटहोताहै ॥ तैसेब्र
ह्माजीकाशरीरउत्पतभया ॥ इसप्रकारवासना
करमनशरीरउत्पतकरलीयाप्रकाशरूप ॥ स
र्वबुधीकीसमष्टतारूपउसकाबुधिअरुबलहू
याहै ॥ बहुडकैंसाहैब्रह्माजी ॥ सदाज्ञानरूपअरु
संपूर्णईश्वर्यसंपूर्णशक्तिकरस्थितहै ॥ इसप्रका
रभगवानब्रह्माजीसर्वलोकोंकाअधिष्टानहोत
भेया ॥ स्वर्णकीन्यांईशरीरकीकांतिपरमआका
शतेंउपजा ॥ परमआकाशरूपस्थितभया ॥ हेराम
जीकबहूंब्रह्माजीपरमआकाशविषेरहताहै ॥
कबहूंकल्पांतकीन्यांईमहातेजभासुरअग्निविषेर
हताहै ॥ कबहूंस्वर्णकमलवतविष्णुजीकेनाभ
कमलविषेरहताहै ॥ लीलाकर्त्ताहै ॥ जबप्रथमप्र
त्वसेंफुरताहै ॥ तबब्रह्माजीअपणेसाथशरीर

देखता भया ॥ कैंसा सरीर प्राणों के प्रवाह संयुक्त प्रा
ण अपान जावते आवते हैं ॥ पांच तत्व जोड़ के हैं ति
न कर रचित हूया ॥ बत्रीस दंत हैं ॥ तीन थंभ हैं ॥ अ
र पंच देवता सरीर विषे स्थित हैं ॥ सो कौन हैं ॥ ब्र
ह्मा । विष्णु । रुद्र । ईश्वर । सदाशिव । पंच भाग सरीर
के हैं ॥ नव द्वारे हैं ॥ दो जंघा । वक्षस्थल । दो चर्ण । दो
भुजा हैं । हाथों चर्णों की अंगुली हैं ॥ एक मुख दो
नयन हैं ॥ कबहूं अपणी इछा सों बहुत भुजा ब
हुत नेत्र कर लेता है ॥ मांस कर देह कहा लकरी
है ॥ ऐसा सरीर सो चित्तरूपी पंखी का आलण है
कामदेव के भोगणे का स्थान है ॥ जीवरूपी सिंह की
कंदरा है ॥ अभिमानरूपी हस्ती का वन है ॥ इस प्रका
र ब्रह्माजी सरीर को देखता भया ॥ वही कांतिवान
उत्तम सरीर को देख कर भगवान ब्रह्माजी चितव
ता भया ॥ जो त्रिकाल अमल दर्सी है ॥ जो आगे भूत
आकाशा के तें अतीत भए हैं ॥ वे वेदों सहित ऐसे
अनेक हूए हैं ॥ तिन के जो धर्म थे ॥ सो सब स्मरण
कर के देखता भया ॥ वा कमैं भगवती सरस्वती का
स्मरण कीया ॥ वेदों का स्मरण सब सृष्टी का धर्म गु
ण विकार उत्पत स्थित वर्णाचरण हीण नास
होण सर्व धर्मों को स्मृति शक्ति कर देखता भया
जैसे वसंत रुत पुष्पों को देखता है ॥ तैसे ब्रह्माजी अ
नुभव शक्ति कर देखता भया ॥ दिव्य नेत्रों सों ॥ बहुत
इछा हूई ॥ जो लीला कर के विचित्र रूप प्रजा को उ
त्पत करों ॥ ऐसे विचार कर के उत्पत करी ॥ जैसे गंध
र्व नगर तात काल हो जाता है ॥ तैसे मन के संकल्प
कर स्रिष्ट हो गई ॥ तिन के धर्म अर्थ काम मोक्ष चार
पदार्थ रचे ॥ तिन के साधन रचे ॥ बहुत तिन विधि वि
धि निषेध रची ॥ जो इह कर्तव्य है ॥ इह कर्तव्य न हीं ॥

5.7 कोप्रापुत धर्म

तिनकेअनुसारफलोंकीरचनाकरी॥अधुधअधुध
ताकीविचित्रतारची॥हेरामजीफुरणेकरसृष्टिहू
ईहै॥फुरणेकीदृढताकरकेस्थितहूईहै॥तिस
विषेनेतकालक्रियाद्रव्यकर्मरचेहैं॥जैसेनेतकरी
है॥तैसेस्थितहै॥जैसेवसंतऋतुकरफलउत्पतहो
तेहैं॥तैसेब्रह्माकेमनकरसृष्टिरचीहै॥विचित्ररूप
रचनाकाविलासचित्तरूपकमलजाजोब्रह्माहै
तिसकेचित्तकरकल्पाहै॥सोकल्पनारूपहै॥काल
करउत्पतहूईहै॥अरुकालकरस्थितहै॥स्वरूप
तेंनकछुउपजाहै॥ननष्टहोताहै॥ ॥इतिस्थि
तप्रकरणेसंसारआवर्त्तनंनामसर्गः॥४४॥श्री
वसिष्टोवाच॥हेरामजीइसप्रकारजोउपजाहैसो
कछुउपजानहीं॥सनुआकासरूपहै॥मनकेफुर
णेकरसृष्टफुरतीहै॥वहदेशकालादिकक्रिया
संयुक्तजोब्रह्मांडदृष्टआवतेहैं॥सोसमउसके
मनविषेहैं॥उपजाकछुनहीं॥आकाशरूपहैं॥स्व
प्नपुरकीन्याईसंकल्पमात्रहैं॥आधारबिनोचित्रहैं
तैसेइहजागतवहनो(प्रकाश)सुररूपभासताहै॥तोभी
मिथ्याहै॥जैसेमनकाफुरणाजगतरूपहोभासता
है॥तैसेमनकेअफुरणेकरनष्टहोजाताहै॥सनेज
गतआभासमात्रहै॥घटपटकमआदिकभास
तेहैं॥तोभीअसतरूपहैं॥जैसेजलविषेआवर्त्त
चक्रभासतेहैं॥सोअसतरूपहैं॥तैसेपृथ्वीपर्वता
दिकजोभासतेहैं॥सोसभआकाशरूपहैं॥अपणे
रहणेकेनिमित्तमनइहशरीररचाहै॥जैसेघराइ
णअपणेरहणेकेनिमित्तघरबणावताहै॥तिसवि
षेआपहीफसमरतीहै॥तैसेइहमनसरीरादिक
रचकरआपहीदुखीहोताहै॥अरुपरमात्मदेवस
वैशक्तिहै॥मनभीतिसीकीशक्तिहै॥उहकवनपदा
र्थहै॥जोमनकरसिधनहोवे॥सनकछुसिधहोता

जैसे आधार बिना पुरत का चित्र मिथ्या होता है

हे॥ काहेतें जो सन विषे परमात्मा की ज्ञाप्ति है॥ इसतें इ
तर कछु नहीं॥ आदि चित्त कलो ब्रह्मा होकर उदेन
ई है॥ भावना के अनुसार आपणा ब्रह्मा का सरीर दे
खत नई॥ तिस कमल जो ब्रह्मा जी ने जगत रचा है॥
देवता असुर मानुष स्थावर जंगम रूप जगत संक
ल्प कर रचा है॥ जब लग उसका संकल्प है॥ तब लग
ऐसे ही स्थित है॥ जब संकल्प मिट जावे॥ तब स
न स्त्रिष्ट नष्ट हो जावे॥ जैसे तेल तें रहित दीपक निर
वाण हो जाता है॥ तैसे सन जगत निर्वाणता कों पावे
सो आकाश ब्रावत कलनों मात्र है॥ वस्तु तें न कोउ उप
जा है॥ न नष्ट होता है॥ आत्मसत्ता ज्यिउ की तिउ अप
णे आप विषे स्थित है॥ सन जगत मन के फुरणे कर
के भासता है॥ अरु ज्ञान कर के लीन हो जाता है॥ जैं
से मृगजल अरु सत्य भासता है॥ सो मिथ्या भ्रांति मात्र
है॥ तैसे सन जगत ब्रह्मा तें आदि तृण पर्यंत भ्रम मा
त्र है॥ कछु हूया नहीं॥ जैसे आकाश विषे दूसरा चंद्र
मा भासता है भ्रम कर के। तैसे भ्रम दृष्ट कर जगत
भासता है॥ इस जगत कों तें इंद्रजालवत जान॥ जैं
से इंद्रजाल माया मात्र है॥ तैसे इह जगत संकल्पमा
त्र है॥ भ्रम कर के सत की न्याई भासता है॥ ब्रह्मसत्ता
ही ज्यिउ की तिउ स्थित है॥ अरु इह जो कछु भासता है
सो मन की भावना कर स्थित भासता है॥ है कछु नहीं
हे रामजी इह प्रपंच नाना प्रकार की रचनों से युक्त भा
सता है॥ तो भी है नहीं॥ जैसे स्वप्न विषे अरंनं दृष्ट आ
वते हैं॥ पर हैं कछु नहीं॥ तैसे इह जगत दीर्घकाल का
स्वप्ना चित्त कर के कल्पित है॥ विचार कीये हाथ कछु
नहीं आवता॥ जैसे स्वप्न की स्त्रिष्ट जाग्रत विषे कछु न
ही पईती॥ तैसे इह जगत असत्त रूप है॥ जैसे अपणा म
न का कल्पी स्त्री सों बुद्धिवान राग नहीं कर्ता॥ अरु जो
अज्ञानी है॥ सो राग कर्ता है॥ तैसे अज्ञानी असत जग

चंचल रूप तिस के ग्रह
ए कीए कों बालिक
इका करता

तकों सत मानकर चेष्टा कर्त्ता है ॥ बुधिवान नहीं कर्त्ता
जैसे जेवडी विषे सर्प भासता है ॥ तैसे मन के मोह कर
जगत भासता है ॥ जैसे जल विषे चंद्रमा भासता है ॥ तैं
से जगत के पदार्थों की इछा अज्ञानी कर्त्ता है ॥ ज्ञानवा
न नहीं कर्त्ता ॥ हे रामजी इह मैं तुझ कों परम गुह्य का
समूह उपदेश कीया है ॥ तिसकी भावना करके तें सु
खी होवेंगा ॥ जो मूर्ख इन वचनों कों त्याग कर दृश्य कों
और लागते हैं ॥ अरु सुखी हूए चहते हैं ॥ ते महामूढ
हैं ॥ जैसे कोउ शीत कर दुखी होवे ॥ अरु समीप है अ
ग्नि कों त्याग कर जल विषे अग्नि के प्रतिबिंब कों आ
श्रय करे ॥ तिस कर शीत निवर्त्त कीया चाहे ॥ सो मूर्ख
है ॥ तैसे आत्मविचार कों त्याग कर जगत के पदार्थों
की इछा सुख के निमित्त करते हैं ॥ सो महामूर्ख हैं ॥ सभ
जगत असत रूप है ॥ इन विषे सुख कछु नहीं ॥ जो मोह
कर आवरे हूए बालिक बुधि हैं ॥ सो जगत के पदा
र्थों की इछा करते हैं ॥ जो बुधिवान हैं ॥ सो नहीं कर्त्ते
इस असत रूप जगत की आस्था त्याग कर सत स्वरू
प आत्मा विषे स्थित हो ॥ अरु जगत कों असत रूप जा
ण ॥ बालमीकोवाच ॥ हे भारद्वाज जब इस प्रकार
वसिष्ठजी कहा ॥ तब सूर्य भगवान अस्त हूया ॥ सभ
सभा अपणे अपणे स्थानों पर गए ॥ स्नान आदिक
क्रिया करी ॥ रात्रि के व्यतीत हूए सूर्य की किरणों साथ
अपणे अपणे स्थानों पर आन बैठे ॥ ॥ इति स्थि
त प्रकरणे यथा भूतार्थ उपदेशो नाम सर्गः ॥
॥ ४५ ॥ श्री वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जो धन स्त्री आ
दिक नष्ट हो जावें ॥ तो इंद्रजालक की बाजी वत जा
णीये ॥ इस कर शोकवान नहीं हूवीता ॥ क्षण विषे दृ
ष्ट आए बहुड नष्ट होगए ॥ तिसका शोक करणा मूर्ख
है ॥ गंधर्व नगर रतन मणी कर जो भूषण कीया है
तो भी उस विषे हर्ष शोक कोउ नहीं आवता ॥ जो है

हीननहीं॥ तैसेअविद्याकररचेस्त्रीपुत्रादिकहैं॥ तिनों
विषेसुखीमानणावहीमूर्खताहै॥ जोपुत्रधनआदि
कवधेतोतीसुखकाअभावकहाहै॥ जैसेमृगजलब
ढतनासे॥ तोतीअर्थसिधकछुनहींहोता॥ तैसेस्त्री
पुत्रादिकसभनअशोकदेणहारेहैं॥ इनविषेसुखको
ऊनहीं॥ दुखदायकहैं॥ सोतिनोंभोगोंसेंज्ञानवानों
कोंवैराग्यउपजताहै॥ अरुअज्ञानीकोंतिसविषेप्री
तहोतीहै॥ अरुबुधिवानदुःखरूपजानकरइनकी
इछानहींकर्ते॥ हेराघवज्ञानवानोंकीन्याईव्यवहा
रविषेविचरो॥ जोनष्टहोवेसोहोवे॥ जोप्राप्तहोवेसो
होवै॥ तिसविषेहर्षशोकमतकरो॥ जोप्राप्तहोवेसो
यथाशास्त्ररागद्वेषतेंरहितभोगो॥ एपंडितोंकाल
क्षणहै॥ हेरामजीइहसंसारदुःखरूपभोगोंसाथ
आछादयाहूयाहै॥ इसविषेमोहनहींलगावणा॥
जैसेज्ञानवानमोहतेंरहितविचरतेहैं॥ तैसेविचर
णा॥ किसीपदार्थविषेबंधमाननहींहोवणा॥ हेराम
जीशुधआत्मतत्वजोसतअसतकेमध्यहै॥ अरु
अंततेंरहितहै॥ तिसीकोंआश्रेकरो॥ अरुअंतर
बाहिरजोदृश्यपदार्थहैं॥ तिसकात्यागकरो॥ इस
कीआस्थात्यागकरआत्मतत्वकोंप्राप्तहोवो॥ अ
नंतविस्तृतआत्मारूपविषेस्थितहोवो॥ रागद्वेष
तेंरहितसर्वकार्योंकोकरो॥ जैसेआकाशसर्वपदा
र्थोंतेंनिर्लेपहै॥ तैसेसर्वकार्योंकोकर्तेअंतरतेंनि
र्लेपरहो॥ रागद्वेषतेंरहितकर्मोंविषेस्थितहोवो॥
तुमकोंकर्मोंकास्पर्शनहोवेगा॥ कमलकीन्याईनि
र्लेपरहोगे॥ इहमैंहों॥ इहमेराहै॥ इसअभिमानतेंर
हितहोकरआत्मतत्वविषेस्थितहोवो॥ हेरामजीइ
सदेहतेंआपकोंविलक्षणजानकरआत्मपदविषे
इस्थितहोवो॥ इहसंसाररूपीसमुद्रहै॥ तिसविषे
वासनारूपीजलहै॥ आत्मविषयणीबुधिबेडीहै

जो इस बेडी पर चडे हैं। सो संसार समुद्र को लंघ गए
हैं। इह जो बोध मैं तुझ को कहा है। सो रखो। डेव तें अवि
द्या को काटणे हारा है। तिन आत्म तत्व विषे वीचार
कर के स्थित होवो। जैसे तत्ववेत्ते आत्म तत्व को जान
कर व्यवहार विषे विचरते हैं। तैसे तुम भी विचरो। जै
से महात्मा पुरुष नित्य तृप्त हूए हैं। अर परावर पर
मात्मा ब्रह्म के वेत्ता हैं। न कछु ग्रहण कर्त्ते हैं। न कछु
त्याग कर्त्ते हैं। तैसे तुम भी विचरो। अरु व्रणाएश्व
र्य होवे। अरु बडे गुण होवें। तौ भी ज्ञानवान अज्ञानी
की न्याईं अभिमान नहीं कर्त्ते। जैसे सूर्य समभाव
लीए विचरता है। तैसे तुम राग द्वेष तें रहित समभा
व होकर विचरो। तैं भी अब विवेक भाव को प्राप्त भ
या हैं। बुधि बल कर इस विषे स्थित हो। निर्मल नि
र्वैर दृष्टि को लीयें विचरो॥ वालमीकोवाच॥ ज
ब इस प्रकार निर्मल वाणी सों वसिष्ठ जी कहा। तब
निर्मल चित्त राम जी का विद्या अमृत कर पूर्ण हूया
जैसे पूर्णमासी का चंद्रमा अमृत कर पूर्ण शीतल
होता है। तैसे राम जी शांतिवान अमृत कर पूर्ण हो
त भया॥ इति स्थित प्रकरणे मोक्ष उपाए य
थार्थ भूतार्थ व्यवहार योग उपदेशो नाम स
र्गः॥४६॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन सर्व धर्मों
के पारंकेविरापुन
के वेत्ता वेद वेदांत पारग। तुमारे अमृत वचनों कर
स्वस्ति स्थित भया हौं। अरु तुमारे अमृत रूपी वच
नों को पान कर्त्ता मैं तृप्त नहीं होता। हे भगवन तुम सा
त्विक राजस युक्त कहणे लागे थे। सो कछु संक्षेप
तें कहे थे। तिन विषे अब कृपा कर तुम ब्रह्मा
जी की उत्पत्त कही। तिस कर मुझ को इह संदेह भया
सो रिदे विषे वध विस्तार को पावता भया है। अरु
तुम सर्व संशयों के नाश कर्ता हो। सो कृपा कर मु
झ को शीघ्र ही उत्तर देवो। जो कहो ब्रह्मा की उत्पत्त

कमलतें कहीहे॥ कहूं आकाशतें॥ कहूं अंडतें॥ क-
हूं जलतें उत्पत कहीहे॥ सो विचित्ररूप ब्रह्मांडों कौं
सकहीहे॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी केई
लाख ब्रह्मा लैं हूए हैं॥ अरु अनेक सहस्र इंद्र हूए हैं॥
अरु सहस्रां ही विष्णु हूए हैं॥ अरु अनेक ही रु-
द्र हूए हैं॥ अब भी अनेक प्रकारों के ब्रह्मांडों वि-
षे ब्रह्मा हैं॥ अनेक आचार व्यवहार संयुक्त हैं॥ के-
ई तुल्य होते हैं॥ केई बडे छोटे कालकर होते हैं॥
असे भासते हैं॥ जो स्वप्न जगत की न्यांई उत्पत
होते हैं॥ केई व्यतीत गए हैं॥ केई अब हैं॥ केई आ-
गे होवेंगे॥ तिन विषे तुज [नांनी प्रकार] विविध ब्रह्मा की उत्पत
पूछी है॥ सो सुण॥ सो भी अनेक प्रकार है॥ कबहूं
सृष्ट सदाशिवतें उत्पत होती है॥ कबहूं विष्णुजी-
तें॥ कबहूं ब्रह्मातें॥ कबहूं रिषीश्वर रचलेते हैं॥
कबहूं ब्रह्मा कमलतें उपजता है॥ कबहूं जलतें॥
कबहूं वायुतें॥ कबहूं अंडतें उपजता है॥ कबहूं
किसी ब्रह्मांड विषे सूर्य विरंचि होता है॥ किसी ब्र-
ह्मांड विषे इंद्र विरंचि होता है॥ कबहूं पुंडरीका-
क्ष विष्णुजी विरंचि होता है॥ कबहूं सदाशिवजी
विरंचि होता है॥ कबहूं सृष्टि विषे प्रथम पर्वत उ-
पजते हैं॥ तिसकर पृथ्वी नीरंध्र होती है॥ कबहूं
मानुषों कर पूर्ण होती है॥ कबहूं वृक्षों कर पूर्ण
होती है॥ अनेक प्रकार सृष्टों की उत्पति होती है
किसी ब्रह्मांड विषे पृथ्वी माटी की होती है॥ कब-
हूं पाषाण की होती है॥ कबहूं स्वर्ण की होती है॥ क-
बहूं मांस की होती है॥ इसी प्रकार कोउ सृष्ट असे जो
सी होती है॥ चतुर्दश लोक हैं॥ किसी सृष्ट विषे
एक लोक है॥ किसी सृष्ट विषे दो लोक हैं॥ किसी होते
सृष्ट विषे ब्रह्मा नहीं हूया॥ इसी प्रकार अनेक(

स्त्रिष्टां ब्रह्मतत्वतें फुरताहैं। फुरकरलीनभईहैं। जैं
सेसमुद्रतें अनेकतरंगहोकरलीनहोतेहैं। तैंसे
परमात्मातें अनेकप्रकारस्त्रिष्टां उपजकरली
नहोतीहैं। जैंसेफूलोंविषेसुगंधहै। तैंसेपरमा
त्माविषेजगतहै। जैंसेसूर्यविषेत्रिसरेणु होते
हैं। तिनकीसंख्याकछुनहीं। कोउऐसाहोवेजो
तिनकीसंख्याकरें। तैंसेब्रह्मविषेस्त्रिष्टांफुरती
कोअंतनआवेगा। अरुनष्टहोतीपडीहैं।१ जैंसेस
मुद्रतें अनंततरंगफुरतेहैं। तैंसेपरमात्माविषे
स्त्रिष्टांफुरतीयांहैं। जैंसेमृत्तकाविषेघटहोतेहैं
तैंसेआत्माविषेस्त्रिष्टांहैं। अरुनष्टहोतीहैं। जैंसे
जबलगसमुद्रहै। तबलगतरंगहैं। तैंसेजबल
गब्रह्मसत्ताहै। तबलगस्त्रिष्टाहैं। जैंसेसाखापत्र
फूलफलवृक्षतेंभिन्ननहीं। तैंसेपरमात्मातेंजग
तभिन्ननहीं। हेरामजीमैंतुजकोंस्त्रिष्टांचतुर्दश
भवनोंसंयुक्तकरकहीहैं। सोपरमात्माआकाशतें
उपजतीहैं। अरुतोहीरूपहैं। कछुउपजीनहीं। क
बहूंब्रह्मतत्वतेंप्रथमआकाशउपजताहै। तिस
तेंब्रह्माउपजताहै। तबब्रह्माकानामआकाशजहो
ताहै। कबहूंप्रथमपवनउपजताहै। तिसतेंब्रह्मा
उपजताहै। पवनजाब्रह्माकहीताहै। कबहूंप्रथ
मजलउपजताहै। तिसतेंब्रह्माउपजताहै। जलजा
ब्रह्माकहीताहै। कबहूंप्रथमपृथ्वीउपजताहै
तिसतेंब्रह्माउपजताहै। तबपृथिवीजाब्रह्माकही
ताहै। कबहूंप्रथमअग्निभईहै। तिसतेंब्रह्माउप
जताहै। तबअग्निजाब्रह्माकहीताहै। हेरामजीइ
हपांचोंभूतोंतेंब्रह्माकीउत्पतकहीहै। जबचारत
त्वप्रलैहोतेहैं। अरुपांचवांतत्वसनसोंवढजाता
है। तबतिसतेंप्रजापतिकीउत्पतहोतीहै। सोउपज

ब्रह्मतत्वविषे स्त्रिष्टां जो फुरतीयां हैं तिनकी अंत करनें कों कोउ समरथ न होवेगा १

करअपणेजगतकोंरचताहे॥ कबहूंब्रह्माब्रह्मत
त्वतेंआपहीफुरआवताहे॥ जैसेपुष्पोंतेंसुगंधफुर
आवतीहे॥ तैसेब्रह्माउपजकरपुरुषकीभावनां
करपुरुषरूपस्थितहोताहे॥ तिसकानामस्वयंभू
होताहे॥ कबहूंविष्णुजीकीपृष्टतेंब्रह्माउपजताहे
कबहूंनेत्रोंसेंब्रह्माउपजआवताहे॥ कबहूंनाभ
सेंब्रह्माउपजआवताहे॥ तबब्रह्माकानामपद्मजा
होताहे॥ वास्तवतेंसभमायामात्रहे॥ स्वप्नकीन्यांई मि
थ्यारूपसत्तहोभासतेहैं॥ जैसेमनोराजकीसृष्टभा
सआवतीहे॥ तैसेइहजगतअणहोताभासताहे॥
जैसेनदीविषेतरंगअभिन्नरूपहें॥ तैसेजगतआ
त्मासेंअभिन्नहे॥ इतरकछुनहीं॥ जबशुधसत्ता
काआभाससंवेदनफुरतीहे॥ तबउहीजगतका
आकारहोभासतीहे॥ जैसेमनोराजविषेसृष्टभा
सतीहे॥ तैसेइहजगतभासताहे॥ हैकछुनहीं॥ कब
हूंशुधआकाशआत्माविषेमननकलाफुरतीहे
तिसतेंस्वर्णकाअंडउपजताहे॥ अंडसेंब्रह्माउपज
आवताहे॥ कबहूंपुरुषविष्णुजीदेवजलविषेवी
र्यधारताहे॥ तिसतेंब्रह्मांडउपजताहे॥ तिसतेंब्रह्मा
जीउपजआवताहे॥ कबहूंब्रह्माजीसूर्यसेंउपजआ
वताहे॥ इसीप्रकारविचित्ररचनांब्रह्मपदतेंउपजती
हे॥ बहुडलीनहोजातीहे॥ तेरेसुनावणेकेनमित्तमें
अनेकप्रकारोंकीरचनाकहीहे॥ सोसभमनकेफुरणे
मात्रहे॥ औरकछुउपजानहीं॥ हेरामजीतेरेप्रबोध
केनमित्तमेंसृष्टोंकाक्रमकहाहे॥ जोइसप्रकारसृ
ष्टोंकाक्रमहोताहे॥ सोइनकास्वरूपसभमनोमात्र
हे॥ कछुउपजानहीं॥ स्वप्नसृष्टवतउपजउपजकर
लीनहोजातीहें॥ बहुडसुखबहुडदुःखबहुडज्ञान
बहुडअज्ञानबहुडबंधबहुडमोक्षहोतीहे॥ कबहूं

कबहूं

मित्र शत्रु होते हैं। कबहूं नष्ट हो जाते हैं॥ जैसे दीप
क का प्रकाश उदै होकर नष्ट हो जाता है॥ तैसे देहा
दिक जगत उपज कर नष्ट हो जाता है॥ काल की उ
नता अरु विशेषता है। जो कोऊ चिरकाल पर्यंत रह
ता है॥ कोऊ शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ परस न नाशरू
प हैं॥ ब्रह्मा तें आदि चीटी पर्यंत जेते कबहूं आकार ना
सते हैं॥ काल के भेद को त्याग कर देखें जो सभ विना
शरूप हैं॥ कबहूं सतयुग आवता है॥ कबहूं त्रेता आ
वता है॥ कबहूं द्वापुर आवता है॥ कबहूं कलयुग आ
वता है॥ बहुड़ बहुड़ उही आवते जाते हैं॥ इसी प्रकार
काल चक्र पड़ा फिरता है॥ भ्रमता है॥ बहुड़ मनंतरों
का आरंभ होता है॥ कबहूं कल्पों की परंपरा व्यतीत हो
ती है॥ जैसे प्रातह काल तें बहुड़ प्रातह काल आवता
है॥ तैसे जगत भी उही उही जगत है॥ बहुड़ बहुड़ अंध
कार बहुड़ प्रकाश होता है॥ बहुड़ ब्रह्म तत्व तें इसफु
रण रूप होकर बहुड़ लीन हो जाते हैं॥ जैसे तप्त लोहे
सों चिणगारे उठते हैं॥ सो जो है विषे स्थित हैं॥ तैसे इह
सर्व भाव चिदाकाश विषे स्थित हैं॥ कबहूं अप्रकाशरू
प होते हैं॥ कबहूं प्रगट होते हैं॥ जैसे समुद्र तें तरंग वृ
क्ष तें पत्र फल फूल होते हैं॥ तैसे आत्मा तें जगत होते
हैं॥ जैसे नेत्र दूषन करके आकाश विषे दो चंद्रमा भा
सते हैं॥ तैसे चित्त के फुरणे करके आत्मा विषे जगत भा
सते हैं॥ बहुड़ तिसी विषे लीन होते हैं॥ जैसे चंद्रमा की
किरणां चंद्रमा विषे लीन होती हैं॥ तैसे सृष्टों के समूह
उपज कर लीन हो जाते हैं॥ मन के फुरणे कर जगत भा
सते हैं॥ बहुड़ अफुरहे लीन हो जाते हैं॥ हे रामजी
आत्मा सर्व शक्ति है॥ जो शक्ति तिस विषे फुरती है॥ ति
सी को जगत कहीता है॥ सो सभ असत रूप है॥ जिसके
चित्त विषे महाप्रलै की न्याई असत का निश्चा है॥ सो पुरु

षसंसारी नहीं होता॥ स्वरूप विषे स्थित होता है॥ ऐसे
महामती ज्ञानवान को सर्व ब्रह्म दृष्ट आवता है॥ अर
हम कों भी एही निश्चा है॥ जो जगत है नहीं॥ सदा ब्रह्म
सत्ता हीं भासती है॥ अरु अज्ञानी की दृष्ट विषे जग
त सर्वदा विद्यमान है॥ सो बहुड बहुड उपजता न
ष्ट होता है॥ अरु सृष्टां भी उसकों बहुड बहुड भा
सतीयां हैं॥ देवता दैत्य लोकांतर कम हो भासते हैं॥
स्वर्ग मो इंद्र चंद्रमा सूर्य कुबेर नाग आदिक॥ लो
कपाल बहुड बहुड हो भासते हैं॥ स्वर्ग इंद्र अपत्स
रा फुर आवते हैं॥ धर्म अर्थ काम मोक्ष शुभ अशुभ
फुर आवते हैं॥ यज्ञ दान होमादिक सत्क्रिया कर्म
संयुक्त फुर आवते हैं॥ शुभ कर्म करणे हारे स्वर्ग सु
ख भोगते हैं॥ पुन्यों के क्षीण हूए गिडाय मिलते हैं॥ म
त्युलोक विषे आवते हैं॥ अरु अशुभ कर्मी वाले न
रक दुख भोगते हैं॥ इस प्रकार कर्म कर के सुख दु
ख भोग कर नष्ट हो जाते हैं॥ अरु स्वर्ग सुख कमल
है॥ तिस विषे इंद्र रूपी भमरे हैं॥ तिस स्वर्ग की सुगं
ध लेकर उह इंद्र जलता रहता है॥ मृत्यु के भय कर
तब और इंद्र रूपी भमरा स्वर्ग की सुगंध लेणे आ कमल
वता है॥ जेता काल पुण्य कर्म कीया होता है॥ तेता काल सुख
स्वर्ग भोग कर नष्ट हो जाता है॥ बहुड कलयुग आ
दिक आवते हैं॥ सन देश काल क्रिया द्रव्य जीव उप
जते हैं॥ जैसे कुलाल चक्र कर बासण बणा लेता है
तैसे चित्त कला कल्पनां करके जगत अनेक पदार्थों
सहित उपजावती है॥ सुंदर नाना प्रकार के स्थान
जीवों सहित ... उपजते हैं॥ बहुड सर्व जीवों सहि
त नष्ट हो जाते हैं॥ सब जगत मसाण रूप हो जाता है॥
के प्रीकार मित क
कुलाचल पर्वत पुहकर मेघ की वर्षा करके जीव
बुदबुदे होकर ...त होते हैं॥ अरु बादश सूर्य आनउ

दे होते हैं॥ शेषनाग के मुख तें अग्नि निकसती है॥ तिन
कर सर्व जगत नष्ट हो जाता है॥ बहुड अग्नि की ज्वा
ला सांति हो जाती है॥ एक शून्य आकाश ही शेष रह
ता है॥ रात्रि हो जाती है॥ जब रात्रि को भोग चुकता है ब्र
ह्माजी॥ बहुड जीव जो ऐ देह संयुक्त [illegible] मन
रूपी ब्रह्मा [illegible]र रच लेता है॥ जैसे शून्य स्थान विषे
गंधर्वनगर माया मात्र रच लेता है॥ तैसे मन जगत कों
रच लेता है॥ बहुड प्रलै हो जाती है॥ ब्रह्मा के दिन व्यय
हूऐ रात्रि के व्यतीत हूऐ॥ जब ब्रह्मा का दिन हूंयं हो
ता है॥ तब बहुड जगत कों रच लेता है॥ बहुड प्रलै हो
जाती है॥ इस प्रकार सर्व जगत उपज कर नष्ट हो जा
ते हैं॥ अरु महाप्रलै विषे ब्रह्मा तें आदि सर्व अंतर्ध्या
न हो जाते हैं॥ इस प्रकार प्रलै अरु महाप्रलै अनेक
जगतों के समूह व्यतीत हो गए हैं॥ महा दीर्घ माया संसा
र रूप काल चक्र पडा फिरता है॥ तिस विषे मैं तुज कों
सत क्या कहों॥ अरु असत क्या कहों॥ सत नांतिरूप
है॥ दासूर के आख्यान की ईवत जगत है॥ कल्पना कर रचि
त चित्र है॥ वास्तव तें कछु नहीं॥ वहि आरंभ संयुक्त वि
स्तार रूप जगत भासता है॥ तो भी असतरूप है॥ जैं
से भ्रांत कर दूसरा चंद्रमा भासता है॥ तैसे इह जगत
मूढों के रिदे विषे सत भासता है॥ तुम मूढों की न्यांई
सतरूप नहीं जानणा॥ ज्ञानवानों की न्यांई विचार क
र असत जानणा॥ ॥इति स्थितप्रकरणे जगत
सतासत उपदेशो नाम सर्गः॥४९॥ श्रीवसिष्ठोवा
च॥ हे रामजी जिन का चित्त भोगों कर के पैचा हूया
है॥ सो नाना प्रकार की क्रिया के आरंभ करते हैं॥ राज
स तामस सात्विक कर्म करते हैं॥ इसी कर इह सर्वज्ञ आ
त्मा कौं नहीं पावते॥ जब भोगों की तृष्णा तें रहित
होवें॥ तब आत्मा कों देखें॥ जिन पुरुषों कों इंद्रीयों के

गणवज्ञानहीकरसकते॥ सोआत्माकोंहाथविषेप्रत्य
क्षबिलफलकीन्याईदेखतेहैं॥ जिसपुरुषविचा
रकरकेअहंकाररूपमलिनसरीरकात्यागकीया
है॥ तिनकातत्तनीयतत्तरूपहोजाताहै॥ जैसेसर्पकं
चकौत्यागताहै॥ अरओरतनकोंपावताहै॥ तैसेमि
थ्यासरीरकोंत्यागकरउहआत्मविचारतेंआत्मस
रीरकोंपावताहैं॥ जैसेजोनिरहंकारआत्मदर्शीपु
रुषहैं॥ सोजगतकेपदार्थोंविषेआसक्तनाहोतेहैं
तोभीजन्ममरणतेंरहितआत्मतत्वविषेस्थितहैं॥
जैसेअग्निकरजिसकाआकारजलगयाहै॥ ऐसा
जोअनादिबीजहै॥ सोक्षेत्रविषेबोयाउत्पतनहींहो
ता॥ तैसेज्ञानवानवहुडजन्ममरणनहींपावता॥ अ
रुजोभोगोंविषेआसक्तिबुधिअज्ञानीहै॥ सोमनअ
रुसरीरकेदुखोंकरदुखी [illegible] होताहै॥ वारंवारज
न्ममरणकोंपावताहै॥ जैसेबहुडबहुडदिनरात्रि
आवतेहैं॥ तैसेउहजन्ममरणकोंपावताहै॥ श्रीरा
मोवाच॥ हेभगवनतुमजोकहा॥ संसारचक्रदास
रआख्याइकावतहे॥ कलनाकरकेकल्पितहे॥ इस
कोअकारवस्तुतेसूक्ष्महे॥ इहतुमक्याकहा॥ खोलक
रकहो॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हेरामजीजगतमायाम
त्रवर्ननकेनमित्तमैंतुजकोंकहाहै॥ औरदासरकेप्र
संगसाध्यकछप्रयोजननथा॥ सोसुण॥ इसवसुधा
पीठविषेएकमागधनामदेशहै॥ सोविचित्रवृक्षौंक फूलों
रपूर्णहे॥ वहांकदंबबनविस्तीरणतालकरकेजंगला वेलित
वाचित्ररूपतहांनानाप्रकारकेपंखीरहतेहैं॥ मनकों
मोहनहाराचारोंओरतेंनीरंध्रकमलफूलोंसोंपूर्ण
जीवोंकीजीवनरूपकेकलादिकपंखीअनेकशब्द
करतेहैं॥ तहांनगरमोंएकपरमधर्मात्मामहातपस्वी
होतभयाहै॥ दासरतिसकानाम॥ महातपकरकेसंयु
क्तकदंब [illegible] वृक्षऊपरबैठकरवीतरागमहाबुधिवा

ततहां तपकर्त्तभया ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवनरु
षीश्वर तपस्वी बन विषे किस कारण कर आया था
अरु कदंब वृक्ष पर किस निमित्त बैठा । सो कहो ।
॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी सरलोमा नाम रु
षीश्वर तिसका पिता होत भया है । मानो दूसरा ब्र
हा ह्मा है । सो तिस पेंड पर रहता था । तिसके गृह विषे
दासुर नामा पुत्र होत भया । जैसे बृहस्पत के गृह वि
षे कच होवे । तैसे तिस दासुर पुत्र के साथ बन विषे
बहुत काल व्यतीत कीया । तिसके अनंतर युगों के
समूह भोगकर देह कों सरलोमा त्यागत भया । स्वर्ग
लोक कों गमन कीया । जैसे पंखी अपणे आलणे को
छोडकर आकाश कों उडता है । उडते से गया । ति
स बन विषे दासुर इकेला रहि गया । पिता के वियोग
तें रुदन करणे लागा । जैसे कुंज विछोडे कर कुरला
वती है । तैसे रिदे कर तपायमान मुख की शोभा जा
ती रही । जैसे हिमरुत विषे कमलों की शोभा जाती
रहती है । तैसे दीन होगया । तब उहां असरीर बनदे
वी आई । दया कर आकाशबाणी सों कहत भई ।
हे रुषपुत्र महाबुधिवान अज्ञानीयों की न्याई किउं
रुदन कर्ता हैं । इह संसार सभ असत रूप है । तें इ
स संसार कों देखता नहीं । इह तो महा चंचल रूप है
सर्वदा काल उत्पत बिनास रूप है । कोऊ पदार्थ स्थि
र नहीं रहता । ब्रह्मा तें आदि तृण पर्यंत जो कछु जग
ततुजकों नासता है सो सभ नाशरूप है । इस विषे सं
देह कछु नहीं । तातें पिता के मरणे का विरलाप म
त कर । इह बात अवश्यमेव इसी प्रकार है जो उत्प
त भया है सो नष्ट होवेगा । इस्थिर किसी रहणा नहीं
जैसे सूर्य उदे होता है बहुड़ नष्ट हो जाता है । हे राम
जी इस प्रकार असरीर देवी की बाणी श्रवण करी
तब रक्तलोचन दासुर धीर्य कों प्राप्त भया । जैसे मे

घकाशाब्दसुणकरमोरणीप्रसन्नहोतीहै॥तैंसेशां
तिवानहोकरयथाशास्त्रआदरसंयुक्तहोकर
पिताकीजोकर्त्तव्यक्रियाथीसोसबकर्त्तेभया॥
तिसकेअनंतरसिधताकेनमित्ततपकाउद्यमक
र्त्तेभया॥ब्राह्मणकाजोकोऊकर्महै॥तपकीविद्या
अपणीपूर्णसिखायाथा॥तिसकोंअध्ययनककें
श्रोतीहोतभया॥अर्थइह॥अपणीशाखापड़ताथा
सूतदेसनेकूल
परअग्नीतरिदयथाज्ञानीनथा॥ऐसाश्रोतीहोक
रतपकेनमित्तउचखडाहूया॥जोकोऊपवित्रस्था
नहोवै॥तहांजाकरतपकरों॥देखतादेखतापृथ्वी
विषेकिसीस्थानमोंचित्तविश्रामवाननहूया॥सब
पृथ्वीउसकोंअशुधदृष्टआवे॥इसीप्रकारसब
पृथ्वीअशुधदेखताभया॥वृक्षकीशाखाकेअग
भागबैठकरमैंतपकरों॥परऐसाकोउप्रकारहोवै
जिसकरइसवृक्षकीशाखाकेअग्रभागविषेमैंस्थि
तहोवों॥ऐसेचितवकरअग्निप्रज्वलितकरी॥अपणे
मोंढेकामांसकाटकरअग्निहवनकरणेलागा॥त विष
बसभदेवतोंकामुखजोअग्निहै॥सोविचारतभया
जोमेरेमुखविषेजीवतेब्राह्मणकामांसमतआवे॥
ऐसेविचारकरऔरूचजैसीदेहकोंधारकरब्राह्मण
केनिकटआवतभया॥अरुकहा॥जैसेब्रह्माकोंसू
र्यकहै॥तैसेवहैप्रकाससरीरकोंधारकरकहा॥हेब्रा
ह्मणजोकछूतुजेवांछितहैं॥सोवरमांग॥जैसेभंडा
रकोंखोलकरमणिलिवीतीहै॥तैंसेमुजसोंवरलेवो
जबइसप्रकारअग्निकहा॥तबदासूरपुष्पधूपतिल
कसाथपूजाकर्त्तेभया॥अरप्रसन्नहोकरकहत
भया॥हेभगवनश्राणअग्नितैंपवनसरीरकेनमित्तमैं
तपअर्थउद्यमकीयाहै॥अरुशुधस्थानमुजकोंको
ऊनहींभासता॥वृक्षकोंदेखकरमैंचहताहों॥जोइस
परबैठकरतपकरों॥वृक्षकेशाखाकेअग्रस्थितहो
णेकीशक्तिमुजकोंहोवे॥जबइसप्रकारसरलोमेरूषी

श्वरके पुत्र कहा ॥ तब अग्नि देवता कहा । ऐसे ही
होवे ॥ ऐसे कहि कर अग्नि देवता अंतर्ध्यान होग
या ॥ तब ब्राह्मण पूर्ण प्रसन्न होकर जानत भया ।
जो मेरा कार्य हूआ । जैसे पूर्णमासी का चंद्रमा पूर्ण
कला कर प्रसन्न होता है ॥ तैसे प्रसन्न भया ॥ जैसे क
मलनी चंद्रमा के प्रकाश को पाकर प्रफुलित विकासमान हो
ती है ॥ तैसे ब्राह्मण वर को पाकर शोभता भया ॥ इ
ति स्थितप्रकरणे दासूर उपाख्याने वर प्रा
प्तं नाम सर्गः ॥ ४८ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे राम
जी इस प्रकार वर को पाकर दासूर ॥ कदंब वृक्ष के
चडने की इछा करी । कैसा वृक्ष है । जो आकाश मं
डल को जिसने स्पर्श जा करता है ॥ अरु फूलों फ
लों कर पूर्ण है ॥ चकोर कोकला तिस पर शब्द क
र्ते हैं ॥ मानो किंनर गायन कर्ते हैं ॥ पत्र श्याम हैं ॥
तिस विषे पुष्प श्वेत हैं ॥ मानो आकाश को तारा ग
ण कर आछादन कीया है ॥ अरु सन वन देवीयों
का उत्तम स्थान है ॥ जो जीव उसके निकट आवते
हैं ॥ सो तप्त शांतिवान होते हैं ॥ पुष्प फल छाया क
र सुखी होते हैं ॥ सब को उप्रसन्न होवे ॥ अरु मध्य वि
जागे षे फल फलों के गुछे हैं ॥ मानो इन कर सहस्र नेत्र इं
द्र को जीतणे लागा है ॥ अनंत पुष्प गुछे पाताल को
गए ॥ मानो शेष नाग के फण हैं ॥ मानो शेष नाग आ
काश को देखने लागा है ॥ अरु धूड कर धूसर होग
या है ॥ मानो दूसरा सदाशिव भभूत लगा कर स्थि
वंक त भया है ॥ मानो सनकुबीभ्वरों को तलक ल्याण
कर्णहारा कल्पवृक्ष है ॥ जैसे स्वर्ग विषे कल्प होते हैं
तिनके आश्रे देवते नाग अपसरा गण विचरते
हैं ॥ तैसे इस वृक्ष को दासूर ब्राह्मण देखता भया ॥
॥ इति स्थितप्रकरणे दासूरोपाख्याने कदंब
शोभा वर्णनं नाम सर्गः ॥ ४९ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच

हे रामजी फूलफलसंयुक्त अैसे वृक्षकौं देख
कर महाबुधिवान दासूर तिसके ऊपर टास
के अगम भाग विषे जा बैठा ॥ जैसे प्रलेकालके
समुद्र एक व्हे होजाते हैं ॥ अरु विष्णुजी कल्प
वृक्ष ऊपर जा बैठता है ॥ तैसे दासूर कदंब वृक्ष
पर जा बैठा ॥ नौतन कोमल पत्र ऊपर अरु दिशा
कौं देखणे लागा ॥ चंचल कौतुकरूप देखी ॥ द्रस्य
रूप मानो चंचल पुतली है ॥ व्योम आकार तिस
का सीस है ॥ तिसपर व्योमके केस हैं ॥ प्रकाशरूप अग्नि
रूप पाताल तिसके चर्ण हैं ॥ मेघरूप तिसके वस्त्र हैं
पुष्पों की न्याई गोर अंग हैं ॥ अैसी द्रस्यरूप एक स्त्री
है ॥ समुद्र केला आदिक तिसके भूषण हैं ॥ प्राण
रूप झरणे सो जल चलता है ॥ सो मानो नेत्रों का
शब्द है ॥ मोहरूपी शरीर बनासपती रूम है ॥ सूर्य
चंद्रमा तिसके कुंडल हैं ॥ पर्वत मोटे हैं ॥ नदीयां ना
डी हैं ॥ पवन प्राण वायु है ॥ समुद्र आरसी है ॥ सूर्य
आदिक तिसके पित्त हैं ॥ चंद्रमा कफ है ॥ अैसी त्रि
लोकी रूप स्त्री पुतली है ॥ इति स्थितप्रकर
णे दासूरोपाख्याने दिशावलोकनं नाम स
र्गः ॥ ५० ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी तिस
के अनंतर स्थित होकर तप करणे लागा ॥ तब दा
सूर का नाम कदंबतपा हूया ॥ एक क्षण दिशाकौं
देखकर ऊहांसौं वृक्षकौं खैंचता भया ॥ पद्मासन
बांधकर मनकौं एकाग्र कीया ॥ सो दासूर कैसा था
फलकी ओर मन था ॥ फलकी प्रीतीकर कर्मौं विषे
स्थित था ॥ मन फलकी ओर था ॥ तिस वृक्ष ऊपर
स्थित हूया ॥ अरु मन करके यज्ञका आरंभ कीया
जेती कछु समिग्री थी जगकी सनय था शास्त्रमन
करके सिध करते भया ॥ दश वर्ष मन विषे व्यतीत भए

65

सनदेवतोंकापूजनकीया॥गोमेधअश्वमेधनरमे
धसनयततयथाज्ञास्त्रविधमनककेकर्त्तभया॥ब्रा
ह्मणोंकोबहुतरदक्षणादई॥इसप्रकारकतैसमे
पाकरउसकाअंतहकरणशुधभया॥विस्तृतवि
स्तीर्णनिर्मलताचित्तविषेस्थितभई॥बलात्कारसें
तबतिसकेरिदविषेज्ञानगंकाउदाभया॥आत्मा
केआगेंवासनामलआवरणथ्या॥सोनष्टहोगया।
जैसेसरतकालविषेतालनिर्मलहोताहे॥तैसेमुनी
श्वरकाचित्तनिर्मलभया॥तबवहमुनीश्वरजोपात
केअगनागमेंवृक्षऊपरबैठाथ्या॥तहांएकवनदे
वीकेंअगनागदेखतभया॥वहविशालनेत्रअरु
चपलरूपपुष्पकीन्याईदंतमहासुंदरसरीर।अर
कामकेमदकरपूर्णनीलकमलकीन्यांईलोचनम
नकेहरणहारीतिसदेवीकोंमुनीश्वरकहतभया
जोतैंकोंनहें॥अरतैंकिसनमित्तआईहैं॥तबवन
देवीनम्रीभूतहोकरकहतभई॥अबमहागौरीमृ
गनयनीबोली॥हेमुनीश्वरजोजोपदार्थवडेकष्ट
करप्राप्तहोताहे॥इसपृथिवीलोकविषे।सोपदार्थ
थोडेकालविषेमहापुरुषोंकीकृपाकरप्राप्तहोता
हे॥हमइसबनकेदेवताहें॥जोलोकचैंफिरतेहैं।
अरुजिसनमित्तमेंतुमारेआगेंआईहों॥सोसुण॥
हेमुनीश्वरपिछलेदिनोंकीजोचैत्रवदीत्रयोदशी
थी॥तिसदिनविषेइंद्रकेनंदनवनमेंउत्साहहूया
था॥तहांसनदेवीयांआनएकठीभईथी॥त्रिलोकी
कीयांदेवीयांआईयांथ्यां॥सनदेवीयांपुत्रोंसहित
वडेविलासपुष्पोंकरक्रीडाकरी।अरुमेंअपुत्री
थी॥तिसकारणकरमेंमहादुखितभई॥अबदुःख
निवर्त्तकरणेअर्थतुमारेपासआईहों॥तुमसर्वअर्थ
केसिधकरणेहारेहो॥वडेवृक्षपरस्थितहो॥मैंअनाथ

विषै

पुत्रकी इछाकरकैं तुमारे निकट आई हों ॥ जो पुत्र मुज
कौं देवो ॥ अरु जो न देवोगे ॥ तब अग्निकौं प्रज्वलित
करके प्रवेश करके जलमरोंगी ॥ इसकर पुत्रकादा
हनिर्वतकरोंगी ॥ हे रामजी जब इसप्रकार वनदे
वी कहा ॥ तब मुनीश्वर हसके ॥ हसकर कहा ॥ अरु हा
थों सों फल दीया ॥ अरु कहा हे सुंदरी तूं जा ॥ तुजकौं
एक मास उपरंत पुत्र होवैगा ॥ सो कैसा होवैगा पुज
लियोअपमहासुंदर ॥ अरु तुज जो इछा धारी थी जो
पुत्र प्राप्त न होवैगा ॥ तब मैं जलमरोंगी ॥ तिसवास
ना करपुत्र अज्ञानी होवैगा ॥ यतन करकै तिसकौं
ज्ञान प्राप्त होवैगा ॥ जब इसप्रकार मुनीश्वर वनदे
वीकौं कहा ॥ तब वनदेवी प्रसन्न होकर कहतभई
हे मुनीश्वर मैं ईहां रहती हों ॥ तुमारे पास टहलक
रोंगी ॥ मुनीश्वर इह बात न मानकर तिसका त्याग
कीया ॥ अरु कहा ॥ हे सुंदरी तूं जाकर अपणे स्थान
विषे रहो ॥ तब उह वनदेवीयों विषे आई ॥ तब ति
सकौं पुत्र उत्पत भया ॥ समे पाकर जब दश वर्षों का
बालिक हूया ॥ तब मुनीश्वर के निकट आकर
दोनों प्रणाम कीया ॥ मुनीश्वर के आगें पुत्रकौं स्था
पन कर कहत भई ॥ हे मुनीश्वर इह जो कल्याण
रूप बालिक है ॥ सो हम तुम दोनोंका पुत्र है ॥ इसकौं
मय संपूर्ण विद्या कला सिखाई है ॥ परपक कीया
है ॥ सर्वका वेत्ता भया है ॥ पर अज्ञानी है ॥ केवलज्ञान
कौं नहीं प्राप्त भूया ॥ जिसकरकै संसार यंत्र विषे ब
हुड दुःख न पावे ॥ सो ज्ञान तुम कृपा करकै उपदेश
करो ॥ जो पूर्ण ज्ञानवान होवे ॥ पुनः कुल विषे उपजा
होवे ॥ अरु चाहे जो मेरा पुत्र मूर्ख होवे ॥ सोकौं न हे
जब इसप्रकार देवी कहा ॥ तब मुनीश्वर कहा ॥ इ
सकौं तूं ईहां ही छोडजा ॥ उह देवी ईहां छोडकर

चलतीरही॥ बालिक पिताके पासरहतभया॥ कछन
यतनकरके तिसकों ज्ञानप्राप्तभया॥ नानाप्रकारकी
उक्तीकरके चिरकालपर्यंत आरंभा॥ एक इतिहास
अरु अपणे दृष्टांतकरकै करपुत्रकों जगावता भ
या॥ वेद वेदांतका निश्चय अनुभवी होकर उपदेश
कीया॥ विस्तारकरकै कथाके क्रमकहे॥ अनुभवकु
अपणे कैवहे अर्थकहे॥ जो अनुभवके वसतें प्रसन्न है॥ सो
बलकरके उपदेश कीया॥ सिंगार आदिक अष्टर
सहैं॥ तिनतें रहित परमार्थतत्वका उपदेश कीया॥
जो अर्थकहणा है॥ सो उस महात्मापुरुषकों उपदे
शकीया॥ तिसकर जागया॥ शांतात्मा होतभया॥ जैसे
मेघके शब्दकर मोर प्रसन्नताकों प्राप्तहोता है॥ तैं
से प्रसन्नभया॥ ॥इति स्थितप्रकरणे दासुरो
पाख्याने दासुरपुत्रबोधनं नाम सर्गः॥ ५॥
श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी मैं भी कैलाशवह
नी गंगाजीके स्नाननिमित्त चल्याजाताथा॥ अदृष्ट
सरीरसहित आकाशवीथीसों सप्तऋषोंके मंड
लतें चल्याथा॥ जिसवृक्षऊपर उह बैठेथे॥ तिनके
पाछैं मैं आया॥ तबकछुएक शब्दश्रवणकीया॥
वनविषे जो वृक्षहै॥ तिनके ऊपर वृक्षके आगवि
षे शब्दश्रवणकीया॥ हे पुत्र महाबुधिवान श्रवण
कर मैं तुजकों वस्तुके निरूपणनिमित्त आश्चर्यरू
प आरभायका कथा कहता हों॥ एक राजा होतभया
है॥ सो महावीर्यवान पराक्रमी अरु तीनों लोकों वि
षे प्रसिध नाम उसका स्वेतथ है॥ वह लक्ष्मीवान
जगतकी रचनाक्रम उतकर्ता है॥ अरु सनमुनिव
देवहेनायक जगतविषे हैं॥ सो भी उनमचूडामणि
करके तिसकों सीसविषे धारते हैं॥ अरु कर्म जो क
र्ता है॥ सो सहस्र असंख्य हैं॥ अरु तिस महात्मापु
रुषकों त्रिलोकीविषे किसीवस नहीं कीया॥ सह

रही तिसके अंत नहीं सुख दुःख के देणेहारा है तिसकी संख्या कछु करी नहीं जाती अरु उसका वीर्य पराक्रम है सो किसी अस्त्र शस्त्र कर छेदया नहीं जाता जैसे कोऊ आकाश को मुष्टि के प्रहार कर तोड नहीं सकता तैसे उह वस नहीं आवता वही विस्तृत तिसकी भुजा हैं अरु लीला कर के अनंत को रचता है तिसके अनंत रूपकर्ण को कोऊ समर्थ नहीं इन्द्र ब्रह्मा विष्णु शिव आदिक भी समर्थ नहीं हे महाबाहु तीन उसके देह हैं सो सर्व दिशा को भरर हे हैं तिन देहों कर जगत विषे पसर रहा है उत्तम मध्यम अधम कर के अरु वहे विस्तार रूप आकाश ते उत्पत भया है अरु तहां ही सरीरों विषे स्थित भया है जैसे आकाश का पंखी आकाश विषे रहता है तैसे तिस पुरुष ने परम आकाश विषे नगर रचा है तिस विषे चतुर्दश स्थान हैं तीन विभाग कर नगर भूषित कीया है वन अरु बागीचे संयुक्त अपनी क्रीडा के स्थान रचे हैं पहाडों के शिखर मों मोती की बलीर चीहु समबावली यां हैं तिन कर स्थान शोभते हैं अरु दो दीपक रचे हैं सो तेल बाटी ते रहित प्रकाशते हैं शीतल उष्ण रूप हैं कबहूं ऊर्ध्व को कबहूं अधह को भ्रमते हैं गण मूर्ख हैं कोऊ अह को कोऊ ऊर्ध्व को कोऊ मध्य विषे स्थित हैं केई बहुत काल कर नष्ट हो जाते हैं केई शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं केई छादन वस्त्रों को पहिरते हैं केई वस्त्रों ते रहित हैं नव द्वारों कर आछादन कीया है तिसके अनंतर बहुत जरोखे कीये हैं पांच दीपक देखणे निमित्त कीये हैं तीन थंभे कीये हैं तिन विषे और थंभे हैं मुलमेका तिन पर लेप कीया है पाद तलीयां कर संकुल कीये हैं महत माया कर तिन राजे नगर रचे हैं नगर के रक्षा निमित्त सेना रची है एक नेत देखले वा

स: अनन्तकारण:

५ वनाकर्ने

देवता

लेयत्नहैं॥ व्यवहारकरणोंकरकेउहचलताहै॥ नाना
प्रकारकीक्रीडाकरताहै॥ तीनसरीरोंकरसर्वत्रोडवि
षेलीलाकरकेएकस्थानकोंत्यागकरअवरस्थानवि
षेचेष्टाजाकरताहै॥ बहुडतिसकीइच्छाहोताहै॥ चंच
लचित्तसोंभविष्यतपुरकोंरचकरतिसविषेस्थित
होताहै॥ नयकरउहांतेंउठकरगंधर्वनगरकोंरच
ताफिरताहै॥ जबइच्छाकरताहै॥ जोमैंउपजों॥ तबउप
जआवताहै॥ जबइच्छाकरताहै॥ जोमैंमरजावों॥ तब
मरजाताहै॥ इसप्रकारराजावहव्यवहारकोंकरती
है॥ वारंवाररचनाकररुदनकरणेंलागताहै॥ मैंक्या
करों॥ मैंअज्ञानीहों॥ मयदुःखीहों॥ ऐसेविचारकर्के
चिंतासेंआतुरहोताहै॥ कबहूंआपकोंवडासुखी
मानताहै॥ विस्तारकोंप्राप्तहोकरवहप्रकाशकरप्र
काशताहै॥ तिसमहीपतिकीवडीमहिमाहै॥ उचित
रूपहोकरनगरमोंस्थितहै॥ इतिस्थितप्रकर
णेदासरोपाख्यानेस्वेतथनविष्यतवर्ननंनाम
सर्गः॥ ५२॥ श्रीवसिष्टोवाच॥ हेरामजीजबइस
प्रकारदासरकहा॥ तबजंपदीपकेवनविषेजोरु
ह्नेहैं॥ तिसकेअग्रनागशाखाकेउपरवैठेपुत्रनेप्र
श्नकीया॥ पुत्रोवाच॥ हेभगवनउहखेतथनाम
राजाकोनहै॥ जिसकीउपमाकीर्तजगतविषेप्रसि
धहै॥ अरुनगरतिसनेंकवनरचाहै॥ सोकैसेंभविष्य
तनगरविषेरहताहै॥ रहणेतोवर्तमानविषेहोता
है॥ भविष्यतविषेकैंसेरहताहै॥ इहविरुधअर्थ
कहणाकैंसेबणताहै॥ इनवचनोंकरमेरीबुधिमो
हितहोतीहै॥ दासरोवाच॥ हेपुत्रमैंतुजकोंयथा
र्थकहताहों॥ सोश्रवणकर॥ जिसकेश्रवणकीयें
तेंसंसारभ्रमकोंजिउकातिंउजाणेगा॥ जोइहवस्त
काहै॥ इहसंसारअडंबरअसतउठताहै॥ वहविस्त
रसंयुक्तभासताहै॥ तोभीअसतरूपहै॥ कछुक्रिया

नहीं ॥ जैसे इह संसार ऽअसार स्थित भासता है ॥ तैसे
मैं तुज को कहता हों ॥ इह आख्याइ मैं तुज कों जग
त निरूपण के निमित्त कहा है ॥ हे पुत्र जो शुद्ध ऽअ
चेत चिन्मात्र जो चिदाकाश है ॥ तिसतें जो संकल्प
उठता है ॥ तिस संकल्प का नाम स्वेतप है ॥ सो ऽआ
पही उपज कर ऽआपही लीन हो जाता है ॥ सर्व जग
त तिसका स्वरूप है ॥ वह है विस्तार संयुक्त भासता
है ॥ तिनके उपजणे कर उपजता है ॥ तिसके नष्ट हू
ए नष्ट हो जाता है ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्रादिक ति
सके ऽअवयव हैं ॥ जैसे वृक्ष के ऽअंग टास होते हैं ॥ तैं
से तिसके ऽअंग हैं ॥ सुनु ऽआकाश विषे तिसने इह
जगत नगर रचा है ॥ प्रतिभा के ऽअनुसंधानु तें उही
चित कल्ला विरंचि पद कों प्राप्त भई है ॥ चौदह स्था
न लोक हैं विस्तार संयुक्त ॥ सो चतुर्दश लोक हैं
बन बागीचे उपवन पहाड़ हैं ॥ मंदराचल सुमेरा
दिक क्रीडा के स्थान हैं ॥ दो दीपक कहे थे ॥ सो चंद्र
मा सूर्य हैं ॥ जगत रूप नगर कों प्रकाशते हैं ॥ इत्या
दिक पदार्थ सन संकल्प कर उदे हूए हैं ॥ संकल्प
के नष्ट हूए नष्ट हो जाते हैं ॥ जब तूं संकल्प कों त्या
ग कर यथाप्राप्त विषे विचरेंगा ॥ सुखी होवेंगा ॥ ऽआ
प सहित जगत कों ऽअसत जान ॥ जो हैं ही नहीं ॥ तब
सन दुःख नष्ट हो जावेगा ॥ जब लग जगत का सद
भाव भासता है ॥ तब लग दुःखी होता है ॥ जो बुधि
वान हैं ॥ तिनकों दुःख को उ नहीं ॥ का हे तें जो नित
प्राप्त रूप ब्रह्म सत्ता है ॥ तिस विषे स्थित होता है ॥ ऽ
अद्वैत ऽआत्म पद विषे स्थित होता है ॥ विश्रांत पाव
ता है ॥ इति स्थितप्रकरणे संसार मिथ्या वि
चारो नाम सर्गः ॥ ५३ ॥ पुत्रोवाच ॥ हे भगवन
संकल्प उत्पन्न कैसे होता है ॥ ऽअरु बध कैसे होता
है ॥ ऽअरु नष्ट कैसे होता है ॥ दासूरोवाच ॥ हे पु

त्र अनंतात्मतत्व जो समान सत्ता है। सो चैतन्य रूप
जगत के सन्मुख होती है। सो चैतन्यता का रूप जन है
ण जानणा सो संकल्प का अंकुर जाणो है॥ जब आ
प सहित जगत को असत जाण्या तब अहंभाव तें
रहित होवेंगा॥ अरु आत्मतत्व विषे स्थित पावेंगा
तब समन अहम शांति हो जावेंगे॥ श्रीवसिष्ठोवा
आकाश च॥ हे रघुकुल के चंद्रमा रामजी जब इस प्रकार
पुत्र कों उपदेश कीया। तब मैं उनके पृष्ठ आकाश
विषे स्थित था। जब कदंब वृक्ष तें उनके आगे जा
स्थित भया। तब दासुर मुझ कों सन्मुख देखकर
जो वसिष्ठ जी आया है उठ खडा हूया। अरु अर्घ
पाद कर मेरा पूजन कीया। बहुड हम दोनों पत्र प
रखे उगए। बहुड पूजन कीया। बहुड उनकी पिछे
ली कथा कों लेकर मैं उनकों उपदेश करणे लागा
उनके पुत्र कों और और कथा दृष्टांतों कर वित्ता
न हर्ष सों रमणीक दृष्टांत अरु युक्ती साथ जगा
वता भया मैं। नाना प्रकार की विचित्र कथा कहीं
तिस बालिक कों मैं ने जगाया। सिधांत कथा विषे
लोगे हूए रात्रि व्यतीत करी। एक महूर्त वत रात्रि
व्यतीत गई प्रातहकाल हूया। तब मैं उठ खडा हू
या। तब दासुर पुत्र साथ मेरे साथ चल्या॥ जहां ल
ग कदंब वृक्ष का पसारा था॥ तिसके अनंतर बहु
ड मैं तिनकों वहिरावता भया॥ अरु मैं गंगाजी के
स्नान कों चल्या॥ तब स्नान करके सप्तरुषीं के मंडल
विषे जा स्थित भया॥ हे रघुनंदन इह दासुर आख्या
न तुझ कों कहा है॥ इह जगत प्रतिबिंब आभास के
सदृश्य (समान) है॥ प्रत्यक्ष भासता है॥ तो भी असत रूप है॥
इस कथा का सिधांत रिदे विषे धारकर विचारो॥
तब संसार मल स्पर्श न करेगी॥ इति स्थितप्रक
रणे दासुरोपाख्याने समाप्तं नाम सर्गः॥ ५४॥

श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इह प्रपंच जो है हे क
छु नहीं ॥ ऐसे जाण सर्व दृश्य तें नीराग होवो ॥ जो
वस्तु होवे नहीं ॥ तिसकी आस्था क्या करणी है ॥ इ
ह प्रपंच जो दृष्ट आवता है ॥ सो इसकों विघ्नरूप
कर त्यागो ॥ हे रामजी इह केवल चित्त संवेदन के
फुरणे मात्र है ॥ अरु फुरणे कर के भासता है ॥ वस्तु
तें है कछू नहीं ॥ हे रामजी इह जगत किसी ने बणा
या नहीं ॥ केवल आभासमात्र है ॥ एही भावना हिर्दे
विषे धारो ॥ जो कछु नहीं ॥ काहे तें जो किसी कर्तें क
र कीया नहीं ॥ सर्व इंद्रीयों तें अतीतात्मा है ॥ सो तिस
कों कर्ता कैसे कहीए ॥ अकस्मात्र तें इह जगत फु
र आया है ॥ सो आभासरूप है ॥ इह असत भ्रांति
रूप है ॥ जिस विषे तें अर्पणा कल्याण जाणे ॥ तिस
विषे स्थित हो ॥ हे रामजी इस प्रकार निश्चे करो ॥ जो
सर्व मैं हों ॥ अकर्ता अभोक्ता हों ॥ ऐसी भावना कर के
जगत के कार्यों विषे विचरो ॥ बंधन कछु न होवेगा ॥
सर्वात्मा कर्तृत्व भोक्तृत्व तें रहित भी मैं हों ॥ इस प्रका
र चित्त विषे निश्चे कीये तें कामना को ऊन फुरेगी ॥
जिसकों इह निश्चा होता है ॥ जो मैं कदाचित कीया न
हीं ॥ सदा अकर्तारूप हों ॥ सो भोगों की भावना किस
निमित्त करे ॥ अरु त्याग किस निमित्त करे ॥ ता तें तुम इ
ह निश्चा धारो ॥ जो मैं नित अकर्तारूप हों ॥ अरु सर्व
कर्ता भी मैं हों ॥ सर्व जगत भी मैं हों ॥ जब सर्व आपही
हूया ॥ तब राग द्वेष किस विषे करे ॥ तब बहु दुख
कों प्राप्त नहीं होता ॥ हे रामजी सभ का कर्ता आप कों जा
णो ॥ अथवा आप कों अकर्ता जाणो ॥ अथवा दोनों
निश्चे कों त्याग कर निर्विकल्प होवो ॥ न मैं हों ॥ न इह मे
रा है ॥ न कर्ता हों ॥ न भोक्ता हों ॥ न कीया है ॥ न करोंगा ॥ जो
कल्याणरूप हैं ॥ सो देहअभिमान साथ स्पर्शे नहीं क
तें ॥ अहंकाररूपी पटल आया है ॥ नेत्रों के आगे ति

सकर आत्मा भासता नहीं ॥ जब आत्म विचार क
के इह पटल दूर होवे ॥ तब आत्म सत्ता प्रकाशेगी
जैसे बदलों के दूर हूए चंद्रमा प्रकाशता है ॥ तैं
से अहंकार के अभाव तें आत्म तत्व प्रकाशेगा ॥
जब इन विषे तूं कोऊ निश्चा धारेंगा ॥ तब सम दुः
खों ते रहित शांति आत्म पद कों प्राप्त होवेंगा ॥ २ ॥
॥ इति मोक्षउपाये स्थितप्रकरणे तत्व वि
चारो नाम सर्गः ॥ ५५ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥
हे रामजी ऐसे सिद्धांत पर जो उचित वार्त्ता है ॥ ति
स की जो गाथा हैं ॥ वृहस्पति का पुत्र जो कच है ॥
तिस गाई थी ॥ सो परम पावन रूप है ॥ एक काल में
सुमेर पर्वत के किसी गहन स्थान विषे देवगुर का
पुत्र जा स्थित भया ॥ अभ्यास के वस तें अचानिक
उसकों आत्म तत्व विषे विश्रांत भई ॥ अरु अंतष्
करण उसका सम्यकरूप चंद्रमा कर पूर्ण हूया ॥ अ
रु पंच भूतमयी जो कछु मल है ॥ दृश्य रूप तिस तें
निवर्त्त हूया ॥ तब नाव विषे स्थित होकर अफुर हू
या ॥ जो एक आत्म तत्व ही भासे ॥ ऐसे देखता हू
या ॥ गदगद वाणी सों बोलता भया ॥ मैं क्या करों
अरु कहां जावों ॥ क्या ग्रहण करों ॥ अरु किस का
त्याग करों ॥ सर्व विश्व विषे एक आत्मा पूर्ण होर
हा है ॥ जैसे महाकल्प विषे सर्व ओर तें जल पूर्ण
होता है ॥ तैसे दुःखनी आत्मा है ॥ सुखनी आत्मा है
आकाश तें लेकर दसों दिशा अहं त्वं आदिक स
र्व जगत आत्मा ही है ॥ बड़ा कष्ट है ॥ जो मैं अपणे आ
पकों न जाण्या था ॥ अब जाण्या जो देह के अंतर भी
आत्मा है ॥ अरु बाह्य भी आत्मा है ॥ अधः ऊर्ध्व सर्व
आत्मा है ॥ आत्मा तें इतर कछु नहीं ॥ सर्व ओर एक
आत्म तत्व ही स्थित है ॥ इह सर्व मैं हों ॥ अरु अपणे
आप विषे स्थित हों ॥ आदि अंत तें रहित अनं

ज्ञान

नात्मा हैं ॥ अग्नि भी मैं हों ॥ वायु भी मैं हों ॥ जल पृथ्वी
अकाश भी मैं हों ॥ अरु जो पदार्थ मैं नहीं सो है न
हीं ॥ जो कछु है ॥ सर्व विस्तृत रूप मैं ही हों ॥ एक पर हैं
मात्म आकाश पूर्ण मैं ही हों ॥ अर्थ इह जो नूरर्
हों ॥ सर्व जगत भी ज्ञान रूप है ॥ समुद्र की न्याई पूर्ण
स्थित है ॥ सो कल्याण मूर्ति कच इस प्रकार भावना
करता भया ॥ स्वर्ण के पहाड़ की कुंज विषे स्थित भ
या ॥ तिस के अनंतर खड़ी सुरसों ॐकार को उचार
त भया ॥ अरु ॐकार की अर्धमात्रा जिस को कह
ते हैं ॥ तिस विषे स्थित भया ॥ सो अर्धमात्रा कैसी है
न अंतर है ॥ न बाह्य है ॥ रिदे विषे भावना करती भ
या तिस विषे स्थित भया ॥ कलना रूपी जो मैल थी
तिस तें रहित निर्मल भया ॥ चित्त की वृत्त निरंतर
लीन हो गई ॥ जैसे पहाड़ की पुतली अचल होती है
तैसे कच समाधि विषे स्थित भया ॥ ॥ इति स्थि
त प्रकरणे कच अनुभव कथनं नाम सर्गः ॥
॥ ५६ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी अंगना के
सरीरादिक विश्व विषे भोग पदार्थ हैं ॥ सो इन तें इ
तर तो जगत विषे सुख कोऊ नहीं ॥ सो तो इह पदार्थ
ज्ञानवान को तुछ भासते हैं ॥ बहुड़ इच्छा किस की
करे ॥ इन भोगों विषे अज्ञानी सुख मानते हैं ॥ अरु भो
ग कैसे हैं ॥ आपात रमणीय हैं ॥ आदि अंत मध्य विषे
तुछ रूप हैं ॥ जो पुरुष इन की आस्था करते हैं ॥ सो ग
र्दभ हैं ॥ जो ज्ञानवान पुरुष हैं ॥ सो किसी पदार्थ विषे
प्रीत नहीं करते ॥ पृथ्वी सन मृत्तका रूप है ॥ वृक्ष स
न काष्ठ रूप हैं ॥ देह सन रक्त मांस रूप हैं ॥ पहाड़ स
न पाषाण रूप हैं ॥ पाताल अधह ऊर्ध्व दशो दिशा आ
सन विश्व पांचभूत रूप हैं ॥ इन विषे अपूर्व सुख को

ऊ नहीं ॥ जिस विषे ज्ञानवान प्रीत करे ॥ तां ते तुम भी
इन पदार्थों कों त्याग कर अपणे आप स्वभाव
विषे स्थित होवो ॥ ज्ञानवानों की न्यांई स्थित होवो
अरु विचरो ॥ हे रामजी इस जीव कों अनात्म अ
भिमान विषे आत्मबुधि भई है ॥ तां ते असत रूप
जगत भी सत हो भासता है ॥ ब्रह्माजी कों भी वासना
के वश ते अल्प देह का संयोग होता है ॥ सो संकल्प
रूप है ॥ देह वास्तव कछु नहीं ॥ श्रीरामोवाच ॥
हे भगवन महामते ब्रह्मा के पद कों प्राप्त होकर
बहुड़ इह सघन रूप जगत जाल किस प्रकार र
चता है सो कहो ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी
जब प्रथम कमल जा ब्रह्माजी उत्पत भया ॥ तब जैसे
से गर्भ तें बालिक उत्पत होता है ॥ तैसे उपज कर ख
रं वार इह शब्द उचरत भया ॥ ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म इस
कारण तें तिस कों ब्रह्मा कहीता है ॥ बहुड़ जिस का
रूप संकल्प जाल है ॥ ऐसा कल्पित आकार म
न हो आया ॥ तिस मन नें आगे संकल्प लक्ष्मी पसा
री ॥ प्रथम संकल्प तें जब माया उत्पत भई ॥ उह ते
ज अग्नि के चक्रवत फुरणे लागी ॥ तिस तेज तें बहु
प्रकाश हुया ॥ ज्वाला की न्यांई स्वर्ण लता रूप बहु
जटा संयुक्त सूर्य रूप होकर स्थित भया ॥ अपणे
समान बहु आकार प्रकाश संयुक्त भास कर कों
कल्पित भया ॥ ज्वाला का मंडल आकाश के मध्य
विषे स्थित भया ॥ कैसा मंडल है ॥ स्वर्ण का रूप है
जटा जिस की ॥ अरुपण भास कों उगाए ॥ अग्नि
रूप अरु अग्नि ही जिस के अवयव हैं ॥ मंडल जि
स का आकाश कों पूर्ण कर रहा है ॥ हे महा बुधिवा
न रामजी इस प्रकार ब्रह्माजी तें सूर्य हूया है ॥ अर
अवर जो तेज किरणां फुरायां हैं ॥ सो तारागण आ

ब्रह्म उचार कर ब्रह्मा
नाम भया ॥ अर संक
ल्प जाल कर मन
भया है

काशविषे विवानों पर आरूढ हूए पडे फिरते हैं ॥ ब
हुड उह जिंउ जिंउ संकल्प करती गया ॥ तैसें ही तात
काल होकर नासते लागे ॥ इसी प्रकार आगें जग
तकों रचता भया ॥ जिस प्रकार इस सृष्टि विषे ब्रह्मा
रचता है ॥ तिसी प्रकार सृष्टि सृष्टि विषे ब्रह्मा रचता
है ॥ प्रथम प्रजापति कों रचता है ॥ बहुड कालके कल
नां नक्षत्र तारागण रचता है ॥ बहुड देवते दैत्य स
मुद्र नदीयां पहाड बन मानुष नाग गंधर्व यक्ष रा
क्षस सन इसी प्रकार कल्पत भया ॥ जैसे समुद्र त
रंगों कों कल्पलेवे ॥ तैसे सर्वोत्किष्ट अरु सिंधर चे
तिनके कर्म रचे ॥ सो नीसुधि से कल्परूप ॥ जिस
काउ हसं कल्प करें ॥ सो ई सिथ होकें नासने लागे ॥
प्रजापति सिधों कों उत्पति कीया ॥ तिनें आगें और
उत्पत कीये ॥ तब ब्रह्माजी वेदों का स्मरण करते भ
या ॥ जीवों के यज्ञ यम नेम कर्म व्रतादिक पुन्य क्रि
या सन जगत मर्यादा करी ॥ नेत्र रूप जो स्त्री है ॥ इ
सकों रचता भया ॥ सो जगत रूप गृह का मर्यादा है ॥
इसन मित्र उत्पत कीया है ॥ सो ब्रह्म माया तें इस प्रका
र ब्रह्मा रूप होकर बहु शरीर कों धारि रहा ॥ अरु आ
गें त्रिष्टकों धारता है ॥ लोक अरु लोकपालों के क्र
म कीये हैं ॥ सो सुमेर पृथ्वी के मध्य सुख दुःख जरा
मरण रागद्वेष प्रगट कीये ॥ इस प्रकार संपूर्ण जग
त त्रिगुण रूप ब्रह्माजी रचता भया ॥ जैसे जैसे उस
ने रचा है ॥ तैसे तैसे स्थित है ॥ जैसे नेत धारी है ॥ तैसे (
स्थित है ॥ अरु है क्या ॥ जो कछु संपूर्ण जगत अब लग इस प्रकार
दृष्टि आवता है ॥ सो सन माया मात्र है ॥ हे रामजी सन
जगत का क्रम कीया है ॥ सो सन संकल्परूप संसार है
सो सन ब्रह्माजी के संकल्प विषे स्थित है ॥ जब तिस
का संकल्प निर्वाण होता है ॥ तब सन जगत लीन हो

जाता है॥ अरु एक कालमों ब्रह्माजी पद्मासनकों धा
रें हूए बैठा था॥ तब चिंतवता भया॥ जो इह जग
तजाल सब मनके फुरणे मात्र है॥ मनके फुरणेक
र उपज आवता है॥ अरु मनके क्षय हूए अफुर
होजाता है॥ अब मैं इसतें निवर्त्त होता हों॥ इस प्रका
र चिंतवकर अनर्थरूप संकल्पतें उपरत हूए॥
अनादि परमात्मतत्व ब्रह्म विषे मन लीन कर्त्ते भ
या॥ आनंदरूप शांतात्मा अपणे आपमों स्थित
पुरष भया॥ जैसे व्यवहारतें थकित हूया विश्राम कर्त्ता
है॥ तैसे अपणे आप कर आत्मा विषे स्थित भया
निर्मन निरहंकार परम तत्वकों प्राप्त भया॥ जैसे
अचल समुद्र होता है॥ तैसे स्थित भया॥ ध्यान वि
षे जुड गया॥ बहुर ध्यानतें भगवान ब्रह्माजी उ
ठे॥ जैसे समुद्रतें द्रवताकर्के तरंग फुर आवता है
तैसे चित्तके वशतें ब्रह्माजी फुर आया॥ तब जगत
कों देखकर विचारता भया॥ कैसा संसार है॥ सुख
दुःख कर रंजित अनंत फासीयों कर बांध्या हूया
है॥ रागद्वेष भय मोह सों दुखित है॥ जीवों कों इस प्र
कार देखकर जगतनाथ ब्रह्माजी कों दया उपजी
दया करके अध्यात्म ज्ञान सों वेद उपनिषद वेदां
तकों प्रगट कर्त्ते भया॥ वह अर्थ कर संयुक्त नाना प्र
कारके शास्त्र रचे॥ बहुर पुराण रचे॥ जीवों के मुक्त
निमित्त॥ इनकों रचकर बहुर परमपद विषे स्थित
भया॥ जैसे मंदराचल पर्वत क्षीरसमुद्र के निकं
पतें शांति होता है॥ तैसे शांतिरूप होकर स्थित भ
ओंकेक की या॥ इसी प्रकार अपणे शरीर कर्म मर्यादा ब्रह्माजी
करी॥ तिसी प्रकार नेतके संस्कार पर्यंत पडा चाडा
कर्ती है॥ कुलालके चक्रवत नेतके अनुसार विचु
रता है॥ अरु आप ब्रह्माजी किसी जगतके पदार्थों

विषे आसक्त नहीं ॥ सर्व पदार्थों विषे सम बुधि है ॥
अरु पूर्ण चंद्रमा की न्याई स्थित है ॥ मुक्ति रूप है
कबहूं सर्व कलनां तें रहित होइ रहती है ॥ कबहूं
अपणी इछा कर जगत भ्रम को रचती है ॥ उसको
जगत के रचणे अरु सागणे विषे समता है ॥ सर्व
अवस्था विषे तुल्य है ॥ हे रामजी मैं तुज कों ब्रह्मा जी
की स्थित कही है ॥ सो उह शुध चैतंन्य निरूप है ॥ सो अ
नेक बार स्रिष्टि के आदि विषे चित्त कला ब्रह्मा रू
प होकर फुरी है ॥ जगत कौं रचती भई है ॥ बहुड़ ब्र
ह्म तत्व विषे लीन होती है ॥ ॥ इति स्थित प्रकर
णे कमलजा व्यवहारो नाम सर्गः ॥ ५६ ॥ श्री
वसिष्ठोवाच ॥ हे महाबाहु रामजी इस प्रकार ब्र
ह्मा जी निर्मल पद विषे स्थित होकर संसार को उ
त्पत करती है ॥ संसार रूपी कूप विषे जीव घटीयं
त्र की न्याई पड़े भ्रमते हैं ॥ जीव रूपी टिंडा हैं ॥ तृ
ष्णा रूपी जेवड़े साथ बांधे हूए हैं ॥ कबहूं अधं कों
जाते हैं ॥ कबहूं ऊर्ध कों जाते हैं ॥ जब वासना रू
पी रसड़ी टूट पड़ती है ॥ तब बहुड़ ब्रह्म तत्व विषे
लीन हो जाते हैं ॥ ब्रह्म सत्ता तें सब जीव उपजे हैं ॥ ब
हुड़ ब्रह्म सत्ता विषे लीन हो जाते हैं ॥ जैसे समुद्र सों
तरंग उपजते हैं ॥ बहुड़ तिसी विषे लीन हो जाते हैं
सो ब्रह्मपद आदि अंत तें रहित है ॥ तिस सों जीव उ
पज कर तिसी विषे लीन होते हैं ॥ हे रामजी जो संसा
र विषे भोगों कों भोगते हैं ॥ सो वही अपदा कों प्राप्त
होते हैं ॥ बहुड़ बहुड़ जन्मते मरते हैं ॥ हे रामजी तु
म उत्तम पुरूष हो ॥ ज्ञानवानों के मार्ग चलो ॥ जो मा
र्ग परम पावन अपदा तें रहित शुद्ध निरूप है ॥ तिस
के अनुसार चलो ॥ जैसे खेद तें रहित विचारवान
विचरते हैं ॥ तैसे विचरो ॥ जिस क्रम कर राजस तें सा

72

त्तिकी होते हैं॥ सो सुण॥ प्रथम आर्जव भाव कों प्राप्त
होवणा॥ अर्थ इह जो यथा शास्त्र व्यवहार विषे
विचरणा॥ तिस व्यवहार कर जब अंतःकरण शु
ध होता है॥ तब संतों का संग तब करणा॥ अरु सत
शास्त्रों कों विचारणा॥ अरु संसार के पदार्थों तें
रहित होवणा॥ सदा पदार्थों तें चित्त उपशाम रहे
पदार्थों के होणे अनहोणे विषे चित्त सम भाव र
हे॥ सो चित्तों का विषे शांति रूप हैं॥ अरु जिस कों
जगत द्वैत रूप सत न दिखाई देता है॥ सो असम्यक दृ
ष्टी है॥ सो राग द्वेष विषे पडे जलते हैं॥ अरु जो स
म्यक ज्ञानवान हैं॥ अरु शास्त्रों कों विचारते हैं॥
जो मैं कौन हों॥ अरु इह विस्तृत संसार क्या है॥ न
लीप्रकार पुरुष प्रयत्न सों विचारणा॥ अध्यात्म
शास्त्रों कों तिस अनुसार चलणा॥ जिस उत्तम प
द विषे ज्ञानवान स्थित हैं॥ महाउदार शीतल चित्त
तिस के मार्ग विषे चलणा सो मोक्ष दायक हैं॥ हे
रामजी जो देहादिकों विषे अहंकार करते हैं॥ सो ज
न्म मरण कों पावते हैं॥ तिनों मूर्खों की संगत नही
करणी॥ तिन की संगत परम अपदा का कारण है
अरु तूं परम तत्व विषे स्थित होवो॥ जैसे मृत्तिका
विषे वासन स्थित हैं॥ तैसे सर्व भूतों विषे चेतन स
त्ता स्थित है॥ तिस विषे जन्म मरण अज्ञान कर के
भासते हैं॥ वास्तव तें न जन्म है॥ न मरण है॥ एक आ
त्म तत्व ज्यूं का त्यूं अपणे आप विषे स्थित है॥ ति
स विषे स्थित होवो॥ ॥ इति स्थितप्रकरणे म
हाविचारो नाम सर्गः॥ ५८ ॥ श्रीवसिष्ठोवा
च॥ हे रामजी बुद्धिवान पुरुष जो होवे॥ सो सत शा
स्त्रों को विचारे॥ अरु संतजनों के आचार ग्रहण क
रे॥ जो उह दुःखों का नाश कर्ता ज्ञान रूप हैं॥ संतजन जो

कौ

विरक्तात्मा हैं॥ तिनकी संगत कर परमपदकी प्राप्त हो
ती है॥ हे रामजी जो पुरुष सत्शास्त्रों को विचारणे
हारा है॥ सो ज्ञानका पात्र है॥ अरु उदारात्मा है॥ बुधि
वानों के जो गुण हैं॥ तिनका उह समुद्र है॥ तांते तुम
भी पुरुष प्रयत्न करो॥ निर्मल दृष्ट तुमको भी प्राप्त हो
वेगी॥ जैसे मेघों के नाश हूए सरित काल का आका
श निर्मल होता है॥ तैसे संसार की भावना तें मुक्त हो
कर चेतन्य संवित विषे स्थित होवो॥ तब अहं मम आ
दिक जो कलना है॥ तिनतें मुक्ति होवो॥ इन विषे संसे
कछु नहीं॥ हे रामजी तेरा जो उतम अनुभवरूप है॥
तिस विषे स्थित होवे॥ तब मुक्तिरूप होवोगे॥ और को
उ जो इस वृत्त विषे वर्त्तेगा॥ सो पुरुष भी संसार समुद्र
तें तर जावेगा॥ अपने अनुभवरूप बैठे कर॥ तुमा
रे तुल्य जिसकी बुधि होवेगी॥ सो संतजनों के संग क
र उह भी मुक्ति को प्राप्त होवेगा॥ जैसे पूर्णमासी का चं
द्रमा कांति करि शोभता है॥ तैसे उह पुरुष शोभता है
अरु तुम तो अशोक दिशा को प्राप्त भए हो॥ जब लग
देह है॥ तब लग राग द्वेष तें रहित होकर विचरो॥
यथा शास्त्र आचार है॥ सो करो॥ अंतर तें इच्छा को
त्याग कर परम शीतलता को प्राप्त होवो॥ हे रामजी इ
न सात्विक अरु राजस तें जो इतर जीव तामस हैं॥ ति
नका विचार ईहां नहीं करणा॥ उह मूर्ख जिद्द हैं॥
जो मैं तुझ को सात्विकी बुधिवान कहे हैं॥ जिनका अं
त का जन्म हूया है॥ तिनकी संगत करणेवाले भी उ
त्तम गति को प्राप्त होते हैं॥ उह भी अपने विचार विवे
क द्वारा शांति पद को प्राप्त होते हैं॥ इस पुरुष के अं
तर अनुभव चिंतामणि है॥ तिस कारण कर के अप
णा उधार करो॥ पुरुष प्रयत्न कर कै॥ इह पुरुष बडे
गुणों को प्राप्त होता है॥ आगे जन्म मरण को नहीं पाव

ता॥ हे रामजी तुम वडे गुण कर संपन्न हो॥ धीर्य अरु
उत्तम वैराग्य दृढ बुधि कर जीवन्मुक्ति होवैंगा॥ अर
जो कोऊ जीव तुमारे कर्म कों ग्रहण करेगा॥ सो भी मु
क्त होवैगा॥ तुम तो जीवन्मुक्ति भए हो॥ ॥ ॥

॥ इति स्थित प्रकरणे महारामायणे स्थित प्र
करण समाप्तं नाम सर्गः॥ ५९॥ ॐम् ॐम्

नाम रूप मृगजल सम ने कां कों करों प्रणाम
मेरी भुज कों वंदना सोहं आतम राम १ ॐम्

॥ श्री सच्चिदानंद गुरुवे नमः॥

ॐम् सतगुरु प्रसाद उपशम प्रकरण लिख्य
ते॥ बाल्मीकोवाच॥ हे भारद्वाज स्थित प्रकर
ण के अनंतर उपशम प्रकरण श्रवण कर॥ जिस
के श्रवण करते तें निर्वाण ता कों प्राप्त होवैंगा॥ जब
इस प्रकार वसिष्ट जी कहा॥ तब सर्व सभा प्रसन्न
ता कों प्राप्त भई॥ अरु वसिष्ट जी के वचन कैसे हैं॥
जो परमानंद के देने हारे हैं॥ असे पावन वचन श्र
वण करकैं सभ श्रोते मौन हो गए॥ राजा दशरथ स
र्व सभा विचार के समुद्र विषे मग्न भए॥ अरु राम
जी भी वडे विगास कों प्राप्त भए॥ जैसे सूर्य के उदे
हूए तम नष्ट होता है॥ अरु प्रकाश उदे होता है॥ तैं
से अज्ञान रूपी तम नष्ट हूया॥ अरु ज्ञान रूप प्रका
श उदे हूया॥ जैसे मेघ की वर्षा कर मोर प्रसन्न हो
ते हैं॥ तैसे सर्व सभा स्वरूप के ज्ञान कर प्रसन्नता
कों प्राप्त भई॥ जैसे चंद्रमा की निर्मल कला प्रकाश
ती यां हैं॥ तैसे आत्म कला प्रकाशती भई॥ लछमण
जी तें आदि जो रुषि मुनि ब्राह्मण में श्रेष्ट हैं ल
ग थे॥ सो सभ विगास कों पावते भए॥ मध्यान्ह का

समाहूआ ॥ बाजेबाजणेलागे ॥ बडाआश्चर्यहूआ ॥ तिनआ
श्चर्यकरमुनीश्वरकाआश्चर्यआछादयागया ॥ तबवशि
ष्टजीतुष्णीहोरहा ॥ एकमहूर्त्तपर्यंतउहआश्चर्यहोता
रहा ॥ तबवसिष्टजीरामजीकोंकहतभया ॥ जोकुछ
कहणाथा ॥ सोकहाहे ॥ बहुडजोकछुकहणाहे ॥ सो
काल्हकहेंगा ॥ हमभीजातेहें ॥ क्रियाआदिककर्म
करणेहें ॥ अरतुमभीउठो ॥ स्नानदानदेवअर्चनाआ [पूजा]
दिककर्मकरो ॥ इसप्रकारकहिकरमुनीश्वरउठख
डाहूआ ॥ राजादशरथभीउठकरप्रथमवसिष्टजीकों
प्रणामकीया ॥ बहुडवामदेवविश्वामित्रऋषीश्वर
मुनीश्वरोंकोंनमस्कारकीया ॥ सर्वसभापरस्परनम
स्कारकरकेअपणेअपणेस्थानोंपरगए ॥ वसिष्टजी
विश्वामित्रकोंअपणेस्थानकोंलेगए ॥ रामजीतेआ
दिलेजोराजेदशरथकेपुत्रथे ॥ सोअपणेस्थानकों
गए ॥ सर्वसभावसिष्टजीकेवचनोंकोंविचारतेचले
जावें ॥ ॥इतिउपशामप्रकरणेपूर्वसर्गवर्णनं
नामसर्गः ॥ १ ॥ वाल्मीकेउवाच ॥ हेभारद्वा
जइसप्रकारसभेअपणेअपणेस्थानोंकोंजाकर
यथाउचितक्रियाकोंवर्त्तनेलगे ॥ अरुराजेनेंस्नान
करकेंदेवतोंकीपूजाकरी ॥ अरुनानाप्रकारकेदा
नदीए ॥ अरुब्राह्मणोंकोंभोजनकराए ॥ दक्षणाद
ई ॥ अरुआपभीभोजनकीया ॥ अपणेसनबंधीयों
सहित ॥ अरुरात्रिकोंसभनोंनेंसयनकीया ॥ अरुरा
मजीवसिष्टजीकेवचनोंकोंविचारतेहूएरात्रिव्य
तीतकरी ॥ जोमुनीश्वरक्यावचनकहेहें ॥ नानाप्रका
रकेजीवकहांतेंआवतेहें ॥ अरुकहांजातेहें ॥ मन
कारूपक्याहे ॥ अरुकैसेनिवर्त्तहोताहे ॥ इहमाया
कहांतेउपजीहे ॥ अरुकैसेनिवर्त्तहोतीहे ॥ अरुनि
वर्त्तहूएतेंविसेखताक्याहोतीहे ॥ अरुनष्टताकि

सकी होती है ॥ अरु अनंतरूप आत्मा सो तिस विषे अ
हं उलेखका होणा कैसे है ॥ अरु मनके क्षय होते वि
षे मुनीश्वर क्या कहा है ॥ अरु इंद्रीयों के जीतणे विषे
मुनीश्वर क्या कहा है ॥ अरु आत्मा के पावणे की क्या
युक्ति कही है ॥ जीव चित्त मन माया सभ एक रूप हैं ॥ सं
साररूपी विस्तार इन हीनें रचा है ॥ सो सभ असतरूप
हैं ॥ तिनोंनें संपूर्ण संसार कों बांध्या है ॥ तिस कर सभ
दुःख पडे पावते हैं ॥ तिस दुःख के नमित्त कों न औष
धक हा है ॥ आत्मपद की प्राप्त अरु दुःखों का नाश
मन जीतणे कर होता है ॥ वेद अरु शास्त्रों का प्रयोज
न तीए ही है ॥ गुरों के वचनों कर भ्रम नष्ट होता है ॥
जैसे बालिक कों वैताल त्रासता है ॥ तिस भ्रम कों बु
धिवान दूर करते हैं ॥ तैसे मन के भ्रम कों गुरु दूर क
रते हैं ॥ उह कौन समा होवेगा ॥ जो मैं परम शांति कों प्रा
प्त होवोंगा ॥ अरु संसार भ्रम नष्ट हो जावेगा ॥ अरु
मेरी बुधि आत्मपद कों पाकर कब विश्राम होवे
गी ॥ अरु नाना प्रकार के संसार अरंभ मेरे शांति हो
वेंगे ॥ कब मैं आदि अंत तें रहित आत्मपद विषे वि
श्राम करोंगा ॥ मन मेरा पावन रूप कब होवेगा ॥ अ
रु स्वछ शीतल शांति पद विषे कब आरूढ होवों
गा ॥ अरु कब कों मल कलनों को त्याग कर आत्म
पद विषे स्थित होवोंगा ॥ कब मैं संकल्प विकल्प तें
रहित मन कों देखोंगा ॥ शांति रूप अरु उपशम प
दवी कों प्राप्त होवोंगा ॥ अज्ञान रूप ताप कब मेरा
नष्ट होवेगा ॥ कब संसार भ्रम कों त्याग कर प्रका
शवान होवोंगा ॥ कब मैं लीला कर इंद्रीयों के दुः
ख तें तरों ॥ अरु अपणे स्वरूप विषे स्थित होवोंगा ॥
अहं इदं सोऽहं इत्यादिक मिथ्या भ्रम कों तरोंगा ॥ जि
सुख स पद के पाणे तें इंद्रादिकों का ईश्वर्य तीच भासता

हे॥ तिस आत्मपदकों प्राप्त होवोंगा॥ वीतराग दृष्ट हम
कों मुनीश्वरनें कही है॥ जिस पदकों पाकर मन विश्रा
म वान होता है॥ तिस पदकों कब पावोंगा॥ हे बुधि मु
नीश्वरके वचनों कर हमारी आपदा नाश होवैगी॥ ह
म परमपदकों प्राप्त होवेंगे॥ हे बुधि तूं जिउ का तिउ
स्मरण कर जो वसिष्टजीका कहा है॥ मैं वैराग प्रक
र्ण कहा है॥ तिसके अनंतर मुमुक्ष प्रकर्ण कहा है॥
बहुड उत्पत प्रकर्ण कहा है॥ बहुड स्थित प्रकर्ण क
हा है॥ नाना प्रकारों के दृष्टांतों कर निरूपण कीया
है॥ जो अनेक प्रकार कहा भी बुधि विषे निश्चे न हो
वे॥ तो उह श्रवण कीया भी निफल होता है॥ जैसे सरि
त काल का मेघ वर्षा भी दृष्ट आवता है॥ अरु वर्षा तें
रहित निफल है॥ ॥इति उपशम प्रकरणे उ
पदेशानुसार वर्ननं नाम सर्गः॥ २ ॥ वाल्मी
कोवाच॥ हे भारद्वाज वही उदार चिंता सहित राम
जी रात्रिकों व्यतीत कर्त्ते भया॥ तब रामजी उठे॥ भा
ईयों सहित स्नान कर के प्रातह काल के संध्यादिक
कर्म कर्त्ते भया॥ बहुड कछुक मित्रों सहित वसि
ष्टजी के आश्रम कों गए॥ आगे वसिष्टजी समाधि वि
षे स्थित थे॥ आत्मपरायण आत्मा ही विषे स्थित भू
त है॥ ऐसे वसिष्टजी कों रामजी देखकर दूरते नम्री
भूत होकर चर्णवंदना कर्त्ते भए॥ प्रणाम करके व
सिष्टजी के आगें सन्मुख हाथ जोडके खडे हूए॥ ज
ब दिशा का तम नष्ट भया॥ तब राजा दशरथ अरु रा
जपुत्र ऋषि ब्राह्मण सब वसिष्टजी के गृह विषे
आए॥ जैसे ब्रह्मलोक विषे देवते आवें॥ तैसे वसि
ष्टजी का आश्रम जनों कर भर रहा॥ चार प्रकार की
सैना आई॥ तब वसिष्टजी समाधि तें उतरे॥ सर्व

75 लोकप्रणामकर्तेभए॥ तिनसमस्योंकेप्रणामग्रहण
कीये॥ बहुरउपरांतविश्वामित्रकाहाथग्रहणकीया
समस्योंकेआगेचले॥ बाह्यनिकसकररथपरआ
रूढहूए॥ जैसेकमलजाब्रह्माजीपद्मविषेबैठे॥ तै
सेरथपरबैठे॥ बडीसैनासंयुक्तराजाकेगृहकोच
ले॥ जैसेब्रह्माजीदेवतोंसाथइंद्रकेगृहमोंआवे
तैसेवसिष्टजीराजाकेगृहमोंआए॥ राजाआगेलेने
आया॥ राजादशरथअरुविपश्चितजोबुधिवान
हैंसोआए॥ नगरकेअधिष्ठाताआए॥ यथायोग्यस
मनोंकीदृष्टवसिष्टजीकीओरआई॥ बंदीजनभाट
स्तुतकरें॥ तबसूर्यभगवानआनउदेहूया॥ किरणों
जैसेरविकेमार्गआनस्थितभई॥ अरुराजऋषिसि
धविद्याधरमानुषआए॥ वसिष्टजीकोप्रणामकर्ते
भए॥ यथायोग्यअपनेअपनेस्थानोंपरबैठगए॥
पुष्पआए॥ बहुतसुगंधखुली॥ अगरचंदनादिक
धूपदुखाए॥ सबस्थानसुगंधकरभररहे॥ ॥इ
तिउपशमप्रकरणेमोक्षउपाएसभास्थानवर्ननं
नामसर्गः॥ २॥ बालमीकोवाच॥ हेभारद्वाजमेघ
कीन्याईबडेगंभीरवचनबोधकेलीयेजिसविषे
सुंदरपदहैं॥ ऐसेवचनराजादशरथमुनोंविषेश्रे
ष्टवसिष्टजीकोकहतभए॥ दशरथोवाच॥ का
लकादिजोदिनव्यतीतहूयेहैं॥ तिसविषेतुमहमको
कहाथा॥ सोहेमुनीश्वरतुमअनिंदितवचनकहेहैं
सोतुमारेवचनरूपअमृतकीवर्षाकरहमआनंद
वानहूएहैं॥ तुमारेनिर्मलवचनोंकररिदेकातमदू
रभयाहै॥ अरुशीतलचितहूएहैं॥ अरतुमारेवच
नआत्मरूपीरतनकोदिखावणेहारेसूर्यहैं॥ तथा
रिदेकीनिवर्तकरणेकोचंद्रमाहैं॥ अरुवचनतुमा
रेअज्ञानकोनाशकर्णहारेहैं॥ तथाअरुजोनादि

कजो विकार हैं॥ सो तुमारी वाणी कर नष्ट होते हैं॥
अरु निहपाप भए हैं॥ अरु तुमो हमको परम अं
जन दीया है॥ तिसकर हम सचक्षु भए हैं॥ जैसे ज
न्म का अंधा सचक्षु होवे॥ तैसे हम सचक्षु हूए हैं॥
संसार की वासनारूपी कुहीड निवर्त्त हूई है॥ जैं
से सरितकाल विषे कुहीड नष्ट हो जाती है॥ तैसे उ
दार बुधि की वाणी आनंददायक है॥ वाल्मीको
वाच॥ हे नारद्वाज ऐसे वचन वसिष्टजीको कहि
कर रामजी की ओर मुख कीया॥ अरु कहा॥ जो का
ल संतों की संगत विषे व्यतीत होता है॥ सो सफल
है॥ अरु जो काल संतों की संगत विनां व्यतीत होता
है॥ सो व्यर्थ है॥ हे कमलनयन रामजी वसिष्टमुनि
को तुम बहूड जगावो॥ अर्थ इह जो कछु पूछो॥ इह
हमारे कल्याणकर्त्ती हैं॥ इस प्रकार जब राजे कहा
तब रामजी की ओर मुख करके उदारात्मा वसिष्ट
जी बोलते भए॥ श्रीवसिष्टोवाच॥ हे रामजी र
घुकुल आकाश के चंद्रमा काल्हि मैं जो वचन क
हे हैं॥ सो तुमको स्मरण आवते हैं किंउ॥ हे महाबु
धिवान महाबाहो अतानरूपी शत्रु के नाशकर्त्ती
सात्विक राजस तामस गुणों के भेद की उत्पत विचि
त्ररूप कही थी॥ सो तुमको चित्त है किंउ॥ जो सर्वनी
तु ही है॥ असर्वनी तु ही है॥ सतनी तु ही है॥ असतनी
तु ही है॥ सदा शूंति (प्रकाशमान) उदित परमात्मदेव का विस्तृत
रूप है॥ सो स्मरण है किंउ॥ जैसे ईश्वर तें विश्व उदे
भई है॥ तैसे स्मरण है किंउ॥ इह जो देववाणी है॥
तिसका पात्र शुध है॥ अशुध नहीं॥ हे सत बुधि रा
मजी अविद्या जो विस्तृत नासती है॥ तिसका रूप
स्मरण है किंउ॥ अर्थ इह जो सनुरूप है॥ सम्यक द
र्शन तें रहती नहीं॥ जीव रूप है॥ इह जो लवण
के विचार द्वारा मैं प्रतिपादन कीया है॥ सो भली

प्रकारस्मरणहै किंउ॥ वाक्योंकासमूहमैंकहाथा सोतुमविचारकेरिदेविषेधारताहै किंउ॥ जबबारंबारइसकाविचारकर्त्ताहै। अरुतातपर्यरिदेविषेधारताहै॥ तबवहफलप्राप्तहोताहै॥ हेरामजीतुमतोइनवचनोंकेपात्रहो। इहवचनपरमउदारहैं। सोपात्रविषेपाएसफलीभूतहोतेहैं॥ जैसेउतमबांसविषेमोतीसफलीभूतहोतेहैं॥ तिसविषेमोतीउत्पनहोतेहैं॥ तैसेजोपुरुषउदारविवेकीहैं॥ तिसकेचित्तविषेइहवचनफलीभूतहोतेहैं॥ **वाल्मीकोवाच॥** हेभारद्वाजजबइसप्रकारकमलासनब्रह्माजीकेपुत्रवसिष्टजीकहा॥ तबमहाउदारबानगंभीररामजीअबकाशपाइकरबोलतभए॥ **श्रीरामोवाच॥** हेभगवनसर्वधर्मोंकेवेता॥ जोतुमभुजकोंपरमउदारवचनकहेहैं॥ सोतिनकरमैंबोधवानहूयाहों॥ अरुजैसेतुमकहतेहोअब॥ तैसेहीसतहैअन्यथानहीं॥ हेभगवनरात्रिजोमैंनिद्रातैंरहितभयाहों॥ तुमारेवाक्योंकेविचारविषेचितवना करतरात्रिब्यतीतकरीहै॥ अरुतुमतोरिदेवेतमकोंनाशकर्त्तापृथिवीविषेसूर्यविचरतेहो॥ हेभगवनतुमब्यतीतदिनविषेआनंददायकप्रकाशरूपअमृतकिर्णोंपसारीथी॥ सोसनमैंअपनेरिदेविषेधारलीनीहै॥ कैसेवचनतुमारेरमणीकअरुपावनहैं॥ जैसेसमुद्रसोंनानाप्रकारकेरत्ननिकसतेहैं॥ तैसेतुमारेवचनकल्याणरूपबोधवहैं॥ अर्थइहजोसनकेसहाइकहैं॥ रिदेकोंप्यारेलागतेहैं॥ अरुआनंदकाकारणरूपहै॥ उहकवनहै॥ जोतुमारेअंगकोंसिरपरनधारे॥ सर्वअपनेकल्याणकाकारणजानतेहैं॥ हेमुनीश्वरतुमारेवचनोंकरसंशयमेरेनष्टभए

हें ॥ जैसे सरितकाल विषे मेघ कुहीड नष्ट हो जाते हैं निर्मल आकाश भासता है ॥ तैसे मैं संसे तें रहित निर्मल भया हों ॥ इह संसार आपात रमणीय भासता है जब लग पदार्थों का अभाव नहीं होता ॥ तब लग सुखदाइक भासते हैं ॥ इंद्रीयों तें जब विषय पदार्थों का अभाव होता है ॥ तब दुखदायक हो जाते हैं अरु तुमारे वचन कल्याणरूप हैं ॥ अरु अनुत्तम फल कों प्राप्त करते हैं ॥ सर्व शास्त्रों विबेक जलरूपी जल है सो तिनका इह समुद्र हैं ॥ अब मैं नि हपाप कृया हों ॥ मुज कों उपदेश करो ॥ मैं जिसका अधिकारी होवों ॥ ॥ श्रीवसिष्टोवाच ॥ हे सुंदर मूर्ति रामजी जो उत्तम सिधांत विषे सुंदर सिधांत है ॥ सो उपशम प्रकर्ण है ॥ सो श्रवण कर ॥ तेरे कल्याण के निमित्त मैं कहता हों ॥ इह संसार महा दीर्घ दुख है ॥ इन कों राजसी तामसी जीव धारते हैं ॥ जैसे दंड थंभे के आश्रे ग्रह होता है तैसे राजसी तामसी जीवों के आश्रे संसार भ्रम है ॥ जो तुम सार खेश्रणी त्रिविध स्थित हैं ॥ सो सरम हैं ॥ जो वैराग विवेक कर संपन्न हैं ॥ सो संसार भ्रम कों विनायत नहीं त्याग देते हैं ॥ जो बुधिवान सात्विक पुरुष जाग्य हैं ॥ अरु राजस सात्विकी हैं ॥ सो भी उत्तम हैं ॥ जो जगत के पूर्व अपर स्वरूप कों विचार देखते हैं ॥ सो भी उत्तम हैं ॥ सत शास्त्रों का विचार संतजनों का संग तिन के पूर्व आचार विषे विचरते हैं ॥ तिस कर ईश्वर जो परमात्मा है ॥ तिस के देखणे की बुधि उपजती है हे रामजी जब लग आपणे वीचार कर के आपणे स्वरूप कों नहीं पावता ॥ सो शास्त्रों के श्रवण कर भी नहीं पा सकता ॥ जो उत्तम कुल निहपाप रूप राजस सात्विकी जीव हैं ॥ तिन कों विचार उपजता है ॥ तिन विचार कर के आपणे आप कों प्राप्त होते हैं ॥ परमानंद कों पावते हैं ॥ तां तें तुम इस संसार कों विचारो जो

सतका है ॥ अरु असतका है ॥ ऐसे विचारकर असत
तका त्याग करो ॥ अरु सतकों आश्रय करो ॥ जो पदा
र्थ आदि विषे न होवे ॥ अरु अंत विषे भी न रहे ॥ सो
असत जाणीये ॥ जो आदि अंत एकरस सत स्वरू
प है ॥ तिसका ग्रहण करीये ॥ जो आदि अंत विषे ना
शरूप है ॥ तिस विषे प्रीत मूर्ख करते हैं ॥ तिनका
कर्त्तव्य सब मन कर होता है ॥ सो मन सम्यक ज्ञान
के उदे हूए निर्वाण हो जाता है ॥ सब संसार मन का
रूप है ॥ अरु आत्मसत्ता सदा जिउ की तिउं अपणे
आप विषे स्थित है ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे ब्राह्म
ण जो कछु तुम कहते हो ॥ सो मैं जाण्या है ॥ जो इह सं
सार सब मन की भावना मात्र है ॥ जरा मरण विका
र सब मन ही विषे हैं ॥ तिनका उपाव तुम निश्चै क
र के कहो ॥ जिस कर इसकों तर जावों ॥ तुम सब रघु
वंशीयों की कुल के अज्ञान तम नष्ट करणे कों स
मर्थ हो ॥ काहे तें जो तुम ज्ञानरूपी सूर्य हो ॥ श्रीव
सिष्टोवाच ॥ हे रामजी जीवकों इह कर्त्तव्य है ॥
जो शास्त्रों कर विचारपूर्वक वैराग्य कहा है ॥ अरु
संतजनों के संग कर मन कों निर्मल करणा ॥ ज
ब मन कों निर्मल करेगा ॥ तब आर्जव भाव संयु
क्त होवेगा ॥ बहुड़ इसकों वैराग्य प्राप्त होवेगा ॥ त
ब ज्ञानवान जो गुरु है ॥ तिनके निकट जावेगा ॥
तब उह उपदेश करेंगे ॥ ध्यान आदिक के क्रम
कर के परमपद कों प्राप्त होवेगा ॥ जब इसकों नि
र्मल विचार उपजता है ॥ तब इह अपणे आपक
र अपणे आपकों देखता है ॥ जैसे पूर्णमासी का
चंद्रमा अपणे प्रतिबिंब कों देखे ॥ तैसे उह देख
ता है ॥ जब लग विचाररूप किनारे का आश्रय न
हीं लीया ॥ तब लग इह संसाररूपि बेतरणी की न्या
ई भ्रमता है ॥ जब विचार कर कै वस्तु कों जिउं का

तिंउ जानता है ॥ तब सर्व दुख मन सों नष्ट होजाते हैं ॥
जैसे सोम जलके नीचे रेत जा गहि रती है ॥ तैसे आ
धि व्याधि पीडा दूर होजाती है ॥ जब विचार करके दे
हादिक सों आपकों भिन्न जाने ॥ तब मोह नष्ट हो
जाता है ॥ तब संसे तें रहित शुध अविनाशी आत्म
पदकों प्राप्त होता है ॥ सो विचार कीये तें मोह निवर्त
होजाता है ॥ जो बुधिवान कोई पुरुष होवे ॥ अरु उ
त्तम पदका प्राप्त उसकों नहीं हूई ॥ तब मोहकों पा
वता है ॥ तां ते जब लग जीव आत्म पदकों नहीं जा
नता ॥ तब लग अनेक दुःखों का भागी होता है ॥ ज
ब जिउ कातिंउ जाणता है ॥ तब शुध आत्म तत्व
कों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी देह साथ मिथ्या कूया
आत्मा भासता है ॥ पर मिथ्या कदाचित नहीं ॥ तां तें
अपणे स्वरूप विषे स्थित होवो ॥ निर्मल स्वरूप जो
आत्मा है ॥ सो रंचक मात्र भी देह साथ सनबंध
नही राखता ॥ जैसे स्वर्ण चिकड विषे मिथ्या भास
ता है ॥ तो भी स्वर्ण कों कछु चिकड का लेप नही ला
गता ॥ तैसे जीव कों देह का संयोग कछु नहीं ॥ निर्ले
प ही है ॥ आत्मा भिन्न है ॥ देह भिन्न है ॥ जैसे जल अ
रु कमल भिन्न रहते हैं ॥ मैं ऊची भुजा कर पुकार
ता हों ॥ मेरा कहा सुनता कोउ नहीं ॥ संकल्प तें रहि
त परम कल्याण है ॥ एही भावना कर ॥ जब लग
मन जड धर्मी है ॥ अर्थ इह ॥ जो विषय भोगों की अभि
ल्याकर्ता है ॥ अरु आत्म तत्व कों विसारण कीया
है ॥ तब लग मूर्खरूप है ॥ जब लग आत्मा का प्र
माद है ॥ तब लग इसके रिदे सों संसार भ्रम दूर न
हीं होता ॥ चंद्रमा उदे होवे ॥ अरु बादशा सूर्य उदे
होवें ॥ तो भी रिदे का तम अल्प मात्र भी दूर नहीं हो
ता ॥ जब लग आत्म बोध नहीं ॥ अरु मन भोगों वि
षे तदगत है ॥ तब लग संसार समुद्र विषे बहता

जावेगा ॥ अरु दुखों का अंत न आवेगा ॥ अरु जब स
म्यक ज्ञान कर निश्चयात्मक बोध होता है ॥ तब अ
लेप भासता है ॥ जैसे आकाश विषे धूड भासती है
पर आकाश कौं धूड का संबंध कछु नहीं ॥ तैसे आ
त्मा देहादिकों विषे अलेप भासता है ॥ जैसे जल वि
षे कमल भासता है ॥ पर कमल जल तें अलेप रह
ता है ॥ तैसे आत्मा देह साथ मिल्या हूया भासता है ॥
पर देह साथ आत्मा का संबंध कछु नहीं ॥ देह ज
ड है ॥ आत्मा चैतन्य रूप है ॥ तां तें निर्लेप है ॥ सुख दुः
ख का अभिमान आत्मा विषे भासता है ॥ सो भ्रांत
मात्र असत रूप है ॥ वस्तु तें कछु नहीं ॥ जैसे आका
श विषे दूसरा चंद्रमा असत रूप है ॥ तैसे आत्मा वि
षे सुख दुख असत रूप हैं ॥ सुख दुख आदिक देह
कौं होते हैं ॥ सो देह अज्ञान कर के कल्पित है ॥ अरु देह
के नष्ट हूआ आत्मा नष्ट नहीं होता ॥ अरु इह जो विस्त
त रूप जगत भासता है ॥ सो सभ माया मात्र है ॥ जैसे
जल विषे तरंग अरु आकाश विषे तिरवरे भासते
हैं ॥ तैसे आत्मा विषे जगत भासता है ॥ सो है नहीं ॥ स
र्व आत्मा ही है ॥ न एक है ॥ न दोइ है ॥ सभ अभास मा
त्र मिथ्या है ॥ जैसे मणि का प्रकाश दृष्ट आवता है
तैसे आत्मा का प्रकाश जगत दृष्ट आवता है ॥ सो स
भ आत्म रूप है ॥ मैं अवर हों ॥ इह अवर है ॥ इस भ्रांत
कौं त्याग कर विस्तृत रूप जो आत्म सत्ता है ॥ तिस वि
षे स्थित होवो ॥ तिस विषे इतर कलना कोऊ नहीं ॥ जै
से जल विषे तरंग जल रूप ही हैं ॥ इतर कछु नहीं ॥
तैसे सर्व रूप आत्मा है ॥ इतर कछु नहीं ॥ जैसे बर
फ विषे अग्नि नहीं होती ॥ तैसे आत्मा विषे द्वैत ज
गत नहीं होता ॥ तां तें अपणे आप स्वरूप की भाव
ना करो ॥ जो मैं चिन्मात्र रूप हों ॥ जगत जाल भी सभ
मेरा ही स्वरूप है ॥ मैं ही विस्तृत रूप हूया हों ॥ जो क

छुहै ॥ सो सम परमात्मा ही है ॥ न शोक है ॥ न मोह है ॥ न
जन्म है ॥ न मरण है ॥ न देह है ॥ ऐसे जानकर विगत
ज्वर होवो ॥ हे राघव तुम निर्द्वंद्व हो ॥ नित्त शांति रूप
प्राप्त की रक्षा
हो ॥ निर्योगक्षेम आत्मवान विशोक होकर स्थित
अप्राप्त का जोगी करना
होवो ॥ यथा शास्त्र प्राप्त विषे निरसंकल्प होकर वि
चरो ॥ अरु आत्मदेव का सरीर आदि अंत तें रहित
अनंत रूप है ॥ तिसकी भावना करो ॥ हे राघव तुम अ
अपणे आपकर उदारात्मा हो ॥ जैसे पूर्णमासी का
चंद्रमा अपणे आपकर आनंदमान है ॥ तैसे तुम
अपणे आपकर आनंदमान हो ॥ इह जो प्रपंच रच
ना भासती है ॥ सो असत रूप है ॥ तुम तो ज्ञानवान हो
सम कलनां कों त्यागकर अपणे स्वरूप विषे इ स्थि
त होवो ॥ सर्वगुणों संयुक्त होकर संपूर्ण पृथिवी का
राज करो ॥ अरु प्रजा की पालना करो ॥ समदृष्टि कों
लीयें विचरो ॥ अरु अंतरतें निर्लेप रहो ॥ तुमकों न
त्याग साथ प्रयोजन है ॥ न ग्रहण साथ प्रयोजन है ॥
समभाव होकर राज विषे विचरो ॥ ॥ इति उपश
म प्रकरणे प्रथम उपदेशो नाम सर्गः ॥ ५ ॥ श्री
वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी सभ कार्यों कों कर्त्ता हू
या भी कछु नहीं कर्त्ता ॥ जिसकी वासना नष्ट भई है
सो पुरुष मुक्ति रूप है ॥ मेरे मत विषे इसकों बंधन
का कारण वासना है ॥ जिसकी वासना क्षय हूई है ॥
सो मुक्ति रूप है ॥ अरु जिसकी वासना पदार्थों विषे
बंधमान है ॥ तिसकों सुख कदाचित नहीं होता ॥ अ
रु शुभ कर्मों कर स्वर्ग सुख कों भोगते हैं ॥ सो बहुड
दुख कों पावते हैं ॥ वासना कर घटी यंत्र की न्यांई
पडे भ्रमते हैं ॥ अरु जो पुरुष आत्मवेत्ता हैं ॥ सो वा
सना रूप बंधन कों काटकर मन कों निर्मल आत्म
पद विषे जोडते हैं ॥ क्रम करके पूर्ण पद कों पावते

हैं जैसे शुक्लपक्ष का चंद्रमा क्रम करके पूर्णमासी
का होता है जैसे वर्षाकाल विषे कदुक वृक्ष की मंज
री बढ जाती है तैसे तिसकी सोभाग्यता लक्ष्मी बढ
जाती है हे रामजी जिसका जन्म इह अंतका होता है
तिस विषे निर्मल गुण आन प्रवेश करते हैं जैसे उ
त्तम बांस विषे मोती उपजते हैं तैसे राजस सात्विकी
विषे गुण उपजते हैं मैत्री समता मुदता शांतता आ
जेवता इह गुण प्रवेश करते हैं जैसे राजा के अंतरक्षे
ए अंगना प्रवेश करती हैं तैसे जिसको इह अंतका
जन्म है सो सर्व कार्यों को करता है पर तिस विषे राग
द्वेष तें रहित सदा सम भाव रहता है न तोषवान हो
ता है न शोकवान होता है जैसे सरित काल का आ
काश शुध होता है तैसे उह पुरुष राग द्वेष तें रहित
होता है शुध सम भाव विषे रहता है सुन गुणों सों
पूर्ण होकर गुरों के निकट जाता है तब उह विवेक
उसको उपदेश करते हैं तिस विवेक कर परम पाव
न पद विषे स्थित होता है हे रामजी जो विचार वैरा
ग्य कर संपन्न चित्त है सो देव आत्मा को देखता है
तिसको दुःख कोऊ स्पर्श नहीं करता तुम भी विचार
को आश्रय कर के मन को जगावो कैसा मन है मनन
जिसका रूप है जिस पुरुष को अंतका जन्म है सो म
न रूपी मृग को जगावता है प्रथम तो गुणों कर शांत
कर जगावता है जगाइ कर विचार कर जगत को
आत्म रूप देखता है और आत्म विचार कर अवि
द्या मल नष्ट होजाती है ॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे
क्रम उपदेशो नाम सर्गः ॥ ६ ॥ श्री वसिष्ठ उवा
च ॥ हे रामजी इह मैं तुज को क्रम कहा है सो सर्व
जीवों के समान है जब इह गुरों के निकट जावे औ
र उह इसको उपदेश करे तब एक जन्म कर भावें

बहुते जन्मोंकर सिधता मोक्ष कों पावता हे ॥ अरु इ
सतें अन्य हे ॥ सो सुण ॥ जैसे आकाशतें फल गिडे ॥ तैसे
इसकों ज्ञान प्राप्त होता हे ॥ इस ऊपर पूर्वला इतहा
स मैं तुजकों कहता हों सो सुण ॥ अथ कथा राजा
जनक की लिख्यते ॥ सर्व गुण अवगुणों कों उल
लरता हे ॥ हे रामजी सर्व आपदा जिस की निवर्त हूई
हे ॥ अरु सर्व संपदा उदित हूई हे ॥ ऐसा एक उदार
बुध विदेह नगर का राजा हूया हे ॥ बडा वीर्यवान ज
नक तिस का नाम ॥ जो अर्थी आवें तिन का अर्थ क
ल्पवृक्ष की न्याई पूर्ण करे ॥ अरु मित्र रूप जो कम
ल हैं ॥ तिस कों सूर्यवत प्रफुलित करे ॥ बांधव रूपी
पुष्पों को वसंत रुत ॥ अरु इस्त्रीयों कों कामदेव ॥ अ
रु दुष्ट रूपी तम का नाश कर्ता सूर्य ॥ मानों पृथवी
विषे विष्णुजी आन स्थित हूया हे ॥ ऐसा राजा जनक
एक काल मों लीला कर अपने बाग मों गमन कर्त
भया ॥ सो बाग फूल फल कर संयुक्त अरु पंखी श
ब्द करें ॥ तिस महा सुंदर बाग विषे राजा जनक प्रवे
श कर्त भया ॥ जैसे नंदन वन विषे इंद्र प्रवेश करे ॥
सो एक सालमल नाम वृक्ष था ॥ तहांतें गुप्त श्रवण
कीया ॥ जो अदृश्य सिधा गीत गावते हैं ॥ विरक्त चित
अरु नेत्र जिस के कमल की न्याई ॥ सो आत्म गीत क
उचार कर्ते हैं ॥ जिस गीत कर आत्मबोध कों प्राप्त
होवीये ॥ सो ई गीत गावते हैं ॥ तिस गीत कों राजा श्रव
ण कर्त भया ॥ एक सिध इस प्रकार बोलत भया ॥ द्र
ष्टा जो पुरुष हे ॥ अरु दृश्य जो जगत हे ॥ तिस द्रष्टा
अरु दृश्य के मिलाप विषे जो आनंद हे ॥ सो आनंद
आत्म तत्व का स्वरूप हे ॥ जिस आत्म आनंद के लव
कण तें सकल के आनंद उपजते हे ॥ तिस की हम उ
पासना कर्ते हैं ॥ द्वितीय सिधो वाच ॥ द्रष्टा दृश्य द
र्शन इस कों वासना सहित त्याग कर ॥ जो दर्शन इस

काप्रकाशरूपहै॥ जिसकेप्रकाशकरतीनोंप्रकाश
तेहैं॥ तिसआत्माकीहमउपासनाकर्तेहैं॥ जोनिरा
भासनिर्मलरूपहै॥ आभासअरुमननकेभावका
जोअभावकर्त्ताहै॥ दूसरीकलनाकाजिसविषेअ
भावहै॥ अरुअद्वैतरूपहै॥ तिसकीहमउपासनाक
र्तेहैं॥ आस्तिनास्तिदोनोंविषेप्रकाशताहै॥ अरु
सर्वसूर्यादिकोंकाप्रकाशकहै॥ तिसआत्माकीह
मउपासनाकर्तेहैं॥ जोईश्वरसहकारनिराकार
भयाहै॥ अर्थइह जोसकार जिसकेअंतविषेहै॥
सोअंततेंरहितअनंतशिवपरमात्माहै॥ सोईअ
नंतरूपआत्मासर्वजीवोंविषेस्थितहै॥ तिसकों
त्यागकरअवरगोडपावणेकायतनकर्तेहैं॥ सो
पुरुषकौस्तुभमणिकोंत्यागकरअवररत्नोंकी
वांछाकरतेहैं॥ सोजन्ममरणकोंपावतेहैं॥ हेराम
जीतुमभीतिसीअधिष्टानरूपपदविषेस्थितहो
वो॥ जोअनंतात्मासर्वविषेस्थितहै॥ तिसकरमन
इच्छासेंउपशमहोताहै॥ ॥इतिउपशमप्रक
र्णेसिधगीतावर्ननंनामसर्गः॥ ७ ॥श्रीवसिष्टो
वाच॥ हेरामजीइसप्रकारसिधोंकीगीताराजासु
णकरविषादकोंप्राप्तभया॥ जैसेकाइरविषाद
कोंप्राप्तहोताहैसंग्रामविषे॥ तैसेराजाविषादकों
प्राप्तभया॥ सेनासहितअपणेग्रहविषेआया॥ औ
रसभनोंकोंत्यागकरऊपरजरोखेविषेजाबैठा
अरुसंसारकीचंचलगतिकोंईधरउधरदेखणे
लागा॥ अरुविलापकर्णेलागा॥ जोमेंभीसंसार
कीचंचलदिशासाथबांधाहूयाहों॥ एतोसभजी
वजडरूपहैं॥ चैतन्यनहीं॥ जैसेऔरजीवजडरू
पहैं॥ तैसेमेंभीजडरूपहोरहाहों॥ कालजोहैसो
अंततेंरहितअनंतहै॥ तिसकेकिसीअंशविषेम
नुजीवणाहै॥ तिसजीवणेविषेमेंजोआस्थाबांध

रहा हों॥ तातें मुजको धिकार है॥ मैं अधम चेतन हों॥
अरु इह जो राजादिक हैं। सो तृण ने गुर हैं॥ इह जो
सुख हैं॥ सो सब दुःखरूप हैं॥ इन दुखों विना मैं नीकि
सा प्रकार स्थित होवों॥ जैसे महापुरुष बुधिवान स्थि
त होते हैं॥ तैसे मैं भी स्थित होवों। जो वस्तु उचित रमणी
क उदार अद्भुत मह है॥ सो सुख संसार विषे रंचक भी न
हीं॥ मेरी बुधि किंउ नष्ट भई है॥ अरु इह जो लोक हैं।
सो आवते जाते हैं॥ उदे अस्त होते हैं॥ जल तें तरं
गों की न्यांई सब पदार्थ तृण ने गुर हैं॥ जेते कछु सुष
दृष्ट आवते हैं॥ तिन विषे मैं क्या आस्था बांधी है॥ व
डा कष्ट है। मैं आत्मा हों॥ अरु नाश कों प्राप्त भया हों॥
जैसे बालिक पिछांव विषे वेताल मान कर भय कों
पावता है॥ तैसे मैं अहंकार कर जरा मरण कों पडा पा
वता हों। तातें इन साथ मुजकों क्या प्रयोजन है॥ संसार
के सुष विषरूप हैं॥ इन विषे आस्था करणी मिथ्या है
जो बडे बडे ऐश्वर्यवान पराक्रमी गुणवान हूए हैं। सो
सब मृत्यु भाव कों प्राप्त हूए हैं॥ केई ब्रह्मे के जगत तिन
की पंक्ती नाश होगई हैं॥ अनेक इंद्र नष्ट होगए हैं॥ जैं
से जल विषे तरंग उपज कर नष्ट हो जाते हैं॥ तैसे अनं
त इंद्र अरु सृष्टी नष्ट होगई है॥ तातें मैं इस संसार वि
षे किस की आस्था करों। अहंकार पिशाच कर मैं अ
ज्ञानीयों की न्यांई स्थित हों॥ क्षण क्षण विषे आर्बल घ
टती जाती है। सूक्ष्म गति है काल की। कैसा काल है। जि
सनें सदाशिव कों चर्णतले दीया है॥ अरु विष्णु जी कों
खेलने का खेनूं कीया है॥ अरु जिसने कोट ब्रह्मे नाश
कीये हैं॥ ऐसा काल जो सब कों भोजन करणें हारा है॥ तो
मुजकों जीवणे विषे क्या आस्था है॥ जेते कछु पदार्थ
हैं॥ सो सब नाश पडे होते हैं॥ जो अविनाशी पद है सो अ
विनाशी पद अब लग नहीं देखा। अब लग मैं विरक्त

ताकों नहीं प्राप्त भया ॥ मुजकों धिकार है । इह क्या उत्तम
ता है ॥ जिस विषे मैं आस्था करी है ॥ बालिक अवस्था है
सो अग्यान करि पूर्ण है । विचार तें रहित है । जो भन अव
स्था है । सो कामादिकों साथ मिली हुई है । वृध अवस
था कर चिंता विषे दुखी रहता है । इह मूरख परमार्थ
कों किस काल विषे साधेंगा । इस जगत के पदार्थ सभ
आगमापाई हैं । राजसूय अस्वमेधादिक जो यज्ञ हैं
सो जब राजा यज्ञ करते हैं । तब महाकल्प के किसी अंस
काल विषे स्वर्ग कों पावते हैं ॥ जो सउ अस्वमेध यज्ञ क
रता है ॥ सो इंद्र होता है ॥ अर एक दिन ब्रह्मा का होता है
तिस विषे चौदा इंद्र राज भोग कर नष्ट हो जाते हैं ॥ स
हस्र चौकड़ी युगों की जब व्यतीत होती है । तब ब्रह्मा का
एक दिन होता है ॥ ऐसे तीस दिनों का एक मास अर बा
दस्रा मासों का एक वर्ष ऐसा सउ वर्ष ब्रह्मा जी की आ
वेला है ॥ तिस आवेला कों भोग कर ब्रह्मा जी अंतर्ध्या
न हो जाता है ॥ तिस का नाम महाप्रलै है । महाकल्प के अं
स विषे इह स्वर्ग भोग कीया ॥ तो असार सुख की आस्था
करणी क्या योग्य है ॥ ऐसा सुख कोउ नहीं । जो अपदा सा
थ मिल्या न होवे ॥ सभ अपदा साथ मिल्ये हूए हैं ॥ बहुउ
में किस का आश्रय करों ॥ इह जीव जन्मते मरते हैं ॥ तिन
विषे कोउ विरला दुःखों तें रहित कोउ साध है । जिनों
ने निमेष खोलने विषे जगत कों उत्पत देखा है ॥ अरु
उनमेख विषे लय होता जान्या है ॥ निमेख अरु उनमे
ख जिनका विषे जगत उत्पत प्रलय होता है । इस प्रका
र जिस कों नासता है ॥ सो ऐसे भी हो के नष्ट भए हैं ॥ तो
हम सारखों की क्या वार्ता है ॥ जो पदार्थ वडे वडे रम
णीक नासते हैं ॥ सो भी नष्ट हो जावेंगा ॥ तिन पदार्थों की
इछा करणी क्या है ॥ अर इह जगत क्या है ॥ अरु ना ना
प्रकार की संपदा होती है ॥ निमेख विषे उनमेष विषे

चित्तकों चिंता लागती है ॥ तब संपदा आपदारूप होजाती
है ॥ अरु वही आपदा आनंद प्राप्त होती है ॥ अर इनका चि
त्त शांतिरूप स्थित है ॥ तब उह आपदा भी संपदारूप
होजाती है ॥ तातें एही सिद्ध कीया ॥ जो सब मनके फुर्णेमा
त्र है ॥ मनका विवर्त्त ज्ञाण ने गुरुरूप जगत है ॥ अकस्मा
त्र कर कीया है ॥ अरु अज्ञानके कै अहं इदं कल्पना करी
है ॥ तिस विषे त्याग ग्रहण की भावना करणी मिथ्या है ॥
जैसे अग्नि सों बरफ कदाचित नहीं उत्पत्त होती ॥ तैंसे सं
सार विषे सुख कदाचित नहीं होता ॥ जेते कछु जीव हैं ॥
सो अज्ञानी हैं ॥ मैं भी अज्ञानीयों की न्यांई स्थित हो रहा हों ॥
अज्ञानीयों की न्यांई समता सुख कों त्याग कर ज्ञाणनें
गुर विषयों के निमित यतन करता हों ॥ मनके संकल्प
मात्र जगत सुख भासते हैं ॥ संकल्प के उपशम कीए उप
शम होजाते हैं ॥ तातें मैं नाशरूप पदार्थों विषे न हो रम
ता ॥ इन विषे शांति कदाचित नहीं होती ॥ अब मैं संसार
की चिंतें रहित कीया हों ॥ अरु प्रबुध हर्षवान कीया है ॥
आपणा चोर मैं आपही देख्या है ॥ मन नाम है जिसका इ
सीकों मारोंगा ॥ इस मनने मुझकों चिरपर्यंत मारता है ॥
एता काल मेरा मनरूप मोती अवेध रहा था ॥ अब मैं इ
सकों वेध्या है ॥ अर्थ इह जो आत्म विचार तें रहित था ॥ अ
ब मैं इसकों आत्म विचार विषे जोडता हों ॥ अरु आत्म वि
चार योग कीया है ॥ मनरूप एक बरफ का किणका था
सो जडताकों प्राप्त करता था ॥ अब विवेकरूपी सूर्य कर
गाल्या है ॥ मैं चिरकाल तें शांतिपदकों प्राप्त कीया हों ॥ अ
नेक प्रकार के वचनों कर साधों नें मुझकों जगाया है
मैं आत्मपदकों प्राप्त कीया हों ॥ अब आत्मरूपमणि कों पा
कर परम आनंदकों प्राप्त कीया हों ॥ मनरूप शत्रु मुझ
कों अनेक नाम दिखाया था ॥ तिसकों मैं अब विवेक
कर नाश कीया है ॥ परम उपशमकों प्राप्त कीया हों ॥ हे वि

82 वेकतुमकोंनमस्कारहे। तेरेप्रसादसुखकोंपायाहे॥
॥इतिउपशमप्रकरणेजनकविचारोनामसर्गः॥
॥९॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हेरामजीइसप्रकारजन
कचिंतवताभया। जोप्रत्याहारीराजाकीनिकटआई
जैसेसूर्यकेआगेंअरुणआनस्थितहोवें। तैसेप्रत्याहा
रीआई। अरुकहतीभई हेदेवदोभुजाकरकेजिसनें
इहपृथिवीधारीहे। सोमनकोंविश्रामदेणेहारादेव
कहीताहे। सोदेवउदेहूयाहे। अबउठखडेहोवो। दिन
काजोकोउव्यवहारहे। स्नानआदिकतिसकोंकरो
स्नानशालाविषेफूलकेसरगंगाजलकीगागिरले
करकेस्त्रीयांखडीयांहैं। देवपूजाकेनमित्तसर्वसा
मिग्रीआईहे। ब्राह्मणस्नानकरबैठेहैं। अघमर्षण
जापकररहेहैं। तुमारेआवणकीओरपडेदेखतेहैं॥
स्त्रीयोंविषेचमरधारकरसुंदरकांताखडीहैं। अरुभो
जनशालाविषेभोजनसिधहोरहाहे। तातेशीघ्रहीउ
ठो। जैसाकालहोताहे। तैसाकर्मकरीताहे। हेरामजी
जबइसप्रकारप्रत्याहारीकहा। तबराजाचिंतवता
भया। जोइससंसारकाविचित्रस्थितहे। राजसुखसा
थमुझकोंक्याहे। इसमिथ्याआडंबरकोंत्यागकर
एकांतजाबैठताहों। जैसेसमुद्रतरंगोंतेंरहितशां
तिरूपहोताहे। तैसेशांतिरूपहोवोंगा। इहजोनाना
प्रकारकीभोगक्रियाहे। इनतेंमेंअबउत्तपतभयाहों॥
सबकोंत्यागकरकेवलसुखसाथस्थितहोवोंगा॥
हेचित्तजबतूभोगोंकोंत्यागकरपरमपदकोंप्रा
प्तकरेंगा। तबआनंदतम्नकोंप्राप्तहोवेंगा। हेराम
जीजनकइसप्रकारचिंतवताहूयातुष्णीहोरहा
मनकीचंचलताकोंत्यागकरमूर्तिवतस्थितहोर
हा। अरुप्रत्याहारीभीकहिकरतुष्णीहोरही। तब
राजाचिंतवताभया। जोमुझकोंकर्मविषेभीक्या

पापनाश करनहारा

अरुअकरणेविषेभीकछुअर्थनहीं

कछु

अर्थनहीं॥ जोमुजकोंप्रवाहपतितप्राप्तभयाहै॥ तिसीति
सेविचारसहितविचरों॥ अप्राप्तकीइछानहींकर्त्ता॥ अ
रप्राप्तकोंत्यागनहींकर्त्ता॥ अपणेस्वरूपविषेमनकूर
स्वस्तिस्थितहोवों॥ जोकछुप्रारब्धकर्महैं॥ सोईकर्त्तार
हों॥ नमुजकोंअकरणेविषेहर्षहै॥ नकरणेविषेद्वेषहै॥
मुजकोंग्रहणकर्त्तेअरुत्यागकर्त्तेयोग्यकछूनहीं॥ कर्म
काकरणांसरीरकीप्रवृत्तकरहोताहै॥ अरुआत्माविषे अर्थपइहजो
कर्त्तत्वकछूनहीं॥ जोमनकामननेंतेंरहितहूयांरिदेवि
षेरागद्वेषरूपीमलीनतानफुरी॥ तबदेहकेरकर्मप
डेहोवें॥ तोभीइष्टअनिष्टविषेतुल्यताहोवेगी॥ जबदे
हसाथमिलकरमनकर्मकर्त्ताहै॥ तबकर्त्ताभीताहो
ताहै॥ जबमनकामननउपशमहूया॥ तबकर्त्तेविषेभी
अकर्त्ताहै॥ जैसानिष्कामअंतरहोताहै॥ सोईरूपपुरुषका
होताहै॥ जिसकेरिदेविषेअहंकृतनहीं॥ अरुबाह्य
चेष्टापडाकर्त्ताहै॥ तोभीउसकोंपापकछूनहीं॥ अरुजिस
केरिदेविषेअहंकृतकाअभिमानहै॥ बाह्यअकर्त्ता
भासताहै॥ तोभीअनेककर्मपडाकर्त्ताहै॥ अरुरिदेक
रकछुनहींकर्त्ता॥ तबउहधीर्यवानपुरुषअनामयप
दकोंप्राप्तहोताहै॥ ॥इतिउपशमप्रकरणेजनक
विचारोनामसर्गः॥ ९ ॥श्रीवसिष्ठोवाच॥ हेराम
जीइसप्रकारचित्तवनाकरकेराजाजनकयथाप्राप्त
जोक्रियाहै॥ तिसकेकरणेकोंउठखडाहूया॥ यथाप्रा
प्तविषेक्रियाकर्त्तासुषुप्तसोईअलेपरहा॥ जैसेसुषु
प्तविषेपुरुषहोताहै॥ तैसेउहजाग्रतविषेहोरहा॥ दि
नविषेगुणकर्मअनुसारक्रियाकोंकरे॥ अरुरात्रिमनस
मरसआत्मध्यानविषेस्थितकरे॥ जबरात्रिक्षीणभ
ई॥ तबचित्तकोंइसप्रकारप्रबोधकर्त्तभया॥ हेचित्तचं
चलरूपपरमानंदस्वरूपजोआत्माहै॥ सोतुजकोंसुख
दाईनहींभासता॥ जोइसमिथ्यासंसारकीइछाकर्त्ता

हैं। जबतेरी इछ्या नष्ट होवेगी। तबतूं सारसुख आत्मप
दकों प्राप्त होवेंगा। ऐसे दुखरूप भोगोंकी इछ्या तूं किं
उ कर्त्ता हैं। जबतूं इसकी इछ्या त्याग करेगा। तबसें न
दुख मिटजावेगा। इह संसार देखनेमात्र सुंदर भास
ता है। अरु वास्तवतें कछु है नहीं। दुखरूप संसारकी
वासनांकों त्याग। अरु आत्मतत्वको आश्रेकर सुध नि
र्मल होकर जगत विषे विचिर। तब तुजकों कोऊ दुख स्प
र्श न करेगा। जगत स्थित होवे। अथवा नाश होवे। तिसकी
वासना त्यागकर। जो इह अविद्यमान असतरूप है। अ
रतूं सतरूप हैं। सत अरु असतका संबंध कैसे होवे। मृ
तक अरु जीवतेका संबंध कबी हूया है। जबतूं एक हैं चे
तन तत्वही दुखरूप है। तब दोनों सतरूप हूये। जब वि
स्तृतरूप आत्माही हूया। तब हर्ष विषाद किसका क
र्त्ता हैं। तांतें तूं मूढमत न हो। समुद्रकी न्यांई अछोभरूप
आपणे स्वरूप विषे स्थित हो। संसारकी भावनांकों त्या
गकर। आत्म भावनां कर। तब पूर्णपदकों प्राप्त होवें
गा॥ ॥इति उपशमप्रकरणे चित्त अनुशासनं ना
म सर्गः॥ ११ ॥श्रीवसिष्टोवाच॥ हे रामजी राजा इ
स प्रकार विचारकर्कें सभ राजकार्यकों कर्त्ता भया। अ
नेंद्र वृत्ति विषे मन उसका प्रबोधवान होकर मोहकों
न प्राप्त भया। इष्ट विषे हर्ष न करे। अनिष्ट विषे द्वेष न
करे। केवल समस्वछ आपणे स्वरूप विषे स्थित रहे। रा
ज विषे विचरे। केवल रागद्वेषतें रहित होकर चेष्टा क
रे। विवेक कर उसके रिदे विषे कलनांको कोऊ स्पर्श न क
रे। आपणे सम्यक ज्ञानके प्रकाश विषे मनकों प्राप्त की
या। मनकी जो कोऊ संकल्पवृत्ति थी। सो नष्ट होगई। मह
प्रकाशरूप चैतन्य आत्मा अनामय रिदे विषे प्रकाश्या
ता न भया। जैसे शुध मणि विषे प्रतिबिंब भासता है। तैं
से अपणा आप आत्मरूप भासणे लागा। सर्व जगत वि

षे जीवन्मुक्ति होकर विचरने लागा ॥ हे रामजी जनक कों
तान दृढ होता भई ॥ लोकों की परावर कों जानकर विदेह
नगर का राज करता भया ॥ तैसे तुम भी सर्व कार्य पडे करो सर्वदा काल
अरु मन निरंतर आत्मस्वरूप विषे स्थित राखो ॥ तुम भी
जीवन्मुक्तिवपु हो ॥ राजे जनक कों सर्व पदार्थ की भाव
ना असत होगई ॥ सुषुप्तवत वृत्ति भई ॥ न विष्यत की इच्छा
न करै । अरु बीते कों चितवे नहीं । अरु वर्तमान विषे य
थाशास्त्र विचरै । हे रामजी तब लग इह आत्मपद कों न
हीं पावता ॥ जब लग इसके रिदे विषे अपणा पुरुषार्थ रू
प विचार नहीं उपजा ॥ जब अपणे रिदे विषे विचार उप
जता है ॥ तब सब दुख नष्ट होजाते हैं ॥ बुधि के विचार
रूपी सकाशसाथ रिदे का अज्ञान नष्ट होजाता है ॥ जैसे
थोडा पवन भी तृण कों बहुत भ्रमावता है ॥ तैसे बोधवा
न कों वडी आपदा भी दुख नहीं देती ॥ तातें बुधि कों वधा
वो ॥ जब बुधि सतमार्ग की ओर वधेगी ॥ तब परम बोध
इसकों प्राप्त होवेगा ॥ तातें बुधि की मूढता तें रहित होव
णा ॥ वडा लाभ है ॥ स्वर्ग पाताल पृथ्वी आदिक का राज
जो प्राप्त होता है ॥ सो अपणे पुरुषार्थ रूप भंडार सों प्राप्त
होता है ॥ संसार रूप समुद्र तरणे कों अपणी बुधि रूपी
जहाज है ॥ जो बोध तें रहित बल तें ऐश्वर्य करवेका भी है
तिसकों विषय तुच्छ कर डारते हैं ॥ तातें जो कछु प्राप्त हो
ता दृष्ट आवता है ॥ अपणे बोधरूप चिंतामणि रिदे वि
षे स्थित है ॥ तिसतें विवेक रूपी फल पाईता है ॥ जैसे क
ल्पवृक्ष तें जो कछु मांगीये सो पाईता है ॥ तैसे सब फल
बुधि तें पाईते हैं ॥ जैसे जानणेहारा मलाह समुद्र तें पार
करता है ॥ तैसे सम्यक बोध संसार तें पार करता है ॥ जो अ
ल्प बुधि भी सतमार्ग की होती है ॥ तो भी वडे संकट तें तरा
वती है ॥ हे रामजी जो पुरुष बोधवान है ॥ तिसकों संसार के
दुख वेध नहीं सकते ॥ जैसे लोहे आदिक कवच जिसप

पहिरता है ॥ तिसकों बाण वेध नहीं सकता ॥ तैंसे बुधि करके इह पुरुष सर्वात्मपदकों पावता है ॥ जिस पदके पाए तें हर्ष विषाद कोऊ नहीं रहता ॥ अहंकाररूपी बदल नें आत्मरूप सूर्यकों अछादन कीया है ॥ बोधरूपी वायु कर जब बदल दूर होवे ॥ तब जिंउ का तिंउ भासे ॥ ॥ इति उपशमप्रकरणे आत्ममहिमावर्ननं नाम सर्गः ॥ १२ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जनक की न्याई आपणे आप कर आपकों विचार ॥ अरु पाछे जो विदितवेद्य पुरुषों नें कहा है ॥ तिसी प्रकार तुम भी निर्विघ्न प्राप्त होवोगे ॥ जो बुधिवान हैं जिनकों अंतका जन्म है ॥ सो राजससात्विकी पुरुष हैं ॥ सो आपही परमपदकों प्राप्त होते हैं ॥ जब लग आपणे आप कर आत्मदेव प्रसन्न न होवे ॥ तब लग इंद्रीयों के जीतणे का यतन न करे ॥ जब आत्मदेव प्रसन्न होवेगा ॥ जो सर्वगति परमात्मा ईश्वरों का ईश्वर है ॥ तब आपही स्वयंप्रकाश देखेंगा ॥ सर्व दोषदृष्टि क्षीण होजावेगी ॥ अरु जब परमात्मा का साक्षात्कार होता है ॥ तब भ्रांतिदृष्टि निवर्त होती है ॥ हे रामजी तुम सदा बोध कर आत्मपद विषे स्थित रहो ॥ अरु जनकवत राजनीति कर्तें रहो ॥ अत्यंत लक्ष्मीवान होकर जगत विषे विचरो ॥ तब तुमकों खेद कछु न होवेगा ॥ जब नित आत्मविचार होता है ॥ तब परमदेव आपही प्रसन्न होता है ॥ तिसके साक्षात्कार हूए तें चंचल संसारकों जनक की न्याई हसेंगा ॥ हे रामजी संसारनयकर के जो जीव नयनीत हूए हैं ॥ तिस तें रक्षा करणेकों अपणा पुरुषार्थ प्रयतन है ॥ जो पुरुष दैवकों निश्चे कर रहे हैं ॥ और शास्त्रों तें विरुध कर्म करते हैं ॥ सो मलिनबुधि संकल्प विकल्प विषे वहि जाते हैं ॥ तिनके मार्ग की और तुम गमन नहीं करणा ॥ उनकी बुधि नास करती है ॥ तुम परम विवेककों आश्रे करो ॥ अरु अपणे आप कर आपकों देखो ॥ शुध बुधि अरु वैराग्य करके संसारसमुद्रकों

देखकर

तरजावो ॥ तातें मैं तुजकों जनक का वृतांत कहा है ॥ जैसे
आकाश तें फल गिरे ॥ तैसे उसकों सिधों के विचार कर
ज्ञान की प्राप्त भई ॥ इह विचार ज्ञानरूप वृक्ष की मंज
री है ॥ जैसे अपणे विचार कर राजा जनक कों आत्म बो
ध भया है ॥ तैसे तुमकों भी होवेगा ॥ जैसे सूर्यमुखी कम
ल सूर्य कों देखकर प्रफुलित हो आवते हैं ॥ तैसे मन का
जो मनन भाव है ॥ सो नष्ट हो जावेगा ॥ अरु हिर्दा प्रफुलि
त होवेगा ॥ जैसे सूर्य की किरणां बरफ कों गालती है ॥ तैं
से जब आत्मरूप सूर्य प्रकाशेगा ॥ तब भेद कलनां नष्ट
हो जावेगी ॥ अरु ब्रह्मादिकों विषे व्याप्या जो आत्मतत्व है ॥
सो प्रकाश आवेगा ॥ अरु भेद कलना नष्ट हो जावेगी ॥ जैं
से अपणे विचार करके जनक अहंकार वासना का त्याग
कीया है ॥ तैसे तुम भी विचार कर अहंकार वासना का त्या
ग करो ॥ जब अहंकार वासना रूप नष्ट होवेगा ॥ अरु चि
त्ताकाश निर्मल होवेगा ॥ तब आत्मरूप सूर्य प्रकाशेगा
हे रामजी ऐसे धार ॥ जो न मैं हों ॥ न और है ॥ न अस्ति है ॥ न
नास्ति है ॥ जब ऐसी भावना दृढ होवेगी ॥ तब मन शांति
हो जावेगा ॥ हेय उपादेय बुधि भी नष्ट हो जावेगी ॥ त्याग
ग्रहण बुधि जो होती है ॥ सो इह मन है ॥ एही बंधन का
कारण है ॥ इस तें इतर बंधन कोऊ नहीं ॥ हेय उपादेय
के त्याग तें जो शेष रहे ॥ सो तिस विषे स्थित होवो ॥ जब
जग मनं लो चपल लैप होता है ॥ तब जगा समता उदै नहीं हो
ती ॥ एक जो ब्रह्मसत्ता निरामय नानात्व भाव तें रहित है
॥ तिस कों प्राप्त होवो ॥ हेय उपादेय तें रहित बुधि ज्ञानवा
न की होती है ॥ तिस पुरुष कों इह शांति आन प्राप्त होती
है ॥ जैसे राजा के गृह विषे पटराणी आय स्थित होवे ॥ तैं
से शांति आन स्थित होती है ॥ एक तो भोगों विषे नीरसता
इसरा देहाभिमान तें रहित होता है ॥ अरु समता परपू
र्ण सर्वत्र आत्मदृष्ट अरु ज्ञान निष्ठा सर्व इछा तें रहित
अरु निरहंकार व्यापक सदा अकर्ता जानणा ॥ इष्टा

द्रूप का विकल्प कोऊ न फुरे ॥ सदा एक रस रहणा ॥ अ
रु सर्व जीवों साथ मैत्री भाव ॥ आत्म बुधि निःक्रिय स्वरू
अरु यह जो प विषे तुष्टता प्रसन्न रहणा ॥ एती शुभ ज्ञानवान कों
आन स्थित होती हैं ॥ हे रामजी संसार के पदार्थों की ओर
जो चित्त धावता है ॥ तिस को वैराग्य कर्के उलटावो ॥ जै
से पुल कर्के जल का वेग निवारण करीता है ॥ तैसे सं
सों सार कों उलटा कर मन आत्मपद विषे लगावो ॥ तिस
कर आत्मा प्रकाशता है ॥ अरु संसार रूपी वृक्ष है ॥ तिस
का मूल बीज मन है ॥ इत वचन जो कहे हैं ॥ तिन कों रिदे
विषे धार कर धीर्यवान होवो ॥ अरु मन कर्के मन कों छेदो
जो बीता है ॥ तिस का स्मरण न करो ॥ अरु भविष्यत की
चिंता न करो ॥ काहे तें जो असत रूप है ॥ अरु वर्त्तमान
विषे विचार कर्के विचरो ॥ जब मन सों संसार विस्मरण
हो जावेगा ॥ तब मन विषे संसार बहुड़ न फुरेगा ॥ मन विषे
जगत कों असत भावना जान कर चलो बैठो स्वास लेवो नि
वासिक चेष्टा पड़ी होवेगी ॥ अरु अंतर तें सब असत रू
प जाणो ॥ तब खेद न होवेगा ॥ अहं मम रूप जो मल है ॥ ति
स कों त्याग कर यथा प्राप्त विषे विचरो ॥ पर रिदे विषे वा
सना कछु न होवे ॥ अलेप रहो ॥ जैसे आकाश सर्व पदार्थों
विषे व्यापक है ॥ अरु किसी साथ स्पर्श नहीं करता ॥ तैसे
सर्व कार्यों कों करो ॥ मन कर के किसी साथ बंधायमान न
होवो ॥ तुम चैतन्य रूप अजन्मा महेश्वर पुरुष हो ॥ जिन
पुरुषों कों एही निष्ठा है ॥ तिन कों संसार के पदार्थ चला
नहीं सकते ॥ अरु जिस कों संसार विषे आसक्ति भावना
है ॥ अरु निज स्वरूप भूला है ॥ तिन कों संसार के पदार्थ
दुखदायक हैं ॥ अरु जो ज्ञानवान पुरुष हैं ॥ तिन कों हलो
ढड का बटा अरु कंचन समान है ॥ इष्ट अनिष्ट कछु न
हीं भासता ॥ इसी का नाम मुक्त कहते हैं ॥ हे रामजी जिस पु
रुष कों स्वरूप विषे स्थित भई है ॥ अरु सुख दुःख विषे

समहै। सो पुरुष सर्वक्रिया कर्त्ता है॥ पर उसकछु कीया न
हीं। जिसकों इह निष्कार रहता है॥ जो समचिदाकाश आ
त्मा है॥ सो भोगों तें रहित समभाव विषे स्थित रहता है
हे रामजी मन जो है॥ सो जडरूप है। अरु आत्मा चेतन स्व
रूप है॥ चैतन्य की सत्ता कर के पदार्थों कों ग्रहण कर्त्ता
है॥ इस विषे अपणी सत्ता कछु नहीं। जैसे सिंह कर मा
रता जो पशु है॥ तिसके खाणे कों बिलाड भी समर्थ होते
हैं॥ तैसे चैतन्य के आश्रे कर मन दृश्य कों ग्रहण कर्त्ता
है॥ मन आप असत रूप है॥ चैतन्य की सत्ता कों पाकर
फुर्णे विषे आवता है॥ संसार के पदार्थों कों चितवता
है॥ आत्मसत्ता कों भुलाकर जो फुरता है॥ तिसका नाम
मन है॥ अरु दृश्य कलना है॥ जब कलना को त्याग क
र जो आप कों चैतन्य जानता है॥ तब आत्मभाव कों प्रा
प्त होता है॥ जब चित कलना चेत दृश्य तें अफुर होती है
तब तिसका नाम सनातन स्वच्छ ब्रह्म होता है॥ अरु ज
ब चेत साम्य मिलती है॥ तब तिसका नाम कलना दृश्य
होता है॥ स्वरूप तें इतर कछु दूया नहीं। केवल ब्रह्मतत्व
अपणे आप विषे स्थित है॥ तिस विषे नाम करके दृश्य
भासती है॥ मन आदिक भासते हैं॥ जब चैतन्य सत्ता दृ
श्य के सन्मुख होती है॥ तब उही कलना रूप हो भासती
है॥ अपणे स्वरूप के विस्मरण कीये तें जड धर्म हो जा
ती है॥ आप कों परछिन्न जानणे लागती है॥ हे रामजी॥
चित्त सत्ता अपणे फुरणे कर जड भाव कों प्राप्त होती है
जब लग विचार कर जगाईये नहीं। तब लग स्वरूप वि
षे जागती नहीं। सत शास्त्रों। अरु संतों के संग कर जाग
ती है। तब जानती है॥ जो जगत विषे अैसा पदार्थ को उ
नहीं॥ जो संकल्प कलनां कर सिध न होवे॥ तां तें तं अ कलपित
जड भाव हो॥ जड कलनां कों त्याग कर परमार्थ सत्ता
विषे स्थित हो॥ विगासमान हो। जैसे सूर्य कर कमल वि

गा समान होता है॥ तैसे तूं चैतन्य सत्ता विषे विगा समा
न हो॥ काहे ते जो मूर्त्ते का राजा घर घर शष्ट कर युध
करणे को समर्थ नहीं होता॥ अरु मूर्त्ते का चंद्रमा औष
धीयों को पुष्ट नहीं करता॥ तैसे कलना जड रूप कार्य
करणे कों समर्थ नहीं होती॥ जैसे पथर की मूर्ति गायन
नहीं करती॥ तैसे जड रूप मन कार्य करणे को समर्थ
नहीं होता॥ जैसे सूर्य की धूप कर मृगतृष्णा की नदी भा
सती है॥ तैसे चित्त कलना के फुरणे कर जगत भासता
है॥ सरीर विषे जो स्पंदशक्ति भासती है। सो प्राणों के फु
रणे कर भासती है॥ प्राणों कर बोलता चलता बेगता
है॥ ता ते ताने संवित जो आत्मतत्त्व है॥ तिस ते इतर क
छु नहीं फुरता॥ संकल्प कलना जो फुरती है॥ अहंत्वे
इत्यादिक उंही रूप होभासती है॥ जब पूर्ण आत्मा प्रा
णों का फुरणा एकता भान होता है॥ अर्थ इह जो प्राणों
साथ चैतन्य संवित मिलती है॥ तब तिसका नाम जीव
होता है॥ बुधि चित्त मनादिक सब नाम तिसी के हैं॥ सो
सभ संज्ञा अज्ञान कर कल्पित हैं॥ अज्ञानी को भासता
है जैसे तैसे ही है॥ अरु परमार्थ ते कछु क्रिया नहीं॥ न
मन है। न बुधि है। न जीव है। न सरीर है। केवल आत्म
सत्ता अपणे आप विषे स्थित है॥ और द्वैत कछु क्रिया न
हीं। सभ जगत भी आत्मरूप है॥ अस्ति नास्ति सभ उंही
रूप है। अरु अनुभव रूप सर्व कलना ते रहित॥ अरु
सर्व कलना उंही है॥ ऐसे अनुभव का जहां ज्ञान होता
है॥ तहां मन क्षीण हो जाता है॥ जैसे जहां सूर्य का प्रकाश
प्रवर्त्तता है॥ तहां अंधकार क्षीण हो जाता है। तैसे जहां
अनुभव रूप का ज्ञान होता है। तहां कलना नष्ट हो जा
ती है॥ जब आत्म संवित दृश्य की ओर फुरती है॥ तब
थोडी भी बडे विस्तार को पावती है॥ तब चित्त कला को
आत्म स्वरूप विस्मरण हो जाता है॥ दृश्य जगत भास

णोलागताहै ॥ तबतन्मयहोणेकरचित्तनामकहीता
है ॥ जबचित्तकलनासंकल्पतेंरहितहोतीहै ॥ तब
मोक्षरूपकहीतीहै ॥ अवरदूसरीवस्तनहींभासती
ताते संपूर्णसंसारकाबीजचित्तहै ॥ संकल्पकेसन्मु
खहोणेकरचेतनसंवितकानामचित्तहोताहै ॥ नि
र्विकल्पजोचित्तसत्ताहै ॥ जबसंकल्पकेसन्मुखहोती
है ॥ तिसकोंकलनाकहीताहै ॥ उहीमनघटादिकद्वै
रूपकोंपावतीहै ॥ तबप्राणशक्तिजोज्ञानशक्तिसाथ
मिलतीहै ॥ तिसकरसंकल्पविकल्पकाकारणमन
होताहै ॥ सोईजगतकाबीजहै ॥ तिसकेदूरकरणेकों
दोउपायहैं ॥ एकतत्वज्ञान ॥ दूसरावासनाक्षय ॥ वासना
क्षयप्राणोंकेनिरोधकरहोतीहै ॥ सोजबप्राणशक्ति
कानिरोधकरीताहै ॥ तबमनलीनहोजाताहै ॥ अरुस
तशास्त्रोंकेविचारकरब्रह्मतत्वकाज्ञानहोताहै ॥
प्राणकिसकानामहै ॥ अरुमनकिसकानामहै ॥ हिर्दे
सोंजोप्राणआवतेजातेहैं ॥ सोप्राणहैं ॥ अरुशरीरईहां
वैगाहै ॥ मनदेशातेदेशांतरकोंगमनताकिरताहै ॥ ति
सकानाममनहै ॥ तिसकोंवैराग्यअभ्यासकरवास
नातेंरहितकरणे ॥ अरप्राणवायुकोंस्थितकरणे ॥ ए
दोनोंउपावहैं ॥ हेरामजीजबतत्वज्ञानहोताहै ॥ तब
मनस्थितहोजाताहै ॥ अरुजबप्राणस्थितहोताहै ॥ त
बमननीस्थितहोंताहै ॥ काहेतेंजबप्राणस्थितहोते
हैं ॥ तबचेतनकलनासाथनहीमिलते ॥ सोआत्मसत्ता
चेतनस्वरूपहै ॥ अरुअपणेआपविषेस्थितहै ॥ चेतन्य
शक्तिप्राणशक्तिकरकेमनउपजताहै ॥ सोमनकाउप
जणाभीमिथ्याहै ॥ अविद्याकरउपजणाबिनसणा
भासताहै ॥ सोसत्रमनकेसंकल्पकरभासतेहैं ॥ जब
तूंसंकल्पनउठावें ॥ तबमनसंज्ञानष्टहोजावेगी ॥ ज
बप्राणोंकेस्पंदकरचित्तसत्ताचेततीहै ॥ तबचेतणेके

87 रचिनसत्ताकोंप्राप्तहोतीहै॥जैसेबालिकअपणीछि
छावैंविषेवैतालकल्पकरभयमानहोताहै॥तैसेदृ
रूपकोंमनचिंतवकरदुखीहोताहै॥जबमनफुर्णेतें
रहितक्रूया॥तबमनक्षीणहोजाताहै॥जबमनफुर्णे
तेंरहितक्रूया॥तबमनकारूपकछुनहींभासता॥दृ
रूपकेसंकल्पकरमनकहीताहै॥जबसम्यकज्ञानउ
पजै॥तबमननष्टहोजाताहै॥तांतेमिथ्याअनर्थका
कारणचित्तहै॥तिसकात्यागकरो॥हेरामजीमनकाउ
पजणमिथ्याहै॥परमार्थतेंहैनहीं॥संकल्पकेउठाव
णेकानाममनहै॥जैसेमृगतृश्नाकीनदीमिथ्याभा
सतीहै॥तैसेइहमनसहितदृश्यमिथ्याहै॥रिदारूप
माकृस्थलहै॥अरूचेतनरूपसूर्यहै॥अरमनसहित
जगतजलहै॥जबसम्यकज्ञानहोताहै॥तबइसकाअ
भावहोजाताहै॥बडाआश्चर्यहैजोआपकछुनहीं
अरतिसकीदेहभीकछुनहीं॥नआधारहै॥नआधेयहै
सोऐसामनसर्वलोकोंकोंभक्षणकर्तारहताहै॥बे
लतेजविभूतहाथपांवतेंरहितहै॥अरसर्वलोकों
कोंमारतीहै॥मानोंकमलफलवैमारलेकरसभलो
कोंकेमस्तकफाटगएहैं॥जोजडमूढअंधमनकर
हतेगएहैं॥मानोंपूर्णमासीकेचंद्रमाकीकिरणोंक
रसनपडेजलतेहैं॥अरूजोपुरुषसरमेहोतेहैं॥सो
तिनमनकोंमारतेहैं॥अरूकहतेहैं॥जोइहमिथ्याहीसं
कल्पकरउदेहूयाहै॥अरमिथ्याहीसंकल्पकरस्थि
तहै॥मनऐसादुष्टहै॥जोकिसीइसकोंदेखानहीं॥जो
इहमनहै॥परतिसकरणतेदुखप्राप्तहोतेहैं॥सनमन
करपडेतपतेहैं॥इहमैंजाननाहो॥सनजाननमूर्खहै॥
तरंगरूपसटकरकणकणहोगएहैं॥अरूकमल
केअहारकरविदार्णहूएहैं॥उहचंद्रमांकीकिरणोंक

रदाय होते हैं ॥ संकल्परूप मनकर प्रत्यक हूए हैं ॥ सो म
नें वस्तु तें कछु नहीं ॥ मिथ्या कल्पित कर रहते भए हैं ॥ तो
ते महा मूर्ख हैं ॥ सो इह हमारे उपदेश के योग्य नहीं ॥ जो
पूर्ण ज्ञानवान हैं ॥ सो भी हमारे उपदेश के योग्य नहीं ॥
उपदेश का अधिकारी जिज्ञासी है ॥ जिसकों स्वरूप का
साक्षात्कार नहीं हूया ॥ अरु संसार तें उपरत हूया है
मोक्ष की इछा राखता है ॥ अरु पदपदार्थ का ज्ञान है ॥
सो उपदेश करणें कों योग्य है ॥ ज्ञानवान जो पूर्ण हैं ॥ तिस
कों उपदेश नहीं बणता ॥ अरु अज्ञानीयों को इह वासो
है ॥ जो बोधवसो या पडा है ॥ तिसकों मृतक जानकर न
य पावता है ॥ सो तिस मन नें अज्ञानीयों को वस कीया है
लोगों का जो तुछ सुख है ॥ तिसके निमित्त जीव अनेक य
त्न करते हैं ॥ अरु दुख पावते हैं ॥ रिदे विषे स्थित अपणा
स्वरूप है ॥ तिसकों देख नहीं सकते ॥ प्रमाद कर कें अनेक
कष्ट कों पावते हैं ॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे मन नि
वीणो नाम सर्गः ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी
इह जो संसाररूपी समुद्र है ॥ तिस विषे रागद्वेषरूपी क
लोल उठते हैं ॥ तिस विषे इह जीव बहते जाते हैं ॥ सो मू
कजडु हैं ॥ मन कों नहीं जानते ॥ सुखरूप जो आत्मतत्व है
तिसकों नहीं प्राप्त होते हैं ॥ इह विचार विवेक की बात
तुमकों कही है ॥ सो तुम सारख्यों कों योग्य है ॥ जिन मूर्खों
कों मन के जीतणें की समर्थता नहीं ॥ इह वचन कहणें
तिनकों शोभते नहीं ॥ विचार नहीं कर सकते ॥ जैसे जन्म
के अंध कों सुंदररूप दिखाईये ॥ तब वुह देख नहीं सक
ता ॥ तैसे विवेकवाणी का उपदेश तिनकों कहणा नि
फल होता है ॥ जो उह मन कों जीत नहीं सकते ॥ इंद्रीयों
विषे लोलप रहते हैं ॥ तिनकों आत्मबोध का उपदेश
करणें कछु कार्य नहीं राखता ॥ जैसे कुष्टी कों नानाप्रका
रकी सुगंध सुखदायक नहीं होती ॥ तैसे मूर्ख कों आत्म

जो

मिथ्या ही मोह न होते हैं

जो

अतशे कर के लोभी

88

बोधका उपदेश सुखदायक नहीं होता ॥ ऐसा कबुधी
कौं न है ॥ जो मसाण विषै मृतक मानुष साथ चर्चा करे ॥
का है तें जो उत्तर तौ है नहीं ॥ अपणे हिरदे विषै मनरूपा सर्प
स्थित है ॥ तिसकौं निकासना रे सो पुरुष है ॥ अरु जो पुरु
ष तिसकौ जीत नहीं सकता ॥ तिस दुर्बुधी कौं उपदेश क
रणा व्यर्थ होता है ॥ हे रामजी मन महा तुछ है ॥ तिसकं तें ऐ
सा जान ॥ जो वस्तु कछु न होवे ॥ तिसके जीतणे विषै क्या
कठनता है ॥ जैसे स्वप्ने नगर निकट अरु बिरपर्यंत भा
सता है ॥ अरु जाग कर देखीये तो पाईता कछु नहीं ॥ तै
से मनकौं विचारकर देखीये ॥ तब पाईता कछु नहीं ॥ जि
स पुरुष अपणे मनकौं जीत्या नहीं ॥ सो दुर्बुधी है ॥ उह अं
मृतकौं त्यागकर विषकौं पान कर्ता है ॥ अरु जो ज्ञानवा
न है ॥ सो सदा आत्मा ही देखता है सो ज्ञान आत्मा परमा
त्मा की है ॥ तिसतें भिन्न कछु नहीं ॥ इह मन कहां तें उठा
है ॥ जिसनें सब जगतकौं वश कीया है ॥ इह आश्चर्य है
जिसका स्वरूप कछु नहीं ॥ तिस मन कर दुखौं की परंप
रा भासती है ॥ हे रामजी दुखी जीवौंकौं देख कर दयावं
ती हौं ॥ जो इह मूर्ख वेदकौं किउं पावते हैं ॥ दुखदायक
कौं न है ॥ जिसकर पडे तपते हैं ॥ बहुरि जन्ममरणकौं पा
वते हैं ॥ तां तें इन जीवौं का विलीपन हीं करणा ॥ का है तें
जो स्थिर रा विशेष रहणा नहीं ॥ सब नाशरूप हैं ॥ सब नाश
प दे होते हैं ॥ तिन का प्रतियोगी कोऊ है ॥ मानुषौंकौं अ
नेक जीवांआदिक खावते हैं ॥ तिनकौ मखीमछरादि
क भोजन करते हैं ॥ मखीमछरौं कौं दादर अरु दादुर खा
ते हैं ॥ दादुर कौं सर्प सर्पकौं नवला ॥ नवलेकौ बिल्ली ॥ बिल्ली
कौं काकर कौं काकरकौं बिघयाड ॥ बिघयाडकौ सिंह सिं
हकौं सरभा ॥ सरभेकौं मेघका गर्जणा नष्ट करता है ॥ मे
घकौं वायु वायुकौ पर्वत ॥ पर्वतकौं इंद्रका वज्र ॥ इंद्रके
वज्रकौं सुदर्शन चक्र जीत लेता है ॥ सो चक्र विष्णुजी

का है ॥ सो विष्णुजी अवतारों को धारता है ॥ सुखरूप वर्ती
देह को धारता है ॥ तौ तीर्थ्यादिक देह को लागतीयां
है ॥ उह लोडू पान कर्तीयां है ॥ इस प्रकार नूतन जात को
निरंतर काल नाश करता है ॥ अरु परस्पर जीव खाते हैं
अरु निरंतर दशों दिशा विषे जीव पड़े उपजते हैं ॥ जैसे ज
ल विषे मच्छ कच्छ आदिक अरु पृथ्वी विषे कीटादिक
उपजते हैं ॥ आकाश विषे पंखी आदिक वन विषे सिं
हादिक मृग आदिक पपीलका आदिक कीट पतंग आ
दिक उपजते हैं ॥ स्थावर वृक्षादिक इस प्रकार जीवादि
क पड़े उपजते हैं ॥ अरु नष्ट हो जाते हैं ॥ तैसे मानुष जा
त भी पड़े उपजते हैं ॥ अरु नष्ट हो जाते हैं ॥ अरु जो पुरु
ष बोधवान हैं ॥ सो आपणे आप पर दया करता है ॥ अरु
संसार समुद्र सों आपको उधार लेता है ॥ हे रामजी अ
वर जेते कछु जीव हैं ॥ सो पशुवत हैं ॥ तिनको हमारी क
था का उपदेश नहीं लागता ॥ जहां उनको चित्त खैंचता
है ॥ तहां चले जाते हैं ॥ तिनका चित्त रूपी पशु विषयरू
पी चिकड़ विषे गिड़ता है ॥ तिस कर वह आपदा को प्रा
प्त भए हैं ॥ तिन पुरुषों चित्त को नहीं जीता ॥ तिनको दुःखों
के समूह प्राप्त होते हैं ॥ अरु जिन्हों चित्त को जीता है ॥ सो
संपदावान होते हैं ॥ अरु दुःख सब मिट जाते हैं ॥ बहुड़
संसार विषे नहीं उपजते ॥ जैसे बालिक को अपणे पि
छावें विषे वैताल बुद्धि होती है ॥ तिस कर दुखी होता
है ॥ तैसे मन कर सभी जीव दुख पावते हैं ॥ जब लग आ
त्म सत्ता का विस्मरण है ॥ तब लग मूढ़ता है ॥ अब तुम
जागे हो ॥ जिं उकार तिं उ आत्मा को जाणा है ॥ हे शत्रुनाशी क
अपणे संकल्प कर चित्त बढ़ता है ॥ तिस संकल्प को
शीघ्र ही त्याग करो ॥ तब शांति चित्त होवो ॥ जब तुम चि
त्त को आश्रे करोगे ॥ तब बंधन होवेगा ॥ तिसतें रहित
होणा मोक्ष है ॥ इस प्रकार ध्यान करो ॥ जो न मैं हों ॥ न जग
त है ॥ केवल आत्मस्वरूप सर्व विषे स्थित है ॥ आत्मा

अरजागतविषेद्वैतकलनांकोउनहीं। जोइसविषेस्थि
तहै। सोईमुक्तिरूपहै। आत्माअरजागतविषेभेदक्या
है। द्रष्टाअरदृश्यकेअंतरजोअनुभवसत्ताहै। सोआ
त्माहै। सर्वदातिसकीभावनांकरो। द्रष्टाअरदृश्यकाजो
साक्षीभूतहै। तिसअनुभवसाक्षीभूतविषेस्थितहोवो।
हेरामजी। भवजोहैसंसारसोभावअभावरूपहै। तिसकी
भावनांकोत्यागकरभावरूपआत्माकीभावनांकरो।
सोअपणास्वरूपहै। अरुचेतनभावकोप्राप्तहोणासोअ
नेकदुखोंकाकारणहै। वासनारूपसंगजोंकोतोडके
अपणेस्वरूपकेबलकर(जडे)आत्मस्वरूपविषेस्थितहो
वो। व्यतिरेकभावनाकेत्यागतें। तबमनकेसर्वदुःख
नष्टहोजावेंगे। इहदृश्यसर्वआत्माहै। आत्मातेंइतर
कछुनहीं। जबइहज्ञानउदेहूया। तबचित्तचेतचेत
नातीनोंकाअभावहोजावेगा। मैंआत्मानहीं। जीवहों
इसकानामचित्तहै। तिसकरअनेकदुखोंकीपरंपरा
उदेहोतीहै। जबइहनिश्चाहूया। जोमैंआत्माहों जीव
नहीं। सतआत्माहों। इसीकानामचित्तउपशमकहीता
है। इसविषेसंसेकछुनहीं। तबइसआत्मबोधकरचि
तनष्टहोजावेगा। हेबलवानोंविषेश्रेष्टरामजी जबतें
रेदेहरूपगृहसोंचित्तरूपवेतालनष्टहोजावेगा। तब
तूंदुःखोंतेंरहितस्थितहोवेंगा। भयउद्वेगकछुनव्या
पेगा। अबमेरेवचनोंकरतूंनीरागभयाहैं। मननरूप
जोमनहै। तिसकोंतैंनेजीत्याहै। तातेंतूंनिर्दुखउत्तम
पदकोंप्राप्तभयाहैं। सर्वईक्षणाकोत्यागकरस्थितहै।
॥ ॥इतिउपशमप्रकरणेमोक्षउपाएमहारामाय
णेचित्तचेतचेतनानामसर्गः॥१४ ॥श्रीवसिष्ठो
वाच॥ हेरामजीइसप्रकारतूंदेख। जोचित्तअपवित्र
रूपहै। संसाररूपवृक्षकाकारणहै। जबचित्तसत्ता
आत्माकोंत्यागतीहै। तबइहभावकोंप्राप्तहोतीहै। त
बकलनारूपमलकोंधारतीहै। अरुविश्यारूपविष

कीवल्लीप्रफुल्लितहोआवतीहै॥ तबआत्मपदकीओर
सावधाननहीहोती॥ जिउजिउउदेहोतीहै॥ तिउतिउमो
हकोंवधावतीहै॥ सोदुःखतृष्णारूपीफलजोकाफलहै॥
अरुतृष्णारूपीकंकराहै॥ जोइनकेसाथप्याररारखता
है॥ तिनकेहिदेरूपीमांसकोंकाटकाटखावतीहै॥ जैसे
वर्षाकालकीनदीमलिनहोतीहै॥ तैसेजोपुरुषबडेई
श्वर्यसंयुक्तहै॥ परतृष्णाकरकेंदीनहोजाताहै॥ अरुजो भी
देखणेविषेनिर्धनदीनभासताहै॥ परअंतरतृष्णातेंर
हितहै॥ तबउहबडाऐश्वर्यवानहै॥ हेरामजीअंततृष्णा जेपुर्ष
रूपीवल्लीतृष्णारूपीघुणकरजोजनकोंखायाहै॥ तिन
कीपुष्परूपहरयावलनहीरहती॥ तृष्णारूपीनदीवि
षेअनेतकल्लोलउठतेहैं॥ अरुतृणोंकीन्याईपुरुषोंकें
बहावतीहै॥ अरुजीवरूपपाषाणकीयांपुतलीयांहैं॥
तृष्णारूपमृडोरतिसकोंनचावताहै॥ सर्वजीवोंकेंअंत
रतृष्णारूपीताणाहै॥ तिसकरपरोएहैं॥ तिसकरबांधे
हूएदुःखकोंपडेपावतेहैं॥ जैसेतृणोंकरअछादायाग
र्तहोताहै॥ हरणकाबालिकतिनकोंदेखकरगहणक
र्लेजागताहै॥ तबगर्तविषेजिउपडताहै॥ हेरामजीऐसा
औरकोऊनही॥ जोइसकेकलेजेकोंकाटलेवे॥ जैसेतृ
ष्णारूपीन्हाकिणइसकाकलेजाकाटलेतीहै॥ तिसक
रदीनहोजाताहै॥ तृष्णाकरकेंभगवानइंद्रकेअर्थको
दीजैसीमूर्तकोंधारकरबलकेद्वारेगया॥ जैसेसूर्यने
तकोंधारकरआकाशविषेभ्रमताहै॥ तैसेतृष्णारूपी
ताणकरजीवभ्रमतेहैं॥ पवनजोचलताहै॥ सोतृष्णाके
रचलताहै॥ अरपहाडतृष्णाकरस्थितभएहैं॥ अरुपृ
थ्वीजगतकोंतृष्णाकरधारतीहै॥ अरतृष्णाकरतीनों
लोकवेष्टितकीएहैं॥ तातेहेराघवतुमतृष्णातेंरहितहो
वणा॥ सजनजगतकोंतृष्णाकरकेंसंकल्पपडेउठतेहैं॥ सो
मनहीपडाउठावताहै॥ अरमननेंभीअवरवस्तकछुन
हो॥ युक्तिसोंनिर्णयकरदेखाहै॥ संकल्पप्रमादकाना

ममन है ॥ जब मन का नाश होवे ॥ तब संकल्प तृष्णा सम
नष्ट होजावेगी ॥ अहंत्वं इदं चित्त वनामत करो ॥ इह मह
मोहमय दृष्ट है ॥ इसकों त्याग कर एकाग्र चित्त आत्मा
कों भावना करो ॥ अनात्म विषे जो आत्म भावना है । सो दु
खों का कारण है ॥ इनकों त्यागे तें प्रसिध ज्ञानवान होवें
गा ॥ अहंत्व भाव अपवित्र नाश नाहै ॥ तां ते तं अपणे स्व
रूप की भावना कर । इह भावना पार भूमिका की है ॥ त
हां संसार का अभाव है ॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे
तृष्णा वर्णनं नाम सर्गः ॥ १५ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे
भगवन इह तुमारे वचन अति गंभीर परम पद दाय
क हैं ॥ तुम कहते हो । जो अहंकार तृष्णा कों मत ग्रहण
करो ॥ जब अहंकार कों त्यागोंगा ॥ तब इह चेष्टा कैसे हो
वेगी ॥ देह का भी त्याग होजावेगा ॥ जैसे वृक्ष स्थंभ के आ
श्रे होता है ॥ स्थंभ वृक्ष कों धारता है ॥ तैसे अहंकार देह
कों धारता है ॥ अहंकार तें रहित देह भी गिर जावेगी ॥ जै
से मूल के कटे तें वृक्ष गिर पड़ता है ॥ तैसे अहंकार
के त्यागे तें कैसे जीवता रहोंगा ॥ तां ते मुझ कों बोध की दृ
ढता के निमित्त कहो ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे कमल
नयन रामजी ज्ञानवानों अहंकार वासना का त्याग की
या है ॥ सो दो प्रकार है ॥ एक का नाम ध्येय त्याग है ॥ दूस
रा नेह त्याग है ॥ इह पदार्थ है मैं इन कर जीवता हों । इह
जो निश्चा है ॥ तिस का त्याग कर विचारतने ए हैं ॥ न मैं प
दार्थ हों ॥ न मेरा पदार्थ है ॥ तिस का अंतहकरण आत्म
का ज्ञा कर शीतल होजाता है ॥ जो कछु क्रिया करते हैं सो
लीला मात्र करते हैं ॥ तिस का नाम ध्येय वासना त्याग है
अरु बालइंद्रीयों कर चेष्टा पड़ी करता है । सो पुरुष जी
वन्मुक्ति कहीता है । तिस का नाम ध्येय वासना त्याग है ॥
अरु जिस पुरुष मन सहित देह का त्याग कीया है । सो इ
स का नाम नेह वासना त्याग है । नेह वासनां विदेह मु
क्ति कहीती है ॥ जिस पुरुष अहंकार जो है देहाभिमान

तिसका त्याग कीया है ॥ अगर संसार की वासना का तौ त्या
ग कीया है ॥ स्वरूप विषे स्थित होकर क्रिया पड़ा क
र्त्ती है ॥ सो जीवनमुक्ति कहीता है ॥ जिसकी सब वास
ना शांति हो गई है ॥ अंतर बाह्य की क्रिया तें रहित है
तिसका नाम नेह त्याग है ॥ सो विदेहमुक्ति जान ॥ अर
जिसनें ध्येय वासना का त्याग कीया है ॥ सो लीलामा
त्र क्रिया कर्त्ती है ॥ सो जीवन्मुक्ति महात्मा पुरुष जेन
क वत कहीते हैं ॥ अरु जिसनें नेह वासनां त्याग करी है
सो विदेहमुक्ति होकर ब्रह्मतत्त्व विषे स्थित भया है ।
हे राघव इह दोनों त्यागी परमपद विषे स्थित होते हैं
देह विषे क्रिया कर्त्ता संताप तें रहित जीवन्मुक्ति संज्ञा
कौं धार्त्ती है ॥ दूसरा विदेहमुक्ति परमपद विषे स्थित हो
ता है ॥ जीवन्मुक्ति के अंतर वासनां का त्याग है ॥ अरु बा
ह्य क्रिया कौं पड़ा कर्त्ता है ॥ राग द्वेष तें रहित प्रवर्त्तता
है ॥ सो जीवन्मुक्ति कहीता है ॥ जिस पुरुष कौं संसार के
पदार्थों की इछा अनिछा नहीं ॥ सर्व कार्यों विषे सुषु
प्त की न्याई अचल वृत्ति है ॥ सो जीवन्मुक्ति कहीता है
हेय उपादेय मैं मेरा जिसके अंतर तें इह कल्पना दूर
हो गई है ॥ सो जीवन्मुक्ति कहीता है ॥ संपूर्ण क्रिया कौं
कर्त्ती हुई दृष्ट आवता है ॥ अरु वृत्ति सुषुप्त की न्याई स्थित
है ॥ अरु सदा जाग्रत रूप है ॥ अरु अंतर तें आकाश की
न्याई निर्लेप है ॥ सो जीवन्मुक्ति सदा पूजणे योग्य है ॥ वा
ल्मीकोवाच ॥ हे भारद्वाज जब इस प्रकार वसिष्ट
जी कहा ॥ तब सूर्य भगवान अस्त हूया ॥ सर्व सभा उ
ठ खड़े हूये । परस्पर नमस्कार करके गए ॥ रात्रि कौं
व्यतीत करके सूर्य की किरणां साथ परस्पर नमस्का
र करके आन बैठे ॥ अपणे अपणे स्थानों पर ॥ ॥ इ
ति उपशम प्रकरणे चित्तविकल्पा उपदेश ना
म सर्गः ॥ १६ ॥ श्रीवसिष्टोवाच ॥ हे रामजी जो पु

रूप विदेहमुक्ति हैं॥ सो हमारी वाणी का विषय नहीं॥ अ
रु जीवन्मुक्ति जो कछु क्रिया कर्म कर्त्ता है॥ तद्यपि अहं
कार तें रहित निरहंकार हो विचरता है॥ सो जीवन्मुक्ति
है॥ बोलते वहे आरु लेवते देष आवता है॥ इदं विषे
सर्व वासनां तें रहित है॥ अरु वर्तमान विषे वर्तता भा
सता है॥ सो जीवन्मुक्ति है॥ हे रामजी जिसके अंतर अ
हं इदं का निश्चय है॥ अरु संसार भावनों को धारता है॥
तिसकों तृष्णा रूप संगल कर बांधा॥ अरु तृष्णा क
र कलंकित जान॥ तातें मैं मेरा सत असत बुधि संसा
र के पदार्थों सो त्याग कर॥ सर्वदा काल जो परम उदार
पद है॥ तिस विषे स्थित होवो॥ बंध मोक्ष सत असत की
कल्पना को त्याग कर सुमेरु की न्यांई अक्षोभित चित्त हो
वो॥ इह जगत भ्रम कर के भासता है॥ तिसकी आस्था तें
रहित आकाश की न्यांई स्थित होवो॥ हे रामजी चार
प्रकार का निश्चय है॥ सो वहु प्रकार के विस्तारों को पा
वता है॥ चरणों तें ले कर मस्तक पर्यंत शरीर विषे आ
त्म बुधि अरु माता पिता कर उत्पत्ति हूया मानते हैं॥
एक इह निश्चय है॥ सो बंधन रूप है॥ अरु दूसरा इह
जो मैं सर्व पदार्थों तें अतीत हों॥ बाल के अग्र तें भी सू
क्ष्म हों॥ साक्षी भूत सूक्ष्म तें सूक्ष्म हों॥ इह निश्चय भी मो
क्ष रूप शांति को देता है॥ अरु तीसरा इह है॥ जेता कछु
दृश्य पदार्थ भासता है॥ सो सब मैं ही हों॥ मैं आत्म रूप
अविनाशी हों॥ इह भी मोक्षदाइक है॥ अरु चौथा इह
है॥ सर्व दृश्य मैं तें ले कर असत रूप है॥ इस तें रहित
आकाश की न्यांई निर्लेप हों॥ इह भी मोक्ष का कारण
है॥ हे रामजी इह चार प्रकार का निश्चय है॥ सो मैं तुझ कों
कहा है॥ तिस विषे प्रथम बंधन का कारण है॥ अरु चार

तीन मोहकी कारण हैं ॥ सो अशुभ भावना करकै उपजते हैं
जिसकों इह निश्चा है ॥ जो सर्व जगत आत्मरूप है ॥ ति
सकों रागद्वेष तृष्णादिक दुःख नहीं देते ॥ सो इस नीति
जानता है ॥ जो अधः ऊर्ध मध्य विषे मैं ही व्यापरहा हों ॥
सर्व मैं ही हों ॥ मुझ तें इतर नहीं ॥ जिसके अंतर इह निश्चा
है ॥ सो संसार के पदार्थों विषे बंधमान नहीं होता ॥ सगु
ण कि त्रैमाया ब्रह्म शिव पुरुष ईश्वर सत तिसी के ना
म हैं ॥ सो ई विज्ञानरूप आत्मा मैं हों ॥ सदा सर्वदा एक आ
त्मा अद्वैत हों ॥ द्वैत नाम किंचित भी नहीं ॥ सदा विद्यमान
सत्ता व्यापकरूप हों ॥ ब्रह्मा तें आदि तृण पर्यंत जेता क
छु जगत जाल है ॥ सो सर्व परपूर्ण आतम तत्व ने रहा है ॥ जैसे
समुद्र विषे तरंग बुदबुदे सब जल स्वरूप हैं ॥ तैसे स
ब जगत जाल आत्म स्वरूप है ॥ सत स्वरूप आत्मा तें इ
तर द्वैत वस्तु कछु नहीं ॥ जैसे स्वर्ण तें इतर भूषण नहीं
पाईता ॥ तैसे आत्मा तें इतर दृश्य नहीं पाईता ॥ द्वैत अ
द्वैत जगत जो भासता है ॥ सो सब आत्मरूप का फुरणा है ॥ सो
ई दृश्य अदृश्य रूप होइ भासता है ॥ इतर कछु नहीं ॥ इस
द्वैत बुधि कों ग्रहण नहीं करणी ॥ द्वैत बुधि कौ त्याग कर
अद्वैत आत्मा विषे स्थित होवो ॥ अरु संसार की जो भेद
भावना भासती है ॥ तिसकों ग्रहण नहीं करणी ॥ इस भूमि
का की भावना भेदरूप है ॥ सो दुःखों का कारण है ॥ इन
कों दूरतें त्यागो ॥ तुम तौ ज्ञानवान हो ॥ हे महात्मा पुरुष द्वै
त कछु संभवता नहीं ॥ सर्वात्म आत्मा एक अद्वैत है ॥ (
निरंतर उदेरूप एक अरु द्वैत तें भी रहित है ॥ सर्वत्र ही
है सर्वकाल ॥ न मैं हों ॥ न जगत है ॥ सर्वत्र ही है ॥ तुमारा जो स्वच्छ रूप
है ॥ सो अनंतात्मा सर्व का प्रकाशक है ॥ सो मैं हों ॥ सर्व का
रणों का कारण विस्तृत रूप सो मैं हों ॥ अपणा आप अ
नुभव रूप ब्रह्ममय भेद भाव तें रहित सो मैं ही हों ॥ एही

अथ नाम
मैं चित वो
जो विज्ञानस्वरू
प मतत्रासतन
भमयहीहों

९२ निष्ठाधारो ॥ अहं अरु इदं कलनाकों त्याग कर अपणे
आपका निष्ठाधारो ॥ सर्व क्रियाकों करो ॥ अहंकारतें
रहित तुम शांतिरूप हो ॥ ॥ इति उपशमप्रकर्णे
चारप्रकारनिष्ठावर्णनं नाम सर्गः ॥ १८ ॥ श्रीव
सिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जिसकों विदामुक्तिरूप है ॥ ऐसे
जो महात्मापुरुष हैं ॥ तिन्हें का इह स्वभाव है ॥ जो असम्य
क दृष्ट देहाभिमान कर नहीं हत होते ॥ सो लीला कर जग
त विषे विचरते हैं ॥ सो जीवन्मुक्ति शांतिरूप अलेप रह
ते हैं ॥ विवेकरूप बन विषे उह विचरते हैं ॥ बोधरूप ब
गीचे विषे स्थित हैं ॥ सर्वतें अतीत पद कों अवलेबने [आसरा] की
या है ॥ अरु पूर्णमासी के चंद्रमावत अंतहकरण शीतल
है ॥ संसार के पदार्थों विषे कदाचित उद्वेगवान नहीं हो
ते ॥ उद्वेग अरु संतुष्टता दोनों ते रहित हैं ॥ हे रामजी जी
वन्मुक्तिपुरुष अयुक्त जगत की समवृत्त कों देखता है ॥ अ
रु परमपद विषे आरूढ होकर अलेप रहता है ॥ अपू
र्ण अंतहकरण शीतज अरु जीवों कों तपता देखता है
अरु स्वरूपतें कछु इतर नहीं देखता ॥ पर व्यवहार की अ
पेक्षा कर जगत कों तपता देखता है ॥ हे राघवजी जिनों ने
चित्त जीत्या है ॥ तिन महात्मापुरुषों की वृत्ति कही है ॥ अरु
जो मूर्ख हैं ॥ जिन अपणा चित्त जीत्या नहीं ॥ सो भोगरूपी
चिकड विषे मग्न हैं ॥ ऐसे गर्दभों के न्याइ हमारे कहि
वत जो ते विषे नहीं आवते ॥ महा अग्नि की ज्वाला रूपी है ॥ अरु उ
ह उस अग्नि के ईंधन हैं ॥ तिस कर उनके चित्त जलगए हैं
तिनकी निंदा करणे कों भी हम योग्य नहीं ॥ हे रामजी पूर्ण
जो ज्ञानवान की दृष्ट कही है ॥ तुम तिसी कों आश्रय करो
विदेस ध्येय वासना कों त्याग करो ॥ जीवन्मुक्ति स्वरूप हो
कर विचरो जगत विषे ॥ अंतर तें संपूर्ण इछा कों त्याग क
र वीतराग निर्वासी होवो ॥ बाह्य तें सर्व कार्य करो ॥ अरु अं
तर तें सर्व कार्यों तें अतीत निर्लेप पद विषे स्थित होवो ॥
ऐसे होकर जगत विषे विचरो ॥ अंतर तें अहंकार कों

त्यागी बाह्यकर्त्ता ऐसें होकर जगत विषे विचरो ॥ बाह्य
क्रिया करो ॥ अंतर तें अहंकार कों त्याग कर आकाश वत नि
र्लेप रहो ॥ आसा रूपी फासी तें रहित होकर जगत् विषे
विचरो ॥ मिथ्या इंद्रजाल की न्याई संसार का वर्त्तणा है ॥ सब
जगत भ्रम मात्र मोह प्रमाद कर कें सत भासता है ॥ जैसे मार
स्थल विषे जल भासता है ॥ तैसे अज्ञान कर कें जगत भासता
है ॥ आत्मा निर्लेप सर्वव्यापक रूप है ॥ तिस सर्वात्मा कों बं
धन कैसे होवे ॥ जो बंधन नहीं ॥ तो मुक्ति कैसे कहीये ॥ आत्मत
त्व के अज्ञान कर जगत भासता है ॥ अरु तत्व ज्ञान कर जग
त लीन हो जाता है ॥ जैसे जेवडी के अज्ञान कर सर्प भासता
है ॥ तैसे आत्मा के जाणे तें जगत भ्रम नष्ट हो जाता है ॥ हे रा
म जी तूं ज्ञानवान हूया है ॥ अपणी स्वच्छ बुधि कर निरहंका
र भया है ॥ आकाश की न्याई निर्मल स्थित हो ॥ जो तूं सत स्व
रूप है ॥ तो एही भावना कर ॥ जो मैं आत्मा हों ॥ इस जगत की
भावना तें रहित हो ॥ इह जो अहं मम भावना अज्ञान प्रमाद
कर कें भासती है ॥ सो आत्मा का संयोग इस साथ कछु नहीं ॥
इन कर तूं काहे कों शोकवान होता हैं ॥ तूं आपणे विषे एक
आत्म तत्व स्वरूप की भावना कर ॥ जो मुझ तें इतर वस्त कछु
नहीं ॥ ऐसी भावना कर ॥ जो मैं आत्मा निराकार निर्विकार हों
इह प्रपंच भ्रांति मात्र है ॥ जो निराकार अजन्मा पुरुष होवे
तिस का संबंध किस साथ होवेगा ॥ शोक का स्थान उह होता
है ॥ जो नाश रूप होता है ॥ सो न कोउ जन्मता है ॥ न मरता है ॥ जो
जन्मता मरता मानीये ॥ तो आत्मा तिन कों भी सत्ता देणे हारा
है ॥ आत्मा इस शरीर के आगें भी था ॥ अरु पाछें भी होवेगा ॥ आ
गें तुमारे बांधव वर्ग बहु बुधिवान हूये हैं ॥ तिन का शोक का
हे कों नहीं कर्त्ता ॥ जैसे उह थे ॥ तैसे इह भी हैं ॥ अरु आगें भी होवें
गे ॥ तो तूं सतरूप हूया ॥ मोह कों किउं प्राप्त हूया है ॥ जो सत स्व
रूप है ॥ तिस का न कोउ बांधव है ॥ न मित्र है ॥ तो तेरे तें शोक क
र्लेयोग्य नहीं ॥ जो तूं ऐसे कहें ॥ अब भी हों ॥ अरु आगें भी हों
वेंगा ॥ तब तेरा संसार नष्ट भया ॥ आपणे प्राकिर्त्त आचार विषे शो
क तें रहित होकर विचरो ॥ संसार के सुखदुःख विषे सम भा

वरहो। सर्वत्र परमात्मा सर्वव्यापकरूप स्थित है॥ इसतें इत
र कछु नहीं। तूं सर्वात्मा स्वच्छ आकाशवत निर्मल विस्तृत
रूप है॥ जगतके पदार्थों नमित्त किंतु सरीरको सुकावता
हैं॥ सर्वपदार्थों विषे एक आत्मा ही अनस्यूत व्यापक है॥
ज्ञानवानको सदा ऐसे ही भासता है॥ हे रामजी इह जो सं
सरनरूप संसार भासता है॥ सो प्रमाद अज्ञानकर भास
ता है॥ अरु तूं तो ज्ञानवान श्रोति बुद्धि है॥ अरु इह संसार
भ्रममात्र है॥ स्वप्नभ्रमकी न्याई सर्व जगत जड है॥ सर्वत्र
सर्वरूप सर्वका ईश्वर आत्मा ही स्थित है॥ तिस सत्ताका आ
भास संवेदन फुरती है॥ तिसकर नानाप्रकारका जगत हो
भासता है॥ जैसे आकाश विषे दूसरा चंद्रमा भासता है॥
अरु है नहीं॥ तैसे बोधव मित्र जगत भासता है॥ सो है नहीं॥
जैसे ज्ञानवान जीवन्मुक्ति विचरते हैं॥ जगतको असत जा
न कर॥ तैसे तुम भी विचरो॥ ऐसे जो ज्ञानवान पुरुष हैं
सो किसी संसारके पदार्थकर शोकवान नहीं होते॥ अ
रु किसी पदार्थको देखकर हर्षवान नहीं होते॥ आका
शकी न्याई आत्माको व्यापक निर्लेप देखते हैं॥ ॥ इ
ति उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तिवर्ननं नाम सर्ग
॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इस प्रसंग ऊप
र एक इतिहास पुरातन कह्या है॥ भाईयोंका॥ ॥ अथएक
पापुन्यपावनकी॥ छोटे भाईको बडे भाई कहा है॥
एक मुनके दो पुत्र थे॥ इह कथा बंध अरु मोक्षकी क
लनाकौं निवृत्त करनेहारी है॥ हे रामजी इस जंबूद्वीपके
किसी स्थान विषे महेंद्र नाम एक पर्वत है॥ तहां एक क
ल्पवृक्ष है॥ तिनकी छाया देवते किंनर आन बैठते हैं॥
तिस ऊपर देवते साम वेदका धुन करते हैं॥ गायन कर
ते हैं॥ किसी ओर जलकर पूर्ण मेघ विचरते हैं॥ कहूं क
ल्पवृक्ष हैं॥ अरु गंगाजीका प्रवाह चलता है॥ स्वर्णके क
मलों कर सुंदर तलाव हैं॥ तहां दीर्घतपा मुनीश्वर हो
त भया है॥ तप की मानो मूर्ति स्थित था॥ सो मुनि स्त्री स

हितगंगाजीकेतटपरशोभताभया।तिसकेदोपुत्र
महासुंदरचंद्रमाकीन्यांईतिनकामुख।पुन्यअरपा
वनतिनकानामथा।तिनोंसहिततटपररहणेलागा॥
जबकेताकालव्यतीतभया॥तबपुन्यनामजोपुत्रथा
सोज्ञानवानहोतभया॥अरपावनअर्धप्रबुधभया।
सोपुन्यआर्बलाकरकेभीअरुगुणोंकरभीपावनसें
अधिकभया॥अरपावनबालिकअवस्थाविषेरहा
अरुपुन्यज्ञानवानभया।जबकेताकालव्यतीतभ
या॥तबदीर्घतपाकासरीरजर्जरीभूतभया॥अरचि
त्तकौंदेहतेंविरक्तकरतभया॥अर्थइहजोसरीरकौं
त्यागकरविदेहमुक्तिहोणेकीइछाकरी॥तबदीर्घ
तपाकापुर्यष्टकाकलनारूपसरीरकौंत्यागकीया।
अचेतचिन्मात्रसत्तास्वरूपविषेस्थितभया॥तब
मुनीश्वरकीस्त्रीभरताकासरीरप्राणोंतेंरहितदेख
करचिरपर्यंतजोयोगकाआरंभकीयाथा॥तिसकर
आपणेसरीरकौंत्यागतीभई॥प्राणपवनकौंवसक
रसरीरकौंत्यागदीया॥सरीरकौंत्यागकरभरताकेप
दकौंप्राप्तभई॥जबदोनोंविदेहमुक्तिभए॥तबपुन्य
जोवडापुत्रथा।सोतिनकेदेहकर्मविषेसावधानहू
या।कर्मकरणेलागा॥अरपावनमातापितातेंरहितदुः
खपावणेलागा॥शोककरचित्तव्याकुलहोगया॥जब
पुन्यमातापिताकीक्रियाकरचुका॥तबपावनजोशो क
करव्याकुलपडाथा॥तहांजास्थितभया॥शोकसहित
पावनकौंदेखकरकहतभया॥पुन्योवाच॥हेपुत्र
इसशोकघनकौंकिउंप्राप्तभयाहैं॥जोवर्षाकालकेप्र
वाहवतआंसूंकाप्रवाहचल्याजाताहै॥तूंऐसारुदन
करताहैं॥हेबुधिवानकिसकाशोककरताहैं॥तेरामाता
पितातोआपणेआत्मपदकौंप्राप्तभएहैं॥सोईसर्वजीवों
कास्थानहै॥अरसोईस्वरूपज्ञानवानोंकाहै॥यद्यपिस
र्वकाआपणाआपस्वरूपहै॥तोभीज्ञानवानोंकौंइसप्रका

र भासता है ॥ अज्ञानीयों कों इस प्रकार नहीं भासता । सो
तौ उह ज्ञानवान अपणे स्वरूप कों प्राप्त भए हैं ॥ तिस
का शोक तूं किस निमित्त करता हैं ॥ इह भावना तु
जे ब्रीथी है ॥ मोक्षदायक शोक करता है ॥ सो तूं किंउ नहीं
करता ॥ अर जो शोक कर लेया पुनहि ॥ तिस का शोक
किंउ करता हैं ॥ न उह तेरी माता थी ॥ न उह तेरा पिता था
अर न तूं उस का पुत्र था ॥ अर माता पिता तेरे केई सह
स्र भए हैं ॥ अर केई तेरे पुत्र होगये हैं ॥ इस आरण्य बना
विषे केई वार तूं उनका पुत्र हूया हैं ॥ अर केई अनेक
तेरे पुत्र हूए हैं ॥ केई अनेक तेरे पिता हूए हैं ॥ तूं उनका
पुत्र हो होकर मर गया हैं ॥ जो तूं माता पिता के स्नेह क
र शोक करता हैं ॥ तो अवर तेरे सहस्र माता पिता होग
ए हैं ॥ तिन का शोक किंउ नहीं करता ॥ जो इस जन्म बांध
वों का शोक करता हैं ॥ तो उनों का भी कर ॥ हे महाभाग्य इ
ह जो तुझ कों प्रपंच दृष्ट आवता है ॥ सो जगत नाम है ॥
अर परमार्थ तें न जगत है ॥ न मित्र बांधव हैं ॥ इह दृष्ट प
भ्रम मात्र है ॥ इस कों अंतर तें त्याग दे ॥ ॥ इति उप
शम प्रकरणे पावन बोधनं नाम सर्गः ॥ १२ ॥ पु
त्रोवाच ॥ हे पुत्र केई माता केई पिता केई बांधव हो
हो कै नष्ट हो गए हैं ॥ जैसे वायु कर धूड़ के किणके उ
डते हैं ॥ तैसे न कोई मित्र है ॥ न बांधव है ॥ सून भौंति रा
प है ॥ तिस विषे जैसी जिनकी भावना फुरती है ॥ तैसा हो
भासता है ॥ अपणे मन के संकल्प कर माता पिता आ
दिक संज्ञा कल्पी है ॥ जहां बांधव की भावना होती है ॥ त
हां बांधव हो भासता है ॥ जहां औरु की भावना होती है
तहां अवर हो भासता है ॥ अर विद्यमान सर्वदा एक आ
त्म तत्व स्थित है ॥ तिस विषे अपणे अर पराए की कल्प
ना कोउ नहीं ॥ जेते कछु देहादिक हैं ॥ सो सभ कल्पना
मात्र हैं ॥ तिस विषे अहंकार कों न है ॥ चित्त कों न है ॥ बु
धि कों न है ॥ परमार्थ दृष्ट कर देखीए ॥ तो कछु उपजा

नहीं॥ अरु सरीर कर देखीये॥ तो सर्व सरीर पांचों तत्वों
के हैं॥ तिन विषे चैतन्य है॥ सो भी एक है॥ तिस विषे अ
पणे कौं न अपर पराया कौं न है॥ इस भांम इष्ट कौं त्याग
कर॥ अर तत्व का विचार कर। जो माता पिता के न मित्र
किंतु शोकवान हूया हो॥ बहुत कमलों संयुक्त ताल
है। तहां तूं हस्ती का पुत्र था। तिन हस्ती बांधवों का शोक
किंउ नहीं कर्ता। वहि बन विषे तूं वृक्ष हूया॥ तेरे साथ पत्र
फूल फल थे॥ तिन का शोक किंउ नहीं कर्त्ता। बहुड
वहि पहाड की कंदरा विषे तूं सिंह हूया। तहां तेरे बहु
त बांधव हूये॥ तिन का शोक किंउ नहीं कर्ता। बहुड
तूं नदी विषे मछ हूया॥ तिन विषे तेरे बांधव थे। तिन का
शोक किंउ नहीं कर्ता॥ दसारण देश विषे तूं काकबोत
र हूया॥ तिन का शोक किंउ नहीं कर्ता। तुषार देश वि
षे तूं राजा का पुत्र हूया। बहुड बन विषे काक हूया।
विंध्याचल पर्वत विषे पापल हूया। मंदराचल पर्वत वि
षे बांतर हूया। कोशल देश विषे श्रोलण हूया। बंग दे
श विषे तितिर हूया। तिरगत देश विषे घोडा हूया। हस्ती
हूया। बहुड बैल हूया। तलाव विषे कमल के फूलों पर
भ्रमरा हूया। सो तूं मेरा भाई है॥ जंपदीप विषे अनेक
वार उत्पत हूया है॥ जैसे वासना तुम करी है। तैसा जन्म
तुम पाया है॥ तिस जन्मों के बांधव किस किस का शोक क
रेंगा। जैसे उह बांधव थे। तैसे इह माता पिता भी जान॥ अ
रु मेरे भी बहुत बांधव हूए हैं॥ तिन सभनों कौं स्मरण क
र्ता॥ अब मुझ कौं अद्वैत ज्ञान हूया है॥ हे भाई त्रिगध देश
विषे मैं तोता हूया॥ बहुड काक हूया हो। बलद हूया हो
वृक्ष हूया हों। इस बन विषे ऊठ हो कर विचरता हो। पौंड
र देश विषे राजा हूया हों। पहाड की कंदरा विषे विघ
याड हूया हों। तहां तूं मेरा वडा भाई था। बहुड मृग हूया
हों। सो अब तेरा वडा भाई हों॥ इस प्रकार कर्मों के अनुसा
र वासना कर कै अनेक जन्म पाए हैं॥ तुमारे हमारे अनेक

जन्मोंके भाई बांधव हूए हैं॥ तिनका शोक किउ नहीं क
र्त्ता॥ इस दुःख निवर्त्तके अर्थ आपणे स्वरूपकों स्मर
ण कर॥ सो स्वरूप तेरा नित परमानंद जन्म मरण तें
रहित है॥ तिस विषे स्थित हो॥ तुजकों न दुख है॥ न सुख
है॥ न जन्म है॥ न मर्ण है॥ न तेरा कोई माता है॥ न पिता है॥
तूं अद्वैत आत्मा स्वरूप हैं॥ और किसी साथ तेरा संबं
धकछु नहीं॥ काहेतें जो तुजतें इतर कछु हे नहीं॥ अरु
जो अज्ञानी हैं॥ सो सुख दुख पडे भोगते हैं॥ अर जो ज्ञा
नवान पुरष हैं॥ सो केवल साक्षी भूत हैं॥ कर्त्ते हूये भी अ
कर्त्तारूप हैं॥ तातें ज्ञानवान देह इंद्रीयों कर कर्म क
र्त्ता भी अकर्त्ता हैं॥ इष्ट अनिष्ट विषे राग द्वेषतें रहित व
र्त्तता॥ अर स्वछ निर्मल आत्मपद कर अकुलित रूप है॥
जिसका रिदा पुत्र कलत्रादिकों के स्नेहतें रहित है॥ सो
सर्व इछा अहंकारकों त्याग कर अपणे स्वरूप विषे
स्थित होता है॥ हे भाई तूं परम ब्रह्म स्वरूप हैं॥ सो कि
सका कर्त्ता हैं॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे मोक्षो
उपाये पावन विज्ञान प्राप्तं नाम सर्गः॥ २० ॥ श्री
वसिष्टोवाच॥ हे रामजी जब इस प्रकार पुन्यनें पावन
कों उपदेश कीया॥ तब पावन बोधकों प्राप्त हूया॥ जैसे
सूर्य के प्रकाश कर पृथवी प्रकाशमान होती है॥ तमस
भी नष्ट हो जाता है॥ तैसे पावन बोधसें प्रकाशवान भ
या॥ तब दोनों ज्ञात ज्ञेय होकर वन विषे विचरणें लागे॥
निरिछित आनंदित पुरुष चिरकाल पर्यंत विचरते
भए॥ बहुड दोनो विदेहमुक्ति हूए॥ निर्वाण पदकों पा
वते भए॥ जैसे तेलतें रहित दीपक निर्वाण हो जाता है
तैसे प्रारब्ध के क्षीण हूए दोनो विदेहमुक्ति हूए॥ हे रा
मजी जैसे उह दृश्यके स्नेहतें रहित होकर विचरे हैं॥
तैसे तुम भी दृश्यके स्नेहतें रहित होकर विचरो॥ इस
मिथ्यारूप संसार विषे किसका इछा करीये॥ किसका

त्यागकरीये॥ जेताकछुजगतहै॥ सोचित्ततेंउत्पन्नभया
है॥ चित्तकेनष्टहूए संसारनष्टहोजाताहै॥ जैसेलक
डीयोंकेपावणेकरअग्निबढतीजातीहै॥ अरुलक
डीयांतेरहितशांतिहोजातीहै॥ तैंसेचित्तकीवासना॰
करकेसंसारबढताजाताहै॥ चित्तकीवासनांतेंरहित
शांतिहोजाताहै॥ हेरामजीध्येयवासनात्यागकरआ
रूढहोवो॥ करुणादयासंयुक्तहोकरविचरो॥ रागद्वे
षतेरहितहोकरस्थितहोवो॥ इहमैंतुजकोंब्रह्मलक्ष
मीकहीहै॥ जिनकेपासविवेकबुधिहै॥ तेपुरुषव्यव
हारकरतेंभीदुःखकोंनहींपावते॥ तांतेतुमविवेकबु
धिकरविवहारविषेविचरो॥ तबदुखमोहकछुनपा
वोगे॥ अपणावैराग्यसतशास्त्रोंकाविचारसंतोंकेसंग
करदुःखोंकानाशकरो॥ तबआत्मपदकीप्राप्तहोवै
गी॥ सोआत्मानंदतीनलोकोंकेरत्नोंकाभंडारहै॥ सोवै
राग्यअभ्यासकरप्राप्तहोताहै॥ तबलगइहपुरुषज
न्ममरणकोंपावताहै॥ जबलगमनतृष्णातेंशांतिन
हींहोता॥ अरजबआत्मविवेककरबुधिपूर्णहोती
है॥ तबसर्वजगतआत्मरूपभासताहै॥ जैसेसरतका
लकाआकाशमेघतेंरहितनिर्मलहोताहै॥ तैसेइछा
तेंरहितपुरुषनिर्मलहोताहै॥ तिसकेजोजनोंकास
मुद्रगौकेचर्णवतजेघणासुगमहोताहै॥ अरमहा
कल्पअर्धनिमेषवतहोजाताहै॥ जोतृष्णातेरहितचि
त्तहै॥ सोऐसापराक्रमीहोताहै॥ हेरामजीऐसाशीतल
चंद्रमाभीनहीं॥ अरुऐसाशीतलहिमालापर्वतभी
नहीं॥ अरुऐसाशीतलचंदनभीनहीं॥ जैसेतृष्णातेंर
हितचित्तशीतलहोताहै॥ पूर्णमासीकाचंद्रमाअरक्षी
रसमुद्रभीऐसानहींशोभता॥ जैसाइछातेंरहितपुरु
षशोभताहै॥ जैसेचंद्रमाकोंराहकेतआछादलेताहै॥
तैसेआसारूपीपिशाचणीपुरुषकोंमलिनकरतीहै॥

तांतें आत्मधैर्यकों धारो॥ जो चित्तवृधताकों नप्राप्त होवे॥
उत्तमधैर्य कर जब चित्त नष्ट होता है॥ तब अविनाशी
पदकों प्राप्त होता है॥ हे रामजी उत्तमरिदे रूप जो है त्र
हे॥ तिस विषें की चित्तवृत्त स्थित होती है॥ तब आसारूपी
वल्ली नष्ट हो जाती है॥ जब तुमारा चित्त वृत्ततें रहित
अचित्त होवे॥ तब मोक्षरूप विस्तृत पदकों पावेगा॥
जहां उजे पंखी तृष्णारूपी विचरते हैं॥ तहां उघाड हो-
ता है॥ विवेकआदिक जनन्तासें रहित हो जाता है॥ तां-
तें तुम चित्तवृत्ततें रहित होवो॥ ऐसे होकर विचरोगे॥
तब अचित पदकों प्राप्त होवोगे॥ जैसे चित्तकी वृत्त फु-
रती है॥ तैसा तैसा जीवका रूप होजाता है॥ इसकारण-
तें चित्त उपशमके निमित्त तुम उसी वृत्तकों धारो॥ जि-
सकर आत्मपदकों प्राप्त होवो॥ हे महात्मापुरुष जिस-
कों संसारके पदार्थोंकी इच्छा उपशम भई है॥ अर
जिसका चित्त भावाभावतें मुक्ति भया है॥ सो उत्तम आ-
त्मपदकों पावता है॥ ॥इति उपशमप्रकरणे मोक्षो-
उपाए तृष्णाचिकित्सावर्ननं नाम सर्गः॥ २१ ॥श्री-
वसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इह मैं तुजकों उपदेश कीया
है॥ इसका विचार करो॥ बलराजावत॥ अथ कथा
बलराजाकी॥ तत्वमिथ्याके विचारकर बुधि अरु वे-
चनोंकर निर्मल ज्ञानकों प्राप्त होवो॥ श्रीरामोवाच॥
हे भगवन सर्वधर्मोंके वेत्ता तुमारे प्रसादतें जो कछु जा-
नणे योग्य है॥ सो मैं जाण्या है॥ अरु पावणे योग्य है॥ सो
पाया है॥ अरु निर्मल आत्मपदकों प्राप्त भया हों॥ भ्रम-
रूपी मेघतें रहित सरतकालके आकासवत निर्मल
चित्त भया हों॥ अरु मोहरूपी अंधकार नष्ट भया है॥ आ-
त्मरूपी अंमृतकर पूर्ण भया हों॥ अरु तुमारे अंमृत-
रूपी वचनोंकों पान करतीमें तृप्त नहीं होता॥ अरु जिस
प्रकार राजा बलकों विज्ञान प्राप्त भया है॥ सो बोधकी वृ-

जब

धताके नमित्तमुजकों कहो ॥ नम्रीभूत शिष्यकों कहतेहूं
एवंहि खेदकों नहीमानते तांते कहूं ॥ श्रीवसिष्ठोवाच
हे राघव बलका जो उत्तम वृत्तांत है ॥ सो मैं कहता हों सुण
तिसकर निरंतर बोधकों पावेंगा ॥ हे रामजी इस जगत्कूं
किसी कोण विषे पाताल कुहर सो प्रसिध है ॥ इस लोक के
अधह पृथ्वी विषे स्थित है ॥ तिस पाताल विषे बलराजा
रहता भया ॥ महा क्षीरसमुद्र की न्याई सुंदर उजल स्थान
है ॥ कहूं महासुंदर सघन नागकन्या विचरती हैं ॥ अर्थ
इह जो बड़ूत हैं ॥ कहूं विषधर सर्प विचरते हैं ॥ जिनके सह
स्रांही सीस हैं ॥ कहूं दैत्योंके पुत्र विराजते हैं ॥ कहूं सुंद
र सुखके स्थान हैं ॥ अरु कहूं जीवोंके समूह जलते हैं ॥ नर
कों विषे ॥ कहूं सुगंधके स्थान हैं ॥ सप्तपाताल हैं ॥ सप्तमोंके
बीच जीव स्थित हैं ॥ कहूं रत्नोंकर खचित स्थान हैं ॥ कहूं भ
गवान कपलदेव बैठे हैं ॥ जिनके चरणोंको देवता अरु दै
त्य सेवते हैं ॥ कहूं रत्नोंकर खचित बाग हैं ॥ ऐसा विभूतवा
न दानव विरोचनका पुत्र राजा बल होत भया है ॥ जिसने
सन देवते विद्याधर किंनर लीलाकर जीते हैं ॥ अरु ती
नों लोक अपणे वसकर छोड़े हैं ॥ अरु टहल एवतकर
राध्ये हैं ॥ सर्व देवतोंका राजा जो इंद्र है ॥ सो तिसके चरणोंधो
वणे की वांछा राखता है ॥ अरु तीनों लोकों विषे जो जातजा
तके रतन हैं ॥ सो सब तिसके विद्यमान रहते हैं ॥ सर्व सरीरों
का रक्षा करणहारा अरु सर्व धर्मोंके धर्मकों धारणहारा
विष्णुजी जिसका द्वारपाल है ॥ ऐरावत हस्ती जिसके गंड
स्थलसों मद पड़ा चिकता है ॥ सो इंद्रका हस्ती तिनकी वा
णी सुणकर भयवान होता है ॥ जैसे मोरकी वाणी सुणकर
सर्प भय पावते हैं ॥ तैसे इंद्रका हस्ती उनकी वाणी सुणक
र भय पावता है ॥ जैसे प्रलयकाल विषे द्वादश सूर्यों कर
समुद्र कड़ने लागता है ॥ अरु जिसकी चकर दृष्टकर कुला
चल पर्वत नम्रीभूत हो जावे ॥ जैसे फलकर पूर्ण वृक्ष निव
जाता है ॥ तैसे लीलाकर के जिसने अनेक भवनोंको विस्ता

मद

ऐसे उनका तेज

रसंयुक्त जीत्या है ॥ त्रिलोकी कों जीत कर दश कोटि वर्ष
पर्यंत राजा बलि राज करते भया ॥ युगों के समूह जिसनें व्य
तीत हूए देखे हैं ॥ अरु त्रिलोकी के भोग भोगे हैं ॥ जब भो
गों तें उद्वेगवान भया ॥ सुमेर के शृंग की न्याई ऊंचा जो रखा
है ॥ तिस विषे जा स्थित भए ॥ एकला तहां बैठ कर संसार
की स्थिति कों चिंतवता भया ॥ जो इस बड़े चक्रवर्ती राज सें
मुज कों क्या प्रयोजन है ॥ जद्यपि त्रिलोकी का राज भी बड़ा
है ॥ ऐश्वर्य रूप है ॥ तो भी क्या है ॥ इस विषे मैं भोग भोगता
रह्या हों ॥ पर शांति तो न भई ॥ इह भोग तो आपात रमणीय
हैं ॥ उपज कर बहुड़ नाश हो जाते हैं ॥ भोगों कर तौ शांति सु
ख प्राप्त न भया ॥ बहुड़ बहुड़ उही व्यवहार करणे ॥ लज्जा
का कारण है ॥ बहुड़ उही स्त्री आलिंगन करणी ॥ बहुड़ भो
जन करणे ॥ अरु पुष्पों की शय्या पर शयन करणे ॥ क्रीडा क
रणी ॥ एक मर्म वंतों कों लज्जा का कारण हैं ॥ अर्थ इह जो हस
णे योग्य है ॥ ऐसी क्रिया हसणे का कारण है ॥ जीवों के चित
विषे जो संकल्प विकल्प पड़े उठते हैं ॥ जैसे समुद्र विषे तरं
ग पड़े उठते हैं ॥ अरु मिट जाते हैं ॥ तैसे संकल्प विकल्प उ
ठते हैं ॥ अरु मिट जाते हैं ॥ सो उन्मत्तों की न्याई जीवों की चेष्टा
है ॥ ए तो हासी योग्य बालिकों की लीला है ॥ इस विषे भोगों तें
इतर कछु नहीं पाईता ॥ जो अविनाशी सुख होवे ॥ तिस की
शीघ्र ही चिंतवना करों ॥ ऐसे जान कर कहणे लागा ॥ बलि
जो है असुरों का राजा आपणे मन विषे जगतों कों नाशवंत
जान कर तिसी क्षण विषे स्मरण करणे लागा ॥ जो प्रथम भ
गवान विरोचन सों मैं पूछ्या था ॥ सो कैसा पिता विरोचन है ॥
जो आत्मतत्व का ज्ञाता था ॥ अरु जगतों का आदि अंत जि
सनें देख्या था ॥ सो तिस सों मैं प्रश्न कीया था ॥ हे भगवन महा
त्मा पुरुष जहां सर्व दुख सुखों का अंत हो जावे ॥ अरु सर्व
भ्रम नष्ट हो जावे ॥ सो कौन स्थान है ॥ मुज कों कहो ॥ जहां मन
का मोह अतिशय कर शांति हो जाता है ॥ अरु सर्व इच्छा तें मु
क्ति हूवीता है ॥ राग द्वेष तें रहित जिस विषे विश्राम पईता

हे॥ कबहूं चोनकूं नहीं आसकूवीता॥ हे तातकौनपद है
जिसके पाएतें अवरपावणा नहीं रहता॥ सर्वपावणेते
पुरूषतृप्त होरहता है॥ अरजिसका दर्शन देखणेते अ
रदेखणा नहीं रहता॥ हे तात जो सुंदर विस्तीर्णपद है॥
सोई मुजकों कहो॥ जिसविषे मैं स्थितहूया॥ मैं चिरंकाल
आनंदविश्रामपावौं॥ ॥इति श्रीमहारामायणेमो
क्षउपायेउपशमप्रकरणेविरोचनवचनस्मरण
नेनामसर्गः॥ २२ ॥ विरोचनोवाच॥ हे पुत्र एक अ
तिविस्तीर्णविपुल देशकोटर है॥ जिसविषे अनेक त्रि
लोकीयां भासती हैं॥ अरूजहां कछु है भी नहीं॥ न पृथ्वी
है॥ न जल है॥ न अग्नि है॥ न पवन है॥ न आकाश है॥ न चंद्र
मा है॥ न सूर्य है॥ न लोक है॥ न देवता है॥ न भूत राक्षस पिसा
च है॥ न दैत्य है॥ न ऊर्ध्व है॥ न अधः है॥ न मध्य है॥ न तम है॥ न
प्रकाश है॥ न अहं है॥ न त्वं है॥ न ब्रह्मा है॥ न विष्णु है॥ न रूद्र
जी है॥ एकही अद्वैत है॥ सो नानंगका ॥ कै प्रकाशको धार
ण हारा॥ अरसर्वका कर्त्ता सर्वव्यापक सर्वरूप है॥ सो तद्धर्मी
भावसों स्थित है॥ तिसनें सर्वमंत्रीसहित एक मंत्री कल्पि
त कीया है॥ सो मंत्री कैसा है॥ जो न बणे तिसकों भी अहीं ब
णावता है॥ अरजो बणे तिसके नबनावणेको भी समर्थ है॥
आपतें कर्णेकों समर्थ कछु नहीं॥ केवल राजाके आश्रे स
र्व कार्यों कों कर्त्ता है॥ जद्दिप आप जड है॥ तो भी राजाके बल
कर चैतन्य कर्त्ता ज्ञाता होता है॥ एकही सर्व कार्यों कों कर्त्ता है
तिसका जो महीपत राजा है॥ सो एकांत विषे बैठा रहता है
अपणे आपविषे स्थित रहता है॥ बलोवाच॥ हे प्रभो
आधिव्याधदुखसों रहित जो प्रकाशवान है॥ सो कौन है॥
अरप्राप्त किससाधनकर होता है॥ अर आगे किसने पाया
है॥ अर ऐसा मंत्री कौन है॥ अर महाबली वह राजा कौन है
जो जगतजालोंसंयुक्त है॥ अर सभतें निर्लेप है॥ हमों कर भी
पाया नहीं जाता॥ हे देवत्योंके भयदायक ए तो अपर्व आश्च

नतुमोनेंकहाहै॥ जोआगेंश्रवणभीनहींकीया॥ मेरेहृद
याकाशविषेसंसेरूपबदलउदेहूयाहै॥ सोवचनरूपी
पवनकरनिवर्तकरो॥ विरोचनोवाच॥ हेपुत्रउहरा
जोआपतेआपविषेस्थितहै॥ सर्वकारणोंकाकारणउंह
भगवानहै॥ सोअनेकलाखोंदेवतासों और असुरकेगणोंक
रहणेभीवसनहींहोता॥ यमकुबेरसहस्रनेत्रइंद्रहै॥ ति
सकेभीवसनहीहोता॥ असुरोंकरभीनहींजीत्याजाता॥
मूसलवज्रचक्रगदाआदिकखड्गकरभीनहींजीत्या
जाता॥ अरुतिसपरचलाएशस्त्रकमलफलवतकुंठि
तहोजातेहैं॥ जैसेपहाडपरकमलचलायाकुंठितहोजा
ताहै॥ अरुमंत्रीभीसस्त्रअस्त्रोंकरवसनहींआवता॥ व
रूपुधोंकरभीवसनहीआवता॥ देवताअरुदैत्यतिस
नेंसभनकोंसर्वदावसकीयाहै॥ अरुविष्णुपर्यंतदेवता
भीअरुहिरण्यकशिपआदिकअसुरमारडारेहैं॥ जै
सेप्रलैकालकापवनसुमेरकेकल्परवृक्षोंकोंगिडादेता
है॥ तैंसेनारायणतेंआदिदेवताकोंभीवसकीयाहै॥
जैसेआकाशटोयेविषेभीबाहोजाताहै॥ तैंसेनाराय
णभीप्रमादकरकेंत्रिलोकीकोंवसकरराजाकीन्याईस्थि
तहै॥ सुरअसुरोंकेसमूहतिसीकरनासतेहैं॥ जदिपगु
णगुणोंतेंरहितहै॥ अरजोदुष्टक्रोधहै॥ सोभीतिसकर
उदेहोताहै॥ देवतादैत्योंकेसमूहबडेबडेउभाव
ताहै॥ सोतिसकाक्रीडाहै॥ ऐसेमंत्रोसंयुक्तमंत्रीहैं॥ हेपु
त्रजबतिसकेराजाकोंवसकरीये॥ तबतिसमंत्रीकों
जीतणासुगमहोताहै॥ राजाकेवसकीयेविनांमंत्रीवस
नहींहोता॥ कबहूंअंतररहताहै कबहूंबाहिरजाता
है॥ जिसकालविषेराजाकीइछाहोतीहै॥ जोमंत्रीअपणे
कोंजीतो॥ तबयतनविनांजीतलेताहै॥ ऐसाबलीमंत्रीहै
तिसकरतीनोंजगतउच्यासकोंप्राप्तहोतेहैं॥ वैसामंत्री

हे॥ मानों सूर्य हे॥ तिसके उदे हूये त्रिलोकी रूपी कमलों
की खाण विगासकों प्राप्त होती है॥ अरु तिसके लीन
हूए जगत रूपी कमल लीन होजाते हैं॥ हे पुत्र जो जीत
णे की तुमकों शक्ति है॥ तो तूं पराक्रमवान है॥ एकत्र बु
धि कर॥ कैसी बुधि जो मोह तैं रहित होवे॥ तिसकर इन
के जीतणे कों समर्थ होवेंगा॥ तब तूं धीर्यवान सुं देख
ता हैं॥ काहे तें जो तिसके जीतणे सों जो नहीं जीत्या जाता
तिस पर भी जीत पईती है॥ अरु जो तिसकों नहीं जीत्या
अवर सभ लोक जीत्या है॥ तो भी जीत्या अजीत्या है॥ तां
ते जो आनंद सुख चहता हैं॥ जो नित अविनाशी सुख है
तब तिसके जीतणे न मित यतन सों स्थित हो॥ बदि कष्ट
कर तिसकों वश कर॥ सर्व जो देवता अरु दैत्य हैं॥ जो य
क्ष नाग मानुष हैं॥ अरु महासर्प किंनर संयुक्त तीनों लो
क विषे बली हैं॥ तो भी सर्व और तें विना यतन वश होजा
ते हैं॥ तां ते तूं तिसी कों वश कर॥ ॥ इति श्रीयोहउ
पाण उपशमप्रकरणे बलिवृत्तांते विरोचनगाथा
नामसर्गः॥ २३॥ बलिरुवाच॥ हे भगवन किस उपाव
कर तिसकों जीतें॥ अरु ऐसा वीर्यवान मंत्री कौन है॥ इ
हस नहीं वृत्तांत मुझकों कहो॥ विरोचन उवाच॥ हे पु
त्र स्थित हूए कों भी त्यागणे योग्य है॥ ऐसा मंत्री जिस उपा
व कर जीतीये सो सुण॥ जब राजा का दर्शन कीया तब मं
त्री भी वश हो जाता है॥ तब तिस मंत्री कों वश कीये तें राजा
का दर्शन होता है॥ जब लग राजा कों नहीं देख्या॥ तब ल
ग मंत्री वश नहीं होता॥ अरु जब लग मंत्री कों वश नहीं की
या॥ तब लग राजा का दर्शन नहीं होता॥ राजे के देखे वि
ना मंत्री कों जीतणा कठिन है॥ मंत्री कों जीते विना राजा का
देखणा कठिन है॥ तिसकारण तें दोनों का एक वार अभ्या
स कराये॥ राजा का दर्शन अरु मंत्री का जीतणा अपणे पु
रुषार्थ यतन कर सने सने अभ्यास सों होता है॥ जब तूं अ

भ्यास करैंगा॥ तब तिस देश कों प्राप्त होवेंगा॥ इह अभ्या
स का फल है॥ हे दैत्यराज जब तिस कों पावेंगा॥ तब रंच
क भी कलनी तुझ कों न रहेगा॥ सर्व यतनों तें शांति हो जावे
गा॥ नित प्रफुल्लित प्रसन्न चित्त रहेंगा॥ जो साधजन हैं॥ सो
सर्व संशयों तें रहित तिस देश विषे स्थित होते हैं॥ हे पुत्र
सुण जो इह देश कौन है॥ देश नाम मोक्ष का है॥ जहां सर्व
दुख नाश हो जाते हैं॥ अरु राजा तिस देस का आत्म भग
वान है॥ जो सर्व पदों तें अतीत है॥ तिस बुधिवान राजे मं
त्री मन कों कीया है॥ सो मन मणम कों पाकर सर्व ओर तें
विश्वरूप भया है॥ जैसे मृतका को पिंड घट भाव कों प्रा
प्त होता है॥ जैसे धूम बदल रूप कों धारती है॥ तैसे मन वि
श्वरूप धारती है॥ तिस मन के जीतणे कर सर्व विश्व पर
जीत पईती है॥ पर मन कों जीतणा कठिन है॥ अरु युक्तों
कर वश होता है॥ बलीवाच॥ हे भगवन तिस मन के
वस करणे की युक्त कहो॥ जिस युक्त कर दारुण मन कों
जीतों॥ विरोचनोवाच॥ हे पुत्र शब्द स्पर्श रूप रस गं
ध जो विषय हैं॥ तिन की प्रतिभा जो रस है॥ सो सर्व या सर्व
ओर तें सर्व प्रकार आस्था त्यागणी॥ अर्थ इह जो नाश
वंत भ्रमरूप जानणा॥ इह मन के जीतणे को परम युक्त है
मन रूपी हस्ती जो विषयों रस मद सों माता है॥ सो इस यु
क्त सों शीघ्र ही वश होता है॥ पर अपणे अभ्यास कर सु
गम प्राप्त होता है॥ तां तें अभ्यास कों युक्त सहित आको क
रो॥ जब लग इन विषयों तें पुरुषों कों विरक्तता नहीं उप
जती॥ तब लग संसार रूप अटवी विषे भ्रमते रहते हैं॥
सो वैराग अर अभ्यास विनां किसी कों नहीं प्राप्त होता
हे पुत्र पुरुषार्थ कर सर्व कार्यों का फल प्राप्त होता है॥
पुरुषार्थ विनां कछु नहीं प्राप्त होता॥ इह निश्चे कीया
है॥ तिसी का फल प्राप्त होता है॥ अपणे पुरुषार्थ का नाम
दैव है॥ सो दैव शब्द कर कहीता है॥ दैव कहीये नेतक

तिसका

के

युक्तत करनभी है अत्यंतदोह प्रापत है

जोकृत्या ज्ञान करये

हीये ॥ सो अपणे पुरुषार्थ का नाम है ॥ जैसा जैसा पुरुषार्थ
करती है ॥ तैसा तैसा संकल्प दृढ होजाता है ॥ तैसे होनास
ता है ॥ सुखदेणहारा और कोउ नही ॥ जैसा संकल्प क
र्ती है ॥ तैसा होनासत्ता है ॥ हे पुत्र अपणे पुरुषार्थ बिनां
कछु सिध नहीं होता ॥ ताते परम पुरुषार्थ कों धारकर
विषयो सों विरक्त हो ॥ जबलग विरक्तता नहीं उपजती
तबलग परम जय देणहारा जो मोक्ष है ॥ तिस पद कों न
हीं पावता ॥ जबलग मोह का कारण विषयों विषे प्रीत
है ॥ तबलग संसार स्त्रा चलायमान करती है ॥ दुखदाय
क होती है ॥ सर्प की न्याई विष कों पसारती है ॥ सो अभ्या
स कोये बिनां निवृत्त नहीं होती ॥ बलिरुवाच ॥ हे सर्व
असुरों के ईश्वर भोगों सों विरक्तता चित सों कैसे होती
है ॥ जो जीव कों जीवणे का कारण है ॥ विरोचनोवाच
हे पुत्र जैसे सरित काल मों महा लता फलसों परपक्क
होती है ॥ तैसे आत्म अवलोकन वाले कों भोगों विषे
विरक्तता प्रगट होती है ॥ आत्मा के देखणे सों विषयो
की प्रीति निवर्त हो जाती है ॥ आत्मा विषे स्थित कों पाव
ता है ॥ ताते सूक्ष्म बुधि के विचार करके विषयों ते विरक्त रहित
होवे ॥ तब आत्म देव की प्राप्त होती है ॥ शास्त्रों के विचार
अरु साधसंग कर चित रूप बालिक कों परचावे ॥ ज
ब परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होवे ॥ तब विषयों की प्रीति छु
ट जावे ॥ जैसे चंद्रमा के उदे हूए चंद्रकांतमणि द्रवीभू
त होती है ॥ तैसे चित भोगों तें रहित शीतल विराजता है
बुधि के विचार सों सर्वदा सर्वात्मा देखता है ॥ जैसे मल्ला
ह कों नौका ले जाती है ॥ अरु नौका कों मल्लाह ले जाता है
तैसे परब्रह्म विषे अनंत विश्रांत नित उदे होती है ॥ मो
ते रूप आनंद उदे होता है ॥ तिस का अभाव कदाचित
नहीं होता ॥ जब आत्म नाउदे होती है ॥ तब भोगों विषे ऑव
विरक्तता उत्पत होती है ॥ सो आत्मा का दर्शन अपणे पु

रुषार्थ बिनां नहीं होता॥ हे पुत्र भोगों का त्याग करें॥ अरु आ
त्म अभ्यास होवे॥ तब परमानंद कों प्राप्त होवेंगा॥ ब्रह्मा
तें आदि तृण पर्यंत ऐसा आनंद कोऊ नहीं पाईता॥ जैं
सा आनंद परम कारण आत्मा विषे स्थित हूए पईता है
ताते पुरुषप्रयत्न कों आश्रय करो॥ श्रेष्ट भोग तें लोक
ले हारे जो भोग है॥ तिनकी निंदा बुधिवान करते हैं॥ ज
ब भोगों की निंदा दृढ भई॥ तब सत विचार उपज आव
ता है॥ जैंसे वर्षाकाल गए तें आकाश निर्मल होता है॥ तैं
से पुरुषप्रयतन कर आत्मप्रकाश कों पावता है॥ हे दैत
राज सम मैं पाकर जब तूं विषयों सो विरक्त चित होवेंगा
तब अपले विचार अर संतों के संग कर परम पद कों
पावेंगा॥ अपले आप विषे पावणा है सो पावेंगा॥ बहुड
दुख कलना विषे न गिडेंगा॥ हे अंग देशाचार के क्रम क
र्कें आत्म धन उपजावणा अरु नम्रता कर कें साधसंग वि
षे लगावणा॥ तिस विषे त्याग विचार संयुक्त हूए तुज कों
आत्मलाभ होवेगा॥ ॥इति श्री महारामायणे मोक्षो
उपाए उपशम प्रकरणे चित चिकित्सा उपदेशो नाम
सर्गः॥ २४ ॥बलिरुवाच॥ इस प्रकार पूर्वे पिता मुज कों
कहा था॥ अब मैं स्मृत हुए करकें प्रसन्नता कों प्राप्त भया
हों॥ प्रगट कर भोगों तें विरक्तता उपजी है॥ अब शांति नि
र्मल सम अंग मत शीतल सुख विषे स्थित होवों॥ इस ज
गत की विभूति कर खेदवान हूया हों॥ आश्चर्य है॥ जो
सुख दुःख की दशा तें शांति पद कों प्राप्त होवों॥ सम वि
षे स्थित हूया निर्वाण सुख कों पावोंगा॥ जैंसे चंद्रमा के
मंडल विषे स्थित हूए समशीतल होता है॥ तैसे अंतर
तें शीतल होता हों॥ दुःखरूप वितृत्तए ऐश्वर्य तें रहित
हूया चोभ नकों त्यागोंगा॥ अरु सर्व भूतजात को वस की
या सो क्या हूया॥ बहुड बहुडदुड ही चेष्टा करणी॥ इस क
र चित्त अपूर्व सुख कों नहीं पावता॥ चंदा कष्ट है॥ जो

मैंऽअनर्थ विषेऽअर्थ बुधि करी थी॥ऽअज्ञान मद करमैं
मत्त था॥ तांते दुखी था॥ऽअब का पुरुषार्थ सफल हो
वेगा॥ जैसे समुद्र के मथणे करऽअमृत प्राप्त भया॥
तैसे निराकार निर्विकारऽआत्मा की भावना करऽअब
सर्वऽऔर सुखी होवोंगा॥ मैं कौन हों॥ इह जगत क्या है॥
इसऽआत्मा का दर्शन शुक्र जी गुरु सों पूछों॥ऽअतां नरों
त्रु के नाश निमित परमेश्वर शुक्र जी का चितवन करों
जो प्रसन्न होकर मुज कों उपदेश करेगा॥ तिस करऽअ
नंत विभुऽअपणेऽआप विषेऽआप कर स्थित होवोंगा॥
निहकाम पुरुष का उपदेश मेरे रिदे विषे फलेगा॥

॥ इति श्रीमहारामायणे मोक्षउपाए उपशम प्रक
रणे बलवृत्तांतयोगो नाम सर्गः॥२५॥ श्रीवसिष्ठो
वाच॥ हे रामजी इस प्रकार बल राजा चितवन करनें नेत्रों
कों मूंदत भया॥ मूंद कर शुक्र जी का ध्यान कीया॥ कैसा
शुक्र है॥ जिसका मंदरऽआकाश विषे है॥ चिन्मात्र तत्व
विषे है स्थित जिसकी॥ऽऐसे भार्गव रूप का ध्यान करते
भया॥ तब शुक्र जी जानत भया॥ जो हमारे शिष्य बल
ने हमारा चितवन कीया है॥ तब सर्वगत जो चिदात्मा
भार्गव स्वरूप है॥ सोऽअपणे देह कों रत्नों के जरोखे वि
षेऽआवत भया॥ तब बल राजा उजल मणीरूप भार्गव
गुरु के देह कों देखत भया॥ तब उठ खडा हूया॥ऽअर चि
त प्रफुलित होऽआया॥ जैसे प्रातःकाल सूर्य की किरणों
कों देखकर कमल प्रफुलित होऽआवते हैं॥ तैसे प्रफुलि
त होकर रत्नन पुष्पों सोंऽअर्घ पाद कर चरण पूजन करते
भया॥ रत्नों करऽअर्घ पाद कीया॥ सो प्रपर मंदार वृक्षों
के फूल चढाए॥ वहि सिंहासन पर बैठाया॥ऽअरु कहत
भया॥ बलोवाच॥ हे भगवन तुमारी कृपा तें जो प्रति
भा उठी है॥ सो मेरे रिदे विषे स्थित होकर मुज कों प्रथम वि
षे जो डरा है॥ भोगों तेंऽअब मैं विरक्त हूया हों॥ कैसे भोग हैं
जो महामोह के देणे हारे हैं॥ऽअरु तत्वज्ञान की इच्छा करते

हों ॥ जिसकर महामोह नष्ट होता है ॥ इस ब्रह्मांड विषे आ
त्मरूप वस्तु क्या है ॥ अरु केताइक तिसका प्रमाण है ॥ इ
दं क्या है ॥ अरु मैं क्या हों ॥ अरु तुम कोन हो ॥ अरु इह लो
क क्या है ॥ इन प्रश्नों का उत्तर कृपा करदेवो ॥ शुक्रोवा
च ॥ हे दानवों के राजेंद्र बहुत कहणे कर क्या है ॥ मैं आ
काश विषे गमन कीया चहता हों ॥ तां ते सभ का सार तुज
कों कहता हों ॥ सुण ॥ तूं भी चैतन्य स्वरूप हैं ॥ मैं भी चैतन्य
स्वरूप हों ॥ इह लोक भी सभ चैतन्य स्वरूप हैं ॥ सो इह स
भ का सार है ॥ सो चैतन्य तत्व सभ का सार विस्तृत रूप है
इदं इह सभ चैतन्य रूप है ॥ चिन्मात्र ही प्रमाण है ॥ चैत
न्य के निश्चे कों अंतर दृढ कर धारो ॥ तब निश्चयात्मक
बुधि अपणे आप कर आप कों देखेंगा ॥ अरु तिस बि
वेक विश्रामवान होवेंगा ॥ हे राजन जो तूं कल्याण रूप हैं
तब इसी कहणे कर सर्व सिधता कों पावेंगा ॥ सर्व का सा
र चिदात्मा है ॥ तिस कों पावेंगा ॥ अरु जो कल्याण मूर्ति न
हीं ॥ तब बहुत कहणा भस्म विषे आहूत पाए की न्यांई
निरर्थक होवेगा ॥ चैतन्य कों जो चेतकला का संबंध होता
है ॥ सोई बंधन है ॥ तिस ते जो मुक्ति है ॥ सोई मुक्ति है ॥ अरु
आत्म तत्व चैतन्य रूप चेतकला ते रहित है ॥ इह सर्व सि
धांत का संक्षेप है ॥ हे राजन इस निश्चय कों धारकर नि
र्मल बुधि साथ तूं अपणे आप कर आप कों देख ॥ इह
आत्मपद की प्राप्ति है ॥ अब मैं आकाश कों जाता हों ॥ स
भ रूपों साथ कोऊ इक देवतों का कार्य है ॥ तिस निमि
त जाता हों ॥ जब लग इह देह है ॥ तब लग मुक्ति बुधि कों
यथाप्राप्त कार्य त्यागणे योग्य नहीं ॥ हे रामजी ऐसे कहि
कर वह देवग सों आकाश कों उठ चल्या ॥ जैसे समुद्र सों तरं
ग उठ चले ॥ तैसे शुक्रजी अंतरध्यान होगए ॥ ॥ इति उ
पशम प्रकर्णे बलि उपदेशो नाम सर्गः ॥ २६ ॥ श्री
वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी देवता अरु दैत्यों कर पूजणे
योग्य जो है ॥ भृगु का पुत्र शुक्रजी ॥ तिस के गमन कीये ते

बलवानों विषे श्रेष्ठ जो बल है ॥ सो मन विषे विचारत भया
जो भगवान श्रुकजी का कहा ॥ तीनों जगत चिन्मात्र रूप भी
हैं ॥ मैं भी चैतन्य हों ॥ इह सर्व लोक भी चैतन्य रूप हैं ॥ तें चैत
न्य रूप हैं ॥ अरु मैं भी चैतन्य हों ॥ अरु दिशा भी चैतन्य रूप
हैं ॥ क्रिया भी चैतन्य रूप है ॥ आकाश विषे भी मैं एक आत
मा अंतर बाहिर स्थित हों ॥ परमार्थ तें सर्व चैतन्य स्थित है
इतर कछु नहीं ॥ अरु इह जो पृथ्वी है ॥ जो इसकों चैतन्य चे इह जो सर्व जगत है जो इसकों चैतन्य
तें नहीं ॥ तब भ्रम विषे भ्रमत न पाईए ॥ इह जो सर्व जगत चेतें नहीं तब जग
भी चैतन्य है ॥ सरीर भी चैतन्य है ॥ इंद्रियां भी चैतन्य हैं ॥ मन तभाव इस विषे को
भी चैतन्य है ॥ अंतर बाहिर चैतन्य चिदात्मा ही अहं तें हो ऊ नहीं
कर स्थित भया हैं ॥ संपूर्ण जगत का आत्मा एक चैतन्य है
सो मैं हों ॥ आकाश विषे भी एक आत्मा मैं हों ॥ स्थावर जंगम
का चैतन्य आत्मा मैं हों ॥ आत्मा एक अद्वैत है ॥ इस विषे द्वै
त का असंभव है ॥ तो शत्रु कौन कहीये ॥ अरु सुहृद कौन
कहीये ॥ बल जिसका नाम है ॥ तिसके सरीर का सीस का या या
तो क्या ॥ का[illegible] जो सर्व लोकों विषे आत्मा पूर्ण है ॥ जो भाव भा
व पदार्थ भासते हैं ॥ सो सभ चैतन्य आत्म रूप हैं ॥ चैतन्य तें
भिन्न कछु नहीं ॥ सर्व ओर तें पूर्ण आत्मा है ॥ आत्मा तें इतर
जगत कछु नहीं ॥ न कोऊ दुःख है । न रोग है । न मन है । न म
न की वृत्त है । एक शुद्ध चैतन्य आत्म तत्व है ॥ अवर विक
ल्प कोऊ नहीं ॥ सर्व ओर तें मैं चैतन्य रूप व्यापक हों ॥ नित अ
द्वैत अनंत रूप विकल्प कलना तें रहित हों ॥ अैसे अैसी
भावतें भी रहित हों ॥ चैतन्य सत्तामात्र हों । चैतन्य आदिक
नामों तें भी अतीत हों । चैतन्य आदिक नाम भी मेरे व्यव
हार के निमित्त कल्पे हैं ॥ चैतन्य आत्मा की जो सत्ति स्फुरण
है ॥ सोई विस्तृत रूप जगत हो भासता है । इस दृश्य दर्शन तें र
हित केवल अद्वैत रूप है ॥ प्रकाश अरु प्रकाशक भाव रूप
तें रहित निराभास द्रष्टा परमेश्वर है ॥ न कर्ता हों न भो
क्ता हों ॥ केवल द्रष्टा रूप निरामय हों ॥ कल्पना कलंक तें
रहित हों ॥ अरु इह भी मैं हों मेरा ही सभ आभास है ॥ मैं

उदितरूप आभासतें भी रहित प्रकाशरूप हों॥ जो आत्मक
मय चैतन्यस्वरूप है॥ सो ऐसे स्वरूपकों नमस्कार है॥ चेत
जो दृश्य है॥ तिसतें रहित है॥ भावाभाव सर्व का प्रकाशक
हों॥ मुझकों मेरा नमस्कार है॥ चेततें रहित चैतन्य मैं हों॥ स
र्व ओरतें अगतिरूप हों॥ आकाश की न्यांई सूक्ष्मतें सूक्ष्म हों॥
संवेदन के फुरणे तें दृश्यरूप भी मैं हों॥ जगत के भावाभा
व मुझकों स्पर्श नहीं करते॥ मैं अनंतरूप आत्मा आपणे
आप विषे स्थित हों॥ हे रामजी इस प्रकार चितवता हूया
बलराजा परमतत्त्व का वेत्ता उंकार की जो अर्धमात्रा तु
र्यापद है॥ तिसकी भावना सों ध्यान विषे स्थित भया॥ स
र्व संकल्प तिसके शांति होगए॥ सर्व क्षोभ मनन तें चित्त स
रत काल के आकाशवत होरहा॥ ॥इति उपशमप्रक
रणे बलविश्रांतवर्णनं नाम सर्गः॥२८॥ श्रीवसि
ष्ठोवाच॥ हे रामजी इस प्रकार जब बलराजा कों समा
धि विषे बहुत काल व्यतीत भया॥ तब बांधव मित्र टह
लुए मंत्री जो राजा के थे॥ सो ऊंचे रतनों के झरोखे विषे दे
खणे कों चले॥ जो क्या हूया॥ राजा बल कों ऐसे विचार
करके किवाड़ खोले॥ ऊपर जा चढ़े॥ जो कछु राजा के
मंत्री टहलुए बांधव थे॥ सो सब ऊंचे चढ़ गए॥ कुबेर इंद्रादि
क चरण दासीयां लेकर नीचे खड़े रहे॥ आरु राजा बल सो
ध्यान विषे स्थित है॥ मानों चित्र की पुतली लिखी है॥ तब ब
ल राजा के नमित्त भार्गव जो है शुक्र जी गुरु॥ तिस का सभी
लोक चितवना करते भए॥ जो उहस मन का वेत्ता है॥ तब चित
वन कीए तें भार्गव जो है शुक्र जी सो झरोखे विषे आ प्रा
प्त भया॥ देखकर दैत्यगण सब पूजन करते भए॥ आरु ब
डे ऊंचे सिंहासन पर बैठ गया॥ आरु राजा बल कों ध्यान
विषे देखकर शुक्र जी बहुत प्रसन्न भए॥ जो मैं उपदेश
कीया था॥ तिस विषे स्थित भया है॥ ऐसे देखकर शुक्र
जी कहते भए॥ शुक्रोवाच॥ वडा आश्चर्य है॥ वडा आ
श्चर्य है॥ जो दैत्यराज आपणे विचार करके निर्मल पद

कों पाया है ॥ जो आत्मपदका अर्थ स्वरूप विषे विश्राम कों पा
वता भया है ॥ अब इसकों आत्मज्ञान प्राप्त भया है ॥ अ
ब इसकों जगावों नहीं ॥ तो आपही चिरकालकर जागे
गा ॥ काहेतें जो प्रारब्ध अंकुर इसका रहता है ॥ इह जा
गकर अपणे राजकार्य करेगा ॥ दिव्य सहस्र वर्ष कों
इह जागेगा ॥ तुम इसकों न जगावो ॥ अपणे राजकार्य वि
षे जा लागो ॥ हे रामजी जब इस प्रकार मुनीश्वर कहा ॥ त
ब सुणकर ऐसे होगए ॥ जैसे सके वृक्ष की मंजरी होती
है ॥ तब प्रभुकजी कहिकर अंतरध्यान होगए ॥ अरु दैत्य
सभ विरोचन की सभा विषे जाकर अपणे व्यापार कों
लागे ॥ अरु खेचर भूचर पाताल वासी जो थे ॥ सो अपणे
अपणे स्थानों कों गए ॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे बल
विज्ञान प्राप्त समाधि स्थित नाम सर्गः ॥ २८ ॥ श्रीव
सिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जब दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत भ
या ॥ तब दैत्यराज समाधि तें जागा ॥ नोबत निगारे बाज
णे लागे ॥ नगरवासी सभ वहां प्रसन्नता कों प्राप्त भए ॥ जैं
से सूर्य के उदे हूए कमल खिड आवते हैं ॥ तैसे दैत्य खि
ड आए ॥ जब लग दैत्य न आए थे ॥ तब लग राजा चितव
त भया ॥ वडा आश्चर्य है ॥ जो परमार्थ पद की ऐसी रमणी
क पदवी अति रूप शीतल है ॥ तिस विषे स्थित भया हों ॥
तो तब ऊडउसी कों आफो करों ॥ अरु तिसी विषे स्थित हो
वों ॥ राजविभूत साथ मुज कों क्या प्रयोजन है ॥ ऐसा आ
नंद शीतल चंद्रमा के मंडल विषे नहीं पईता ॥ जैसा अ
नुभव स्थित विषे पईता है ॥ इस प्रकार चितवकर बऊडे
समाधि कर्णे लागा ॥ जो गलित मन हो जावों ॥ तब दैत्य मंत्री
टहलूए बांधव आनकर राजा कों वेष्टित भए ॥ अरु सभ न
दैत्य प्रणाम कर्णे लागे ॥ अरु राजा बल पहाड की न्याई अ
चल सो मन विषे विचारत भया ॥ कैसा राजा बल है ॥ जिस
के मन के विकल्प जाल हीण भए हैं ॥ सो कहत भया ॥ जो मु
ज कों त्यागणे योग्य क्या है ॥ अरु ग्रहण करणे योग्य क्या है

त्याग किसका करीता है॥ जो अनिष्ट दुखदायक होता
है॥ अरु ग्रहण तिसका करीता है॥ जो आगे नहीं होता॥
सो तो आत्मा तें अतिरेक कछु नहीं॥ किसका त्याग करों
अरु किसका ग्रहण करों॥ अरु मोक्ष की इछा किसका
तें रणें करों॥ काहे तें जो जब बंध होती है॥ तब मोक्ष की इ
छा होती है॥ जब बंध नहीं तब मोक्ष की इछा कैसे होवे॥
इह बंध मोक्ष भी बालों की क्रीडा है॥ न बंध है॥ न मोक्ष
है॥ बंध मोक्ष भी बालिक मूर्खों की कि[illegible] है॥ सो मूर्खता
मेरी नष्ट भई है॥ अब मुज कों ध्यान विलास साध्य काहे
अब मुज कों न विदेह मुक्ति की वांछा है॥ न देह विषे रह
णे की इछा है॥ मैं सर्व तें अतीत सर्व व्यापक हों॥ मैं एक अ
द्वैत रूप आत्मा हों॥ सो मुज कों मेरा नमस्कार है॥ इस रा
ज क्रिया विषे रहों तो भी शीतल चित्त हों॥ तां ते अकिर्त्त
कार्य है जो॥ तिसी कों करों॥ इस प्रकार राजा बल दैत्यों कों
देखता भया॥ जैसे सूर्य कमलों की और देखे॥ तब देव
ता दैत्य सीस कर प्रणाम कर्त्ते भए॥ इष्ट कर तिन के प्र
णाम वंदना अंगीकार करी॥ तब राजा ध्येय वासना कों
त्याग कर मन तें राज के कार्यं कों कर्त्ते भया॥ ब्राह्मण
देवते गुरों का पूजन कर्त्ते भया॥ जिस जिस प्रकार जिस
का पूजन कर्त्तव्य था॥ तिसी प्रकार कीया॥ बहुड यज्ञ का
आरंभ कीया॥ तिस यज्ञ विषे देवता ऋषीश्वर मुनीश्व
र भृगु जी तें आदि ले कर सभ आए॥ कैसा बल है जि
स ने विद्युली की न्याई भोगों कों क्षण भंगुर जाना है॥ ति
स बल कों हरि विष्णु जी जिसका चित्त भोगों तें रूपण
है॥ सो तिस इंद्र के अर्थ सिध कर ले कों छोटा वपु धार ले
णे का शरीर धार छल्या॥ तब बांध कर पाताल विषे स्थि
त कीया॥ हरि आप भी पाताल विषे रहणे लागा॥ बहुड
राजा बल इंद्र हो कर स्वर्ग का राज करेगा॥ अब जीवन्मु

क्ति ईक्षणा तें रहित पाताल विषे स्थित है राजा बलि ॥ ह
र्ष शोक तें रहित सम चित्त है ॥ जैसे मूर्त्ति का लिख्या सूर्य
उदै अस्त की क्रिया तें रहित होता है ॥ तैसे दश किरोड़
वर्ष तीनों जगतों का राज कर्त्ता भया ॥ अब भोगों की अभि
लाषा त्याग कर । पूर्ण आत्मारामी नित स्वरूप विषे स्थि
त पाताल कोटर विषे विराजता है ॥ हे रामजी इस बलि
बहुड़ इस जगत का इंद्र होणा है ॥ पर इंद्र पद कों पाकर
ग्रसन्नता कों रिदे विषे कछु न ल्यावेगा ॥ जीवन्मुक्ति होक
र विचरेगा ॥ इस बलि को विज्ञान प्राप्त का वृत्तांत मैं तुझ
कौं कहा है ॥ हे रामजी तुम भी इसी दृष्टि कौं आश्रो कर के
स्थित होवो ॥ बलि की न्यांई । अपने विवेक कर नित तृ
प्त आत्म निश्चै कौं धारो । जो सर्व मैं है ॥ इस निश्चै कौं धा
र निर्द्वंद्व पद विषे स्थित होवो ॥ हे रामजी दस कोटि व
र्ष तीनों जगतों का राज राजा बलि भोगता भया ॥ जीवन्मु
क्ति होकर । तातें तुम भी जीवन्मुक्ति होकर विचरो ॥ जब
तूं मन कौं रिदे विषे बांधेगा ॥ तब सर्व जगत का प्रकाश
क सूर्य होवैंगा ॥ तूं आत्म स्वरूप है ॥ जो सर्व तूं है ॥ तो अ
पणा क्या अरु पराया क्या । इह सभ मिथ्या कल्पना है ॥ तूं
अनंतात्मा सर्व का आदि पुरुषोत्तम पुरुष हैं ॥ स्थावर
जंगम जगत सभ तुझ ही कर पूर्ण है ॥ जैसे सूत कर मणके
परोए होते हैं ॥ तैसे सर्व जगत तेरे विषे है ॥ तूं परम पुरुष
अनंत केवल रूप जगतों का नाथ हैं ॥ चैतन्य सूर्य प्रका
श रूप स्थित हैं ॥ सर्व जगत तेरे प्रकाश कर प्रकाशता
है । अरु मिथ्या चेतना कर जिसका रिदा नष्ट भया है
अरु अविद्या धड़ कर जो अछादे हूए हैं ॥ सो तिन का
संग मत करो ॥ इह जगत आण मात्र भी नहीं ॥ अरु वह
विस्तार रूप भासता है ॥ सो अज्ञान करकैं भासता है ॥ आ
त्मा रूपी सूर्य है । तिस का आवर्ण कर्त्ता अज्ञान रूपी मे
घ है ॥ तिस कौं विवेक रूपी पवन कर नष्ट करो ॥ तब

आत्मा का साक्षात्कार होवेगा॥ आत्मविचार का अभ्यास
अरु विषयों तें वैराग्य इस पुरुषार्थ विनां आत्मा का साक्षा
त्कार नहीं होता॥ वैराग्य अभ्यास अरु वेद वेदांत शास्त्र क
र होता है॥ पर तो भी अपणे विचार विनां साक्षात्कार नहीं हो
ता॥ बुधि की निर्मलता सों बोध की प्राप्त होता है॥ तातें संक
ल्प विकल्प तें रहित चैतन्य तत्व विषे स्थित होवो॥ विस्तृत
रूप आत्मतत्व है॥ तिस की स्थिति ग्रहण करो॥ सभ संकल्प
तेरे लीन हो जावैंगे॥ संदेह तें रहित अब तूं विगत ज्वर स्थि
त हो॥ ॥इति उपशमप्रकरणे बलिविज्ञानवर्ननं
नाम सर्गः॥२२॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी अब
तूं विज्ञान प्राप्त का कारण अवर सुण॥ जैसे दैत्य असुर
प्रह्लाद को आत्मपद की प्राप्त भई है॥ तैसे तूं भी हो॥ पाताल
कोटर विषे हिरण्यकशिपु दैत्य होत भया है॥ कैसा था॥
जिसनें देवते अरु इंद्रादिक भगाए हैं॥ जिस का पराक्र
म विष्णु जी के तुल्य है॥ अरु संपूर्ण लोग भवन जिस वस
कर लीये हैं॥ दैत्यों का राजा तीन भवनों का भया था॥ सम
पाकर पुत्र उत्पन्न भए॥ वडा ऐश्वर्यवान तेजकर वधन भ
या॥ जिस का प्रकाश सरीर का भी सर्व दिशा को भर रहा
सूर्य की न्याई॥ तिन के पुत्रों के मध्य विषे वडा प्रह्लाद हो
त भया॥ जैसे मणी के मध्य विषे कौस्तुभमणि अधिक प्र
काश को पावती है॥ तैसे प्रहलाद अधिक प्रकाशवान भ
या॥ तिस कर हिरण्यकशिपु शोभत भया॥ जैसे सर्व पुष्पों
कर वसंत ऋतु शोभती है॥ तैसे प्रहलाद कर हिरण्यकशि
पु शोभता भया॥ अपणे बल अरु पुत्रों की सुंदर्यता कर अ
रु ऐश्वर्यता नों कर हिरण्यकशिपु शोभता भया॥ अरु ती
नों लोकों कों अपणे वशीकार कीया॥ जैसे प्रलै काल विषे
सूर्य सर्व लोकों कों तपावता है॥ तैसे तपावणे लागा॥ दुष्ट
क्रीडा कर कै दैत्य देवत्यों कों भी दुख देवें॥ तब देवते मिल
कर विष्णु जी की सर्ण कों प्राप्त भए॥ अरु अरदास करी॥ हे
महेश्वर इह हिरण्यकशिपु महा दुष्ट है॥ तिस तें हमारी

रक्षाकरो ॥ हेरामजीजबविष्णुभगवानजीकेआगेंदेवतों
नेंप्रार्थनाकरी ॥ तबविष्णुभगवानजीकहा । तुमजावोमैं
उसकोंपुत्रकेहेतुकरमारोंगा ॥ ऐसेकहिकरविष्णुभ
गवानजीअंतर्ध्यानहोगए ॥ अबतिसहिरण्यकशिपु
अपणेऐश्वर्यकीशिक्षाप्रहलादकोंदई ॥ परउसग्रह
णनकरी ॥ बहुतप्रकारदंडताडनाकरी । परप्रहलादउ
सकीशिक्षाकोंअंगीकारनकीया ॥ उहसदाविष्णुजीके
आराधनविषेरहा ॥ इसकारणतेंप्रहलादकोंताडनाको
दुखकछूनहोवे ॥ तबदैत्येश्वरखड्गलेकरकहणेलागा
हेदुष्टतेराईश्वरकहांहे ॥ जिसकाआराधनतूंकरताहैं ॥
मुजबिनाईश्वरकौनहे ॥ तबप्रहलादकहा । ईश्वरमेरा सर्व
व्यापकहे ॥ तबहिरण्यकशिपुकहा । इसथंभेविषेहे ॥
तोदिखा ॥ नदिखावेंगा । तबतुजकोंमारोंगा ॥ तबसर्वव्या
पकजोविष्णुदेवहे ॥ सोथंभेमेंप्रगटहोकरगर्जणेला
गा ॥ बडेशब्दहोणेलागे ॥ तिसथंभेकोंफोडकरविष्णुभ
गवानप्रगटभए ॥ महाभयानकरूप हस्तीकेसमानदंत
अरुबडीभुजा ॥ बडेनखजोवज्रकोंतोडनेहारेहैं । जैसे
स्थिरविद्युलीकाप्रकाशहोवे ॥ अरुअग्निकीन्याईंकुंड
लप्रकाशों । कुलाचलतेंलेकरजोपर्वतहैं ॥ तिनकेसमा
नहृदउदरहे । दोभुजाहैं । मानोब्रह्मांडखपरकोंतोड
नेंहारीयांहैं ॥ मुखतेंपवनस्वासनिकसताहे ॥ सोभीपर्वतों
कोंचूर्णकर्णेहाराहे ॥ अरुतीनलोककोंजलावणेहारा
क्रोधरूपीअग्निहे ॥ सोप्रलेकालतेंभीअधिकहे ॥ अरु
मोंटेसूर्यवतप्रकाशकर्तेहैं ॥ अरुरोमावलीऐसेखडे
होतेहैं ॥ मानोपर्वतकेशिखरहैं ॥ अग्निकेसमूहवतम
हाभयानकरूपनरसिंहवपुविष्णुदेवहिरण्यकशि
पुकोंविदार्णकीया ॥ ऐसाक्रोधवानरूपधारता । जोक्रो
धअग्निकरदैत्योंकेस्थानजलणेलागे ॥ प्रलेकालकी
अग्निवत । अरुदृष्टकरपर्वतचूर्णहोवें ॥ नरसिंहरूप
वायदाखंभाणीकर्के दैत्योंकेसमूहकेईमारे ॥ केईभा

गगए॥ दसो दिसा कों गए॥ अकांड प्रलैवत असत्स्थान
भए॥ दैत्यों को नष्ट कर विष्णु जी अंतर्ध्यान होगए॥ कछूइ
क दैत्य बांधव रहि गए रहे सो प्रहलाद के निकट आए॥
मुख कुमलाते हूए॥ प्रहलाद कों परचावणे लागे प्रहला
द नें मिल कर पिता की परदेवना करी॥ बहुउतकर स
न कर्म कीए॥ सर्व दैत्य विचार करके चित्र का पुतलीवत हो
गए॥ जैसे दग्ध हूया वृक्ष सुक जाता है॥ तैसे हिरण्यकशि
पु विनां दैत्य सुक गए॥ ॥ इति उपशमप्रकरणे प्रह
लादोपाख्याने हिरण्यकशिपुवधनोनामसर्गः॥ ३॥
श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी जब हिरण्यकशिपु के म
र्णे कर के दैत्य दुखित भए॥ तब प्रहलाद मौनवान होकर
पाताल कुहर विषे चिंतवत भया॥ सर्व दैत्य जो मिलकर
बैठे थे॥ चिंतासंयुक्त तिन कों प्रहलाद कहत भया॥ अ
ब अपणी रक्षा के निमित्त का उपाव करीये॥ हमारे दैत्यों के
नास करणे हारा विष्णु तो महाबली है॥ तीक्ष्ण खड्ग धारा
वत जिसके नख हैं॥ जैसे मृगों को सिंह मारता है॥ तैसे ह
म को विष्णु मारता है॥ पाताल विषे जब दैत्य वर्धमान हो
ते हैं॥ तब ही आन नष्ट करता है॥ वह नासर दैत्य घोर मू
ष्ट करणे वाले दैत्य नाश आन करता है॥ अंतर बाहिर
हम कों कष्ट देता है॥ जैसे जल विन कमल कुमला जाते
हैं॥ तैसे हम बांधवों विना भए हैं॥ जो इंद्रादिक हमारी ट
हल करते थे॥ सो अब देवतों सों टहल करावते हैं॥ हम कों
अपदा ने दीनता कों प्राप्त कीया है॥ हे दैत्यो अब हम कों
और उपाव कोउ नहीं॥ जब हम उस विष्णु की शरणे कों प्रा
प्त होवों॥ तब सुखी होवों॥ कैसा उह पुरुष है॥ जिस की दोनु
जा रूप वृक्ष की छाया विषे देवते विश्राम करते हैं॥ वि
ष्णु जी के प्रसाद कर सो कदाचित तपायमान नही होते
जो पुरुष विष्णु की शरणे होता है सो सुखी होता है॥ हम
भी तिस की शरणे कों प्राप्त होवों॥ तुम देखो जो देवते हमा
रीयां इस्त्रीयां कों लेगए हैं॥ आगे हम उनको लेआवते

थे। सो हमसें पूजावणे लागे हैं॥ हमारे पितादिक बडे ब
ली थे॥ तिनकों विष्णुजीनें चूर्ण कीया है॥ ऐसे विष्णुजी
की गति अति विषम है॥ दैत्यों की भुजारूपी जो दंड है
तिनकों काटणेहारा कुहाडा है॥ तिनकी सहाइता क
र इंद्रादिक देवते दैत्यों की सेना कों जीतणे लागे॥ इस
पुंडरीकाक्ष विष्णुजी को जीतणा कठिन है॥ जो इह शस्त्रा
स्त्रों विना होवे॥ तो भी इसकों हमारे शस्त्र काछेद नहीं स
कते॥ वज्र भी छेद नहीं सकते महापराक्रमी है॥ युध
का इसनें बहुत अभ्यास कीया है॥ हमारा पिता बडा ब
ली था॥ जिसनें त्रिलोकी के राजा चूर्ण कीये थे॥ अरु
सब दैत्यों कों वश कीया था॥ तिसकों इसनें नखों साथ
मारा है॥ हमारे मारणे विषे क्या यतन है॥ तांते एक उ
पाव मैं तुझकों कहता हों॥ तिस कर विष्णुजी वस आ
वेगा॥ अवर उपाव कोऊ नहीं॥ इस प्रकार उसकों चित
वो॥ जो विष्णुजी सर्वात्मा है॥ अरु सर्व बुधों का प्रकाश
क है॥ सर्व का कारण है॥ तिसकी हम शरण हैं॥ और ह
मारी गत आशा कोऊ नहीं। तांते तिसके ध्यान विषे ला
गों॥ जो एक निमष विषे भी तिसके ध्यान तें उतरो नहीं
मैं उसके ध्यान विषे लागता हों। सो नारायण अजन्मा
पुरुष है। मैं सदा तिस परायण हों। सर्व प्रकार नाराय
ण मैं हों॥ ॐ नमो नारायणाय इस मंत्र का ध्यान जाप
करते हूये॥ हमारे हिरदे विषे आनस्फुरण रूप होवेगा।
सो कैसा हरि है॥ दिशा भी हरि है॥ आकाश भी हरि है।
इह सर्व जगत हरि है॥ मैं भी हरि हों॥ सर्व का आत्मा हरि
है। सो हरि मैं हों। जो अविष्णु होकर विष्णु का पूजन क
र्ता है॥ सो पूजा के फल कों नहीं पावता॥ अरु जो विष्णु हो
कर विष्णु का पूजन कर्ता है॥ सो परम उत्तम फल कों पा
वता है॥ तांते मैं विष्णुरूप हों॥ अनंतात्मा हों। सर्वव्यापक
हों। अरु गरुड पर आरूढ हों॥ सब का ईश्वर मैं हों। इ
ह मेरी चार भुजा हैं॥ भुजा विषे बहुटे पहिरे हूए हैं। ज

बमैं क्षीरसमुद्र मथन कीयाथा ॥ तबके सैखेवकर घस्वे
हूए हैं ॥ इह मेरे वक्षस्थल स्थान विषे लक्ष्मी स्थित है ॥ सुं
दर चमर हाथ विषे है ॥ इसकों क्षीरसमुद्र तें उपजाया
है ॥ मेरे वक्षस्थल विषे लीला कर्ती है ॥ लीला करकें जिस
सर्व जीव लुभाए हैं ॥ त्रिलोकी रूपी वृक्ष की उह सुंदर मंज
री है ॥ महा धवल मलके हरणे हारी है ॥ इह मेरे वक्षस्थ
ल विषे माया है ॥ अनंत जगतजाल जिसनें उत्पत गले
कीये हैं ॥ इंद्रजाल की विलासनी है ॥ इह मेरे वक्षस्थल
विषे स्थित है ॥ लीला करके जिसनें त्रिलोकी कं वशक
रलीया है ॥ असी मेरे वक्षस्थल विषे फुर्ती है ॥ इह चंद्रमा
सूर्य मेरे नेत्र जगत कों प्रकाशते हैं ॥ इह मेरा नीलकम
लवत देह है ॥ महासुंदर स्याम मेघ की न्याई प्रकाशरूप
है ॥ इह मेरे हाथों विषे पांचजन्य शंख है ॥ जिसकी धुन
पूर्णरूप है ॥ क्षीरसमुद्र तें निकस्या है ॥ इह स्वर्ण की किर
णें वत कमल है ॥ इसतें ब्रह्मा उत्पत भया है ॥ अर इसी
विषे ब्रह्मा निवास कर्ती है ॥ जैसे भ्रमरा कमल विषे नि
वास कर्ता है ॥ तैसे ब्रह्मा कमल विषे निवास कर्ता है ॥ इ
ह मेरे हाथ विषे गदा है ॥ सुमेर के शिखरवत रत्नों कर ज
डी हूई है ॥ दैत्यों दानवों के नाश कर्णे हारा है ॥ इह मेरे हा
थ विषे साधों के सुख देणे हारा सुदर्शन चक्र है ॥ इह मे
रे हाथ विषे अग्नि के समूह वाला कुहारा है ॥ दैत्यरूप
जो वृक्ष हैं ॥ तिनकों नाश कर्णे हारा है ॥ अरु साधों कों आ
नंद दाइक है ॥ इह मेरे हाथ विषे सार्ङ्ग धनुष है ॥ जिस
की धुन महा प्रकाशरूप मेघवत है ॥ इह मेरे पीत वस्त्र हैं ॥
इह जयंती माला मेरे गले विषे है ॥ असा मैं विष्णु देव हों
अनंत जगतों के उत्पत गले कर्णे हारा हों ॥ सन्तों कों धारणे
हारा भी मैं हों ॥ इह पृथवी मेरे चर्ण हैं ॥ आकाश मेरा सीस
है ॥ तीन जगत मेरा सरीर है ॥ दशो दिशा मेरे वक्षस्थल हैं
साक्षात मैं विष्णु हों ॥ नीलकमलवत मेरी कांत है ॥ गरुड

विषे जो मकरी है

परआरूढहों॥ संखचक्रगदापद्मधारणेहारामैंविष्णु
देवहों॥ लक्ष्मीमेरेअंगविषेहे॥ अचिंतअच्युतमैंविष्णु
हों॥ उहकोंनहे॥ जोमेरेसाथयुधकर्णेकोंसामर्थहोवे
मैंत्रिलोकीकेजलावणेकोंसामर्थहों॥ मेंविष्णुदेव
ईश्वरहों॥ ब्रह्माइंद्रकुबेरअग्नियमादिकमेरीस्तुत
कर्णेहारेहैं॥ सोमैंविष्णुईश्वरहों॥ जेताकछुजगतजा
लहै॥ सभकेअंतरव्यापकहों॥ तीनलोकोंकेअंतरमैं
प्रकाशरूपअजन्माहों॥ ऐसाजोमेरास्वरूपहै॥ तिस
कोंनमस्कारहे॥ ॥ इतिउपशमप्रकरणेप्रहला
दनिर्वाणनारायणोकरणंनामसर्गः॥ ३१ ॥ श्री
वसिष्ठोवाच॥ हेरामजीइसप्रकारप्रहलादनारा दूसरी
यणस्वरूपआपणेकर्केचिंतवताभया॥ मनविषेभ
क्तिविष्णुकीकरी॥ अरुप्राणपवनसंयुक्तगरुडपरआ
रूढसर्वशक्तिकरसंपन्नेधर्मअर्थकाममोक्षचारोंशा
क्तिकरसंपन्नशंखचक्रगदापद्महाथोंविषेश्यामअं
गचतुर्भुजचंद्रमासूर्यजिसकेनेत्रऐसालक्ष्मीवान
आनंदीआनंदकेदेणेहारा॥ ऐसीमूर्तिविष्णुजीकीपू
जतभया॥ परवारसंयुक्तनसीप्रकारपूजतभया॥ ना
नाप्रकारकीसामिग्रीजोकछुसमिग्रीप्रमाणथीसन
करपूजाकरी॥ भक्षभोजलेहचोस्यचारप्रकारकेभो
जनकराए॥ परमभक्तिकोंप्राप्तभया॥ अपणाआपवि
ष्णुजीकोंअर्पणकीया॥ जिसप्रकारपूजनकीया॥ तिसी
प्रकारध्यानतेअंतरविष्णुजीकीमूर्तिदेखकरतिसकी
पूजतभया॥ इसीप्रकारदिनदिनप्रतिविष्णुजीकीपूजा
कर्णेलागा॥ जिसप्रकारक्रमकर्केप्रहलादमनकीचिंत
वनाकर्केपूजाकर्त्तेभया॥ तिसीप्रकारओरदैत्यभीपू
जामानसीकर्णेलागे॥ तिसपुरविषेसभदैत्यवैष्णव
होतभए॥ जैसाराजाहोताहै॥ प्रजाभीतैसीहोतीहै॥ इस
विषेभेदनहीं॥ इहवार्तादेवलोकविषेप्रगटभई॥ जोदै
त्योंनेंविष्णुजीकेद्वेषकात्यागकीयाहै॥ अरभक्तिहुएहैं

तब देवते सभ आश्चर्य कों प्राप्त भए॥ अरु चितवते भए
जो इह क्या हूया॥ जो दैत्यों विष्णु भक्त ग्रहण करा है॥ इन
कों कैसे ग्यान भई॥ ऐसे आश्चर्यवान हो कर विष्णु जी
के निकट गए॥ क्षीरसमुद्र पर दैत्यों की वार्त्ता कहिते न
मित्त॥ देवतोवाच॥ हे भगवन इह तुम क्या माया प
सारी है॥ जो दैत्य सदा विरुध करते थे॥ सो तुमारे साथ त
न्मय हो रहे हैं॥ कहां तु इह दुर्वृत्त अरु कहां तुमारी भक्ति
जो अनेक जन्मों कर दुर्लभ है॥ हे जनार्दन इह तो अपू
र्व वार्त्ता है॥ सो पात्र विनां तुमारी भक्ति नहीं शोभती॥ इह
हम कों कछु सुखदायक नहीं भासते॥ जैसा कोउ होता
है॥ तैसी स्थान में शोभता है॥ तांते दैत्यों विषे तुमारी भ
क्ति नहीं शोभती॥ जैसे कमलनी कलर विषे नहीं शोभ
ती॥ तैसे तुमारी भक्ति दैत्यों विषे नहीं शोभती॥ तुमारी भ
क्ति उन विषे दुखदायक भासती है॥ सुखदायक नहीं
भासती॥ ॥ इति उपशमप्रकर्णे प्रल्हादोपाख्या
ने विविधवितर्को नाम सर्गः॥ ३२ ॥ श्री वसिष्ठो
वाच॥ हे रामजी इस प्रकार वचन इन्द्रादिक के देवते कह
ते भए॥ तब माधवजी आय कर कहते भए॥ जैसे मेघ
मोरों कों कहे॥ तैसे वह गंभीर वाणी कर भगवान बो
ले॥ श्री भगवानोवाच॥ हे देवगणो तुम शोक मत
करो॥ प्रल्हाद मेरा भक्त है॥ इह प्रहलाद कों अंत का ज
न्म है॥ अब मोक्ष कों प्राप्त होकर बहुड़ जन्म न पावेगा
जैसे भुना बीज बहुड़ अंकुर नहीं लेता॥ तैसे प्रहलाद
जन्म नहीं लेगा॥ हे देवगणो जो गुणवान पुरुष होवे॥ अ
रु गुण कों त्याग कर दोष का ग्रहण करे॥ अर्थ इह जो
शास्त्र विध कों त्याग कर अशास्त्र वाला होवे॥ तब उह क
र्म अनर्थ रूप होता है॥ अरु प्रथम शास्त्र विधि न कर्त्ता
होवे॥ अरु पाछे शास्त्र के अनुसार वर्त्ते॥ तब उह सुखदा
यक शुभ कर्म कहीता है॥ प्रल्हाद की जो विस्तत चेष्टा
है॥ सो तुम कों सुखदायक होवेगी॥ अब तुम अपणे स्था

नोंको जावे॥ प्रह्लाद मेरा भक्त है॥ इस प्रकार भगवान क्षी
रसमुद्र की लहर विषे अंतर्ध्यान होगए॥ अरु देवते नम
स्कार करके अपणे स्थानों को गए॥ अरु प्रहलाद दिन
दिन प्रति जनार्दन की पूजा कीया करे॥ मन वाणी कर्म क
र ईश्वर की भक्ति कीया करे॥ सम्पे पाकर दैत्यों विषे भ
क्ति वधगई॥ अरु विवेक धर्म को न प्राप्त भए॥ अरु विष
य भोगों ते वैराग्यवान हूए॥ पर मुक्ति कर्त्ता जो आत्म बो
ध है॥ सो प्राप्त न भया॥ मुक्ति फल के तुल्य आन स्थित भए
हैं॥ भोगों की अभिलाषा को त्याग कर निर्मल होरहे हैं॥ वैका
अरु ईश्वर की भक्ति विषे चित स्विंचित भया है॥ तब स्वरूपा
नमूर्त्ति जो विष्णु देव है॥ सो प्रह्लाद की वृत्ति क्षीरसमुद्र
विषे विचार करके अपणी स्याममूर्त्ति सों प्रह्लाद के गृ
ह विषे पूजा के स्थान जा प्राप्त भए॥ प्रहलाद प्रेम करके ग
दगद भया॥ बहुड पूजन करके चरण वंदना करी॥ ऐसे
कहत भया॥ प्रहलादोवाच॥ हे ईश्वर त्रिलोकी के
भवन विषे महा सुंदर सर्व के धारणेहारा सर्व के कलंक के
हरणेहारा परम प्रकाशरूप अशरणों के शरण हे निर्म
ल रूप पंचित कमल की न्याई अंख हे जिसके हाथ विषे
अरु जिसके नाभि कमल विषे ब्रह्मा भवरा स्थित है॥ वे
दों का उचार घुंघुं शब्द कर्त्ता तिदे कमल विषे विराजणे
हार मैं तेरी सर्ण हों॥ हे तीन भवन कमलनीयों के बधाव
णेहारे चंद्रमा मोह रूपी अंधकार के नाश कर्त्ता सूर्य अ
रु हे ईश्वर लीला करके उत्पत प्रलै करणेहारे मैं तेरी स
र्ण हों॥ हे दैत्यों रूपी कमलों के तुषार बरफ अरु देवता
चंदरमा
रूपी कमलों के प्रकाशक सूर्य॥ अरु रिदे रूपी कमलों
के प्रकाशणेहारे मैं तेरी सर्ण हों॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥
हे रामजी इस प्रकार बहुत गुणों कर अष्ट श्लोक प्रह्ला उतपल
द कहे॥ तब नीलोत्पल वत है देह जिस की ऐसा सर्व
त्मा पुरुष प्रसन्न होकर प्रह्लाद को कहत भया॥ ६

कुलरूपसर्ग

तिउपशमप्रकरणेप्रहलादउस्तुतनारायणना
मसर्गः॥३३॥श्रीभगवानोवाच॥ हेगुणनिधान
देत्योंकेमणि जोकछुतुजकोंवांछितहै॥ सोमांग॥ बडे
डेजन्मतुजकोंनहोवेगा॥ अरुशांतिपदकोंप्राप्तहोवेगा
॥प्रहलादोवाच॥ हेसर्वसंकल्पोंकेदातवेअरुफ
लदायकसर्वलोकोंकेअंतरस्थितरूपजोवस्तुउदा
रतरहे॥ सोशीघ्रकरमुजकोंकहो॥श्रीवसिष्टोवा
च॥ हेरामजीजोदेत्यकापुत्रदेत्येंद्रहै॥ तिसकोंभगवा
नकहा॥ जोतृणतेंआदिब्रह्मापर्यंतसर्वविवेकशांतिरू
पआनंदमाहै॥ तिसकोतूंविचारकरपावेगा॥ इसप्रका
रविष्णुजीकहिकरअंतर्ध्यानहोतेभए॥ तबविष्णुजीकौं
प्रहलादपुष्पजलकरपूजाकरी॥ बहुडउत्तमस्तोत्रोंकर
विधिसंयुक्तपाठकर्तेलागा॥ पाठकरकेंचितवनाकर्ते
भया॥ जोविष्णुजीमुजकोंक्याकहाथा॥ इहकहाथा॥ जो
तुजकोंसंसारसमुद्रतरणेकेनिमित्तशीघ्रहीविचारक
र्तव्यहै॥ सोइससंसारअडंबरविषेमैंकौनहों॥ जोचलता
चालतास्थितहोताहों॥ इहजगततोमैंनहीं॥ जोवृक्षतृ
णपर्वतआदिकसंयुक्तहै॥ इहबाह्यजडरूपहै॥ सोमैं
कैसेहों॥ इहदेहभीमैंनहीं॥ जोइहप्राणमीचामतेंगुरहै
सोभीमैंनहीं॥ इहजोपांचइंद्रीयांहैं॥ शब्दस्पर्शरूपरस
गंधकेग्रहणकर्तेहारीयांहैं॥ सोभीमैंनहीं॥ इहजडरूप
हैं॥ मैंअहंममतेंरहितमनकेमननतेंभीरहितशांतिरू
पहों॥ शुधचेतनस्वरूपकलनाकलंकतेंरहितहों॥ मैंचेत
तेंरहितचेतनसर्वकाप्रकाशकहों॥ सर्वकेअंतरबाहर
व्यापकनिर्मलशांतिरूपहों॥ आश्चर्यहै॥ अबमुजकों
अपणास्वरूपस्मरणआयाहै॥ मैंशांतिरूपनिर्मलनि
र्विकल्पहों॥ चेतनप्रकाशरूपअनुभवअद्वैतसर्वगति
हों॥ ऐसेमेरेअनुभवस्वरूपकरकेंइंद्रियोंकीवृत्तिस्फुर

णरूप होती है ॥ सर्वज्ञ अनुभवसत्ता करके मन का मनन
रूप आभा स्फुरती हैं ॥ जैसे सूर्य के तेज करके मृगजल भा
सता है ॥ तैसे अनुभव करके पदार्थ फुरते हैं ॥ सर्व के अं
२ तर आत्मा अनुभव करके स्थित है ॥ जैसे बीज विषे अंकुर
स्थित होता है ॥ तैसे चैतन्यरूप दीपक के प्रकाश कर ॥ विकल्परूप
पदार्थ फुरते भासते हैं ॥ उष्णरूप सूर्य है ॥ शीतलरूप
चंद्रमा है ॥ घनरूप पहाड है ॥ द्रवतारूप जल है ॥ ऐसे अ
नुभवसत्ता करके पदार्थ प्रगट होते भासते हैं ॥ ब्रह्मा विष्णु
रुद्र इंद्रादिक सबन का कारणरूप अनुभवसत्ता है ॥ ति
सका कारण अवर कोऊ नहीं ॥ सो आदि अंत तें रहित है
जैसे जल तें तरंग होते हैं ॥ तैसे अनुभव तें सर्व जगत है ॥
चित्त तें रहित चैतन्य अनुभवरूप है ॥ सो निर्विकल्प चैत
न्य सबन का आश्रयभूत आत्मा है ॥ तिस विषे जो पदार्थ भा
सते हैं ॥ सो विस्तृतरूप चिदाकाश सत्ता सर्व भूतों का आ
दर्शरूप है ॥ जिसका चित्त नष्ट हो जाता है ॥ तिस पुरुष
कों ऐसे भासता है ॥ जो सर्वरूप अनुभव आत्मा है ॥ सो
अनुभवसत्ता पदार्थों के होणे कर वृध नहीं होती ॥ अ
रु नष्ट होते कर नष्ट नहीं होती ॥ पदार्थों के भावाभाव वि
षे समान सम है ॥ जेते कछु भूत जात हैं ॥ सो आत्मसत्ता सा
ष अभिन्नरूप हैं ॥ ब्रह्मा तें आदि तृण पर्यंत सर्व का प्रका
शक आत्मा है ॥ सो अनुभवसत्ता आदि अंत तें रहित ॥
विस्तृतरूप हुई है ॥ सो एक अनुभवरूप आत्मा मैं ही हों
द्रष्टा दर्शन दृश्यरूप सर्वरूप आत्मा अनुभवरूप मैं ही हों
सहस्र नेत्र सहस्र पाद सहस्र हाथ मेरे हैं ॥ सो मैं चिदाका
शरूप हों ॥ सूर्यदेव होकर सर्व को प्रकाशता हों ॥ अरु
चंद्रमा होकर सर्व को शीतलता देता हों ॥ अरु विष्णु हो
कर शंख चक्र गदा पद्म कों धारता हों ॥ सर्व सो भापती
कों देणहारा हों ॥ सर्व देवों का नाश कर्त्ता भी मैं हों ॥ अरु
नाभि कमल तें ब्रह्मा को उत्पत्ति कर मैं ही स्थित हों ॥ मैं ही

त्रिनेत्र आकार रुद्र हूया हों ॥ गौरी मेरी अर्धंगी है ॥ तिस
कामें नमराहो ॥ स्रिष्ट के अंत विषे संहारकर्त्ता मैं हों ॥ इं
द्र होकर देवतों कों प्रसन्न राखता हों ॥ कर्मों के अनुसार
फल देणे हारा मैं हों ॥ तृण वल्ली गुच्छे विषे रस होकर मैं
स्थित हों ॥ जगत आडंबर विस्तृत रूप लीला कर मैं ही कि
या है ॥ मुझ तें भिन्न कछु नहीं ॥ फूलों विषे सुगंध सुंदरता
मैं ही हों ॥ स्थावर जंगम जगत सब कों सत्ता देणे हारा अ
नुभव रूप मैं ही हों ॥ सर्व संकल्प तें रहित चैतन्य तत्व अहं
त्वं तें परे मैं ही हों ॥ जल विषे रस शक्ति मैं ही हों ॥ अग्नि वि
षे उष्णता मैं हों ॥ बरफ विषे शीतलता मैं हों ॥ जैसे काष्ट वि
षे अग्नि स्थित है ॥ तैसे सर्व विषे स्थित मैं हों ॥ बडा आश्चर्य
है ॥ जो मैं बडा विस्तृत रूप अपणे आप विषे समावता नहीं ॥
जैसे क्षीर समुद्र अपणे आप कर प्रकाशता है ॥ तैसे मैं अ
पणे आप कर शोभता हों ॥ मैं तो आदि अंत तें रहित चैतन्य
आकाश हों ॥ मेरे विषे परिछिन्नता कछु नहीं ॥ सर्व रूप
आप अपणे आप विषे स्थित हों ॥ अब मेरा पिता पिताम
ह तुछ बुधी थे ॥ ऐसे ऐश्वर्य कों त्याग कर तुछ ऐश्वर्य वि
षे बांधे हूए थे ॥ कहो ए उदार दृष्ट सर्व कों भरता (पालणे वाला) ब्रह्म व
पु अरक हों ॥ संसार नमकाराज दुखदायक कहाणे (चीरणे वाला) अंगुर
अरक हों ॥ इह शुध चैतन्य रूप दृष्ट जो मुझ कों हूई है ॥ स
र्व भावाभाव पदार्थों विषे चेतन तें रहित चैतन्य आत्मा मैं स्थि
त हों ॥ मुझ कों मेरा नमस्कार है नमस्कार है ॥ मेरी अब जय
हूई है ॥ जीर्ण (पुराणा) रूप संसरणे तें मैं निकस्या हों ॥ तां तें जीत पा
ई है पावणे योग्य आत्म पद पाया है ॥ इस जगत रूप मंडी वि
षे केते वर्ष हरण्यकशिपु राज सुख भोगता भया ॥ पर जो उ
त्तम ज्ञान तिस सुख है तिस कों प्राप्त न भया ॥ इह एक जगत का
राज सुख भोग क्या है ॥ जो अनंत ब्रह्मांडों का राज सुख होवे ॥
तो भी कछु नहीं ॥ जो सुख आत्मानंद सों होता है ॥ जब तिस
आत्मानंद सुख का ज्ञान वा होता है यतन करके ॥ तब इस

सुखतेंतत्सहोताहै ॥ अरु आवरसुखविरसजाननताहै ॥ क
हांउहबोधदृष्टिशांतिरूपअविनाशी ॥ अरुकहांभोगो
विषेआत्मबुधि ऐसापदार्थत्रिलोकीविषेकोऊनही
जिसकोमैंइछाकरों ॥ सर्वचैतन्यतत्वस्वछआभासआभावति
विकारसर्वदासर्वविषेसर्वओरतेंस्थितअनुभवरूपहै ॥
सोमैंइसकरततृप्तभयाहों ॥ ज्ञानवानोंकोप्रकाशताहै ॥ सू
र्यविषेप्रकाशशक्तिउसीकीहै ॥ चंद्रमाविषेअमृतशक्ति
उहीहै ॥ ब्रह्माविषेमहतताउहीहै ॥ इंद्रविषेत्रिलोकीपा
लनेंशक्तिउहीहै ॥ सर्वओरतेंलक्ष्मीवैष्णवीशक्तिउहीहै ॥ की
अग्निविषेजलावणशक्तिहै ॥ जलविषेरसशक्तिहै ॥ वि
द्यावृहस्पतिसक्तिउहीहै ॥ आकाशविषेगमनकर्णीदेवृ
तोंकीशक्तिउहीहै ॥ पर्वतोंविषेस्थिरशक्तिहै ॥ गंभीरशक्ति
समुद्रकीहै ॥ सुमेरकीऊंचताशक्तिहै ॥ वसंतविषेपुष्पश
क्तिहै ॥ पंखीयोंविषेमयमतशक्तिहै ॥ आकाशविषेनिर्ले
पताशक्तिहै ॥ बरफविषेशीतलताशक्तिहै ॥ ज्येष्ठआषा
ढविषेतप्तशक्तिहै ॥ ऐसाअनंतशक्तीं अनंतपदार्थोंविषे
हैं ॥ सोसभशक्तींचैतन्यतत्वविस्तृतकीयांहैं ॥ सोईइसप्रका
रहोभासताहै ॥ कलनारूपकलंकतेंरहितव्यापकआत्म
तत्वरूपाहै ॥ जैसेसूर्यसमसर्वत्रप्रकाशताहै ॥ तैसेसर्वप
दार्थोंविषेआत्माविस्तृतहै ॥ जैसाअनुभवजिसविषेहोता
है ॥ तैसातिसविषेततकालहोभासताहै ॥ तीनोंकालोंकीप्र आत्मा विषे
तिभासमफुर्तीहै ॥ चैतन्यतत्वतिसविषेसर्वओरतेंपूर्णहै
सोईसत्तारूपसर्वपदार्थोंकाआश्रयभूतअधिष्ठानहै ॥
तिसकेदेखणेकरविभागकलनाकाअभावहोजाताहै ॥
एकसमानआत्मतत्वशेषरहताहै ॥ तिसतत्वकोवाणीवि
षयकरनहीसक्ती ॥ आत्तिकीन्याईजोनिरंतरतत्वहै ॥ ति
सकीप्राप्तहोतीहै ॥ निःकिंचिनआत्मब्रह्मउपशमविषे
लीनहोताहै ॥ जोअसम्यकदर्शीहैं ॥ तिनकोंजिंउकातिंउ
नहीभासता ॥ जगतभासताहै ॥ अरुजिनकीइछानष्टहो
गईहै ॥ परमपदकाअभ्यासकर्तेहैं ॥ तिनकोंआत्मतत्व
भासताहै ॥ अरुमेरेपितामहपृथ्वीकेतलेफुरफुरक ॥

र लीन होगए हैं ॥ जैसे टोए विषे मछर फुरकर लीन होजाते
हैं ॥ तैसे अज्ञानी आवागावनरूप टोए विषे पडे भ्रमते हैं ॥ सो
पृथवी के कीटों के तुल्य हैं ॥ तातें अब मेरा आत्मा कों नमस
कार है ॥ कैसा आत्मा जो अविनाशी चैतन्य प्रकाशरूप है ॥
प्रकाश अरु अंधकार दोनों कों प्रकाशता है ॥ हे देव चिदा
त्मा तूं चिरकाल कर मुझ कों प्राप्त भया हैं ॥ अब परमानंद
हूया है ॥ विकल्परूप समुद्र तें मुझ कों उधार लीया है ॥ ऐ
से आत्मा कों नमस्कार है ॥ नमस्कार है ॥ नमस्कार है ॥ अनं
त शिव आत्मदेव देवतों का ईश्वर सज्जन का परंपर परमात्मा पुरु
षतुज कों नमस्कार है ॥ इति उपशमप्रकरणे प्रह्ला
द उपदेशयोगो नाम सर्गः ॥ ३४ ॥ प्रह्लादोवाच ॥ ॐ
है नाम जिसका सो आत्मा ब्रह्म मैं हौं ॥ जो कछु जगत है ॥ सो
सभ का आत्मस्वरूप है ॥ सत असत तें अतीत चैतन्य स्वरू
प है ॥ सूर्यादिकों कों उही प्रकाशता है ॥ अरु चंद्रमा विषे
शीतलता उही है ॥ इंद्रीयों के भोगों कों भोक्ता उही है ॥ अरु
राजा की न्यांई व्यवहार कर्त्ता हौं ॥ अरु सदा शांतिरूप हौं ॥ कि
सी कर लिपायमान नहीं होता ॥ ब्रह्मा तें आदि तृण पर्यंत
सर्व जगत विषे आत्मतत्व स्थित है ॥ अरु अपणे आप वि
षे शोभता है ॥ अरु अपणे आप कर आलीता है ॥ अल्प भी
इसी का स्मरण करीता है ॥ तिसी क्षण विषे प्राप्त होता है
इस विषे संसे विकल्प कोउ नहीं ॥ जैसे तिलों विषे तैल है
जैसे पुष्पों विषे सुगंध है ॥ तैसे देहों विषे परमात्मा देव स्थि
त है ॥ जैसे किसी प्यारे बांधव के पाणे तें आनंद प्राप्त होता
है ॥ तैसे आत्मदेव के साक्षात्कार हूए परमानंद उदे हो
ता है ॥ आत्मा के प्राप्त हूए आत्मरूप होजाता है ॥ सो विस्तृ
तरूप आत्मा दीपक की न्यांई साक्षीभूत मैं स्थित हौं ॥ स
र्व ओर तें आत्मतत्व अपणे आप प्रकाशता है ॥ अंतर
शांतिरूप सभ कों अनुभव करणेहारा सर्व देहों विषे मैं
स्थित हौं ॥ जैसे मरचों विषे कटुकता स्थित है ॥ तैसे स

न जगत के ऽअंतर बाह्य मैं व्यापक हो रहा हैं। जेते जगत
के पदार्थ भासते हैं॥ सर्व विषे ईश्वर सत्ता स्थित है॥ इह
ऽआत्मा ऽआकाश विषे शब्द रूप है॥ वायु विषे स्पर्श रूप है
तेज विषे प्रकाश रूप है॥ जल विषे रस रूप है॥ पृथ्वी वि
षे कठोरता रूप है॥ चंद्रमा विषे शीतलता रूप है॥ सर्व ज
गत विषे ऽ(व्यापक)अनस्यूत ऽआत्मा व्याप रहा है॥ जैसे बरफ विषे
शीतलता॥ पुष्पों विषे सुगंध होती है॥ तैसे देहों विषे ऽआ
त्मा स्थित है॥ जैसे राजा की प्रतिभा सभा विषे होती है॥ तै
से रूप ऽअवलोक मनस्कार विषे ऽआत्म सत्ता व्याप रही है
सो तिस ऽआत्म देव मैं हैं॥ जैसे धूड के किण के ऽआकाश कौं
स्पर्श नहीं करते॥ ऽऔरु कमल कौं जल स्पर्श नहीं करता॥ तैं
से मुज कौं किसी पदार्थ का स्पर्श नहीं होता॥ सुख दुःख का
स्पर्श देहों कौं होता है॥ सो देह चिरकाल रहे ऽअथवा नष्ट
होवे॥ मुज कौं लाभ हान कछु नहीं॥ जैसे दीपक का प्रकाश
रज साथ बांध्या नहीं जाता॥ तैसे ऽआत्मा किसी कर ऽअछि
द्या नहीं जाता॥ ऽअलेप रूप है। जैसे ऽआकाश बांध्या नहीं जा
ता॥ तैसे ऽआत्मा किसी देह इंद्री साथ स्पर्श नहीं करता॥ ऽअ
लेप रहता है॥ जैसे घट के नष्ट हूए ऽआकाश का नाश नहीं
होता॥ तैसे देह इंद्रीयों के नष्ट हूए ऽआत्मा का नाश नहीं हो
ता॥ ऽआत्मा सर्व समे जिउं का त्यों है। जिसका नाम मन है॥ सो
पिशाच की न्यांई उदे हो कर भासता है॥ बहुड़ तिस मन॥
तैं दृश्य भास ऽआई॥ तिस विषे जड सरीर का नि[illegible] हूया॥ तो
नी हमारा क्या गया॥ सुख दुख मे जिसकी वासना नष्ट भई
है॥ सो भोगों की इछा नहीं राखता॥ इह मूर्ख ऽआत्मा के ऽअ
ज्ञान कर दुख पावते हैं॥ ऽअब मैं ऽआत्म तत्व कौं देख्या है॥ इ
स कर भ्रम मेरा शांति हो गया है॥ ऽअब मुज कौं न ग्रहण की
इछा है॥ न त्यागण की इछा है॥ सुख दुख ऽआवे ऽअथवा जा
वे॥ मैं एक रस ऽआत्मा चिदानंद स्वरूप हों॥ देह विषे ऽआस्था
करणी कर नाना प्रकार की वासना उपजती है॥ सो देह भ्रम
मेरा नष्ट हो गया है॥ एते काल पर्यंत मुज कौं ऽअज्ञान रूप

शत्रु चूर्ण कीया था ॥ ऽअब मैं ऽआपकों जाण्या है ॥ इस ऽअज्ञा
नकों चूर्ण करोंगा ॥ इस सरीररूपी वृक्ष विषे ऽअहंकाररू
पी पिशाच था ॥ सो मैं परमबोधरूपी मंत्र कर दूर कीया है ॥
इस सरीर वृक्षसों ऽअहंकार पिशाच नष्ट भया है ॥ ऽअरु प्र
फुलित वृक्षकी न्यांई शोभता है ॥ मोहरूपी दुष्ट मेरी शां
ति होगई है ॥ दुखसत्रु नष्ट भए हैं ॥ विवेकरूपी धन मुझकों
प्राप्त भया है ॥ मैं ऽअब परमेश्वररूप होइ स्थित भया हों ॥ जो
कछु जानणे योग्य था सो मैं जाण्या है ॥ ऽअरु देखणे योग्य था
सो मैं देख्या है ॥ तिस पदकों पाया है ॥ जिसके पाए तें ऽऔर पा
वणा नहीं रहा ॥ ऽआत्मतत्वकों देख्या है ॥ सर्व इछा तें रहित
भया हों ॥ रागद्वेष धूड तें निर्मल भया हों ॥ उपशमरूपी वृक्ष
कर निर्मल भया हों ॥ सीतल भया हों ॥ ऽअधोगतका कारण
ऽअहंकार था ॥ तिससों ऽअतीत भया हों ॥ ऽअपणा स्वभावरू
प जो है ऽआत्मविद्या सुनना वान मैं पाया है ॥ इंद्रीयों के भोग
रूपी गर्त्त विषे मैं गिडता था ॥ रागद्वेषरूपी सर्पों कर दुःख
पाया था ॥ ऽअब ऽअहंकाररूप राक्षस मेरा नष्ट भया है ॥ हे
विभु तिसकों मैं देखता नहीं ॥ उह नष्ट भया है ॥ जैसे दीपक
दीपक कर ऽअंधकार दृष्ट नहीं ऽआवता ॥ तैसे ऽआत्मप्रकाश कर
ऽअहंकार नष्ट भया है ॥ हे ईश्वर तेरे दर्शन कर मेरा ऽअ
हंकार नष्ट भया है ॥ जैसे सूर्य के उदे होणे कर चोर भाग
जाते हैं ॥ तैसे देहरूपी रात्रि विषे उठा जो ऽअहंकाररूपी
ऽअंधकार था ॥ सो ऽअब नष्ट भया है ॥ जाण्या नहीं जाता जो
उह कहां गया है ॥ जैसे बातरों तें रहित वृक्ष ठहर जाता
है ॥ तैसे वासना तें रहित चित्त परम निर्वाण पदकों पाव
ता है ॥ सो मैं समशांति रूप विषे जाण्या है ॥ ऽआसारूपी तृ
ष्णा शांति भई है ॥ विचार कर कैं ऽअहंकाररूपी तम दूर ॥
होगई है ॥ ऽअहंकार के नष्ट हूए सत्तका ऽअभाव भया है
जब ऽअहंकाररूपी मेघ नष्ट होजाता है ॥ तब तृष्णारूपी
कुहीड भी नष्ट होजाता है ॥ सरतकाल के ऽआकाशवत चि

तञो भा पावता है॥ ऐसा जो आत्मरूपी पहाड है॥ तिसके
आश्रे विश्राम पाया है॥ हे आत्मदेव तुज कों नमस्कार
है॥ जिस विषे आनंदरूप कमल प्रफुलित है॥ अरु जि
सके आश्रे चिंतारूप तरंग शांति भए हैं॥ ऐसा मानस
रोवर ताल आत्मा है॥ तिसकों नमस्कार है॥ कालरूप जो
कलना है॥ तिसतें निहकलंक सदा उदितरूप सर्व ओ
रतें पूर्ण शांतात्मा तुज कों नमस्कार है॥ हे सदा शीतल
तिरद के तम दूर करणेहारे चंद्रमा व्यापक तुज कों नमस
कार है॥ हे चैतन्य सूर्य तुज कों नमस्कार है॥ नमस्कार है
अब निरहंकार कों प्राप्त भया हों॥ भाव अभाव सभ नष्ट
होगया है॥ मैं अब केवल स्वस्ति स्थित हों॥ निर्भय निर
हंकार निर्मन निरिछित शुध आत्मा हों॥ लीला करके मैं
मन अहंकार कों जीत्या है॥ परम उपशम कों मैं प्राप्त भया
हों॥ अहंकाररूप जो मेघ था॥ सो नष्ट भया है॥ तिस वि
षे जो तृस्मारूपा मता थी सो भी नष्ट भई है॥ अब मैं भगवा
न आत्मा देख्या है॥ अपणे स्वरूप कों प्राप्त भया हों॥ अनु
भवस्वरूप आत्मा सदा प्राप्ति है॥ ऐसा महेश्वर चित्त तें
रहित चैतन्य है॥ ॥इति उपशमप्रकरणे प्रह्लादो
पाख्याने प्रह्लाद आत्मलाभ चितवनं नाम सर्गः॥ ॥
॥३५॥ प्रह्लाद उवाच॥ हे महात्मा पुरुष तुज कों नमस्का
र है॥ तूं आत्मा है॥ सर्व पद तें अतीत चिरंकाल तें तुज
कों स्मरण कीया है॥ हे भगवन तुज कों देखकर मैं सर्व
ओर तें नमस्कार कर्ता हों॥ तुज जैसा बांधव कोऊ नहीं॥
तूं सर्व तें सुखदायक हैं॥ तूं ही सर्व की प्रतिपालकर्ता
है॥ तूं ही सर्व कों संहारकर्ता है॥ सर्व की रक्षा भी तूं ही क
र्ता हैं॥ अब तुज कों देख्या है॥ मुज कों प्राप्त भया है॥ अरु
अपणी सत्ता करके विश्व कों पूर्ण कीया है॥ अरु विश्वरू
प भी तूं हीं॥ अब सर्व ओर तें मैं तुज कों देख्या है॥ अब क
ल्याण हुया॥ तूं परम बोधरूप हैं॥ शंख चक्र गदा पद्म

112 केधारणेहारे॥ तुजकोंनमस्काररहे॥ हेसहस्रनेत्रइंद्रतुजकों
नमस्काररहे॥ हेपद्मजात्रह्मारूपजेतीकछुदेवत्योंकासं
बंधहे॥ सोतूंहीहे॥ तूंहीअनंतविस्तृतरूपहें॥ भावाभाव
कोंधारणेहारीतेरीनीतहे॥ जोजगतकीमर्यादाकोंकर्त्तीहे
हेदृष्टारूपतुजकोंनमस्काररहे॥ हेनमोनंतात्मानप्रकाशरू
पसर्वत्रसर्वरूपदेवेशअबतुजविनांकछुदृष्टनहीआ
वता॥ वांछाकिसकीकरों॥ अबतुजकोंदेख्याहे॥ तुजकोंन
मस्काररहे॥ नमस्काररहे॥ सोसर्वइंद्रीयोंकेरसकोंजानणे
हारीआत्मसत्ताहे॥ सोदूरकैसेहोवे॥ सदाअलेपअरु
सन्मुखहे॥ हेपरावरपरमपुरुषजिसभोगोंकोंमेंत्य
ष्माकर्त्तोंथा॥ सोभोगविद्यमानआनप्राप्तहोतेहें॥ पर
तेरेदर्शनदेखणेकरस्वादनहीदेते॥ हेशिवानिर्मलरू
पनिर्मलप्रकाशकरप्रगटभयाहें॥ तेरीसत्ताकरचं
द्रमाअरुबरफशीतलताकोंप्राप्तभएहें॥ तेरीसत्ताकर
देवताआकाशविषेविचरतेहें॥ सभतेरीहीसत्ताकरि
स्थितहें॥ अबतुजकोंदेख्याहे॥ वडाकल्याणहूयाहे॥ जो
तेरेअरमेरेविषेभेदकछुनहीं॥ एदोनोंएकवस्तकेपर्या
यहें॥ तातेहेमहात्मापुरुषतेरेदोनोंरूपोंकोंनमस्कार
हे॥ मेंआत्माकोंनमस्काररहे॥ सोमैंकैसाहों समसाक्षीअनंत
स्वच्छनिराकारनिर्विकारअपणेआपविषेस्थितहों॥ जब
मनत्तोनकोंपावताहे॥ तबइंद्रीयोंकीवृत्तिस्फुरणरूप
होतीहे॥ प्राणअपानकीशक्तिजबउश्वासकोंप्राप्तहो
तीहे॥ तबदेहरूपजंत्रवहताहे॥ कैसाजंत्रहे॥ चर्मअस्थि
आदिककरजकडाहूयाहे॥ इंद्रीयांरूपीघोडेअरुना
डीरूपीरसेहें॥ मनरूपीसारथीचलावणेहाराहे॥ तिस
देहरूपीरथविषेमेंचेतनरूपस्थितहों॥ किसीविषे
आस्थानहीकरी॥ भावेंदेहरहभावेंगिरे॥ मुजकोंइछा
कछुनहीं॥ मेंअबआत्मलाभकोंप्राप्तभयाहों॥ चिरका
लकरउपशमपदकोंप्राप्तभयाहों॥ जैसेकल्पकेअंतवि

षेजागतशांतिकोप्राप्तहोताहै ॥ तैंसेदीर्घकालभ्रमताभ्र
मताविश्रामकोंप्राप्तभयाहौं ॥ तेरेप्रसादकरशांतिपाई
है ॥ तातेंतुजकोंनमस्कारहै ॥ हेदेवइहसंपूर्णजोजगत
जालहै ॥ विस्तृतरूपतिसकोंतुजकदाचितस्पर्शनहीं
कीया ॥ तेरीजयहै ॥ तूंसभलोकांसाक्षीभूतअनुभवआ
त्माहैं ॥ हेईश्वरसर्वजगतकाप्रकाशकआत्मातूंहैं ॥ ते
रेप्रमाणप्रमाणविषेचिदणुहै ॥ तिनविषेविस्ताररूप
जगतस्थितहै ॥ जैंसेजलविषेतरंगहोतेहैं ॥ तैसेतेरेचिद
णविषेजगतहै ॥ जैंसेबदलांकेअनेकप्रकारहोतेहैं ॥
तैंसेचित्तकलाकेफुरणेविषेअनेकपदार्थभासतेहैं
हेदेवसंसारकेजोक्षणभंगुरपदार्थहैं ॥ तिनकीभावना
केत्यागेतेंतुजभावरूपकोंप्राप्तहूयाहों ॥ पूर्वजोजोमेरी
नीचअवस्थाथी ॥ तिसकोंस्मरणकरकेहसताहों ॥ जोमैं
कोंनथा ॥ क्याचेष्टाकर्त्ताथा ॥ हेमेरेआत्मातूंदुखग्रहण
कर्त्ताहों ॥ नसुखग्रहणकर्त्ताहों ॥ तेरेप्रसादकरकेनिहकं
टकचक्रवर्त्तीराजाहूयाहों ॥ तूंपरमसूर्यहैं ॥ परमआ
काशविषेतेरानिवासहै ॥ उदेअस्ततेंरहिततूंनितप्र
काशरूपहैं ॥ सभकेअंतरबाह्यतूंप्रकाशताहैं ॥ अरभो
गोंकोंलीलामात्रदेखताहैं ॥ परइच्छातेंरहितहैं ॥ जैंसेइं
द्रीयांवृत्तिशक्तिआगेंराखतीहैं ॥ तैसेतूंग्रहणकर्त्ता
हैं ॥ नेत्ररूपझरोखेविषेबैठकररूपविषयकोंग्रहण
कर्त्ताहैं ॥ इसीप्रकारसर्वइंद्रीयांविषेतूंहीरूपधारके
रशब्दस्पर्शरूपरसगंधविषयकोंग्रहणकर्त्ताहैं ॥ ब्र
ह्मकोटरविषेप्राणअपानशक्तिकरतूंहीविचरताहैं
त्रलपुरीविषेआवताजाताहैं ॥ सर्वजगतकीदेहांविषे
तूंविराजताहै ॥ देहरूपफलांविषेतूंचेतनसुगंधहैं ॥
चंद्रमारूपदेहविषेतूंअमृतरूपहैं ॥ वृक्षरूपदेहकों
फलोंविषेतूंरसहैं ॥ दुग्धरूपदेहांविषेतूंघृतहैं ॥ काष्ट
रूपदेहविषेतूंअग्निहैं ॥ तेजविषेतूंप्रकाशहै ॥ सर्व

जगत का प्रकाशक तूं ही हैं॥ बुधि विषे तूं निश्चा रूप हैं तौ
ज्ञान प्रकाश विषे ती चातुरता तेरी हे॥ सर्व प्रकाशों कौं सि
धकर्त्ता तूं दीपक हैं॥ जेते कछु संसार विषे अहंत्वं आदि
क शब्द हैं॥ सो ऐसे हें जैसे स्वर्ण विषे भूषण हैं॥ अपणी
लीला के निमित्त तुझ कीये हें॥ सो तुझ तें भिन्न नहीं॥ ऐसी त्रैलो
क्यरूपी मोती हे॥ तिन विषे तूं तंतु होकर तूं ही व्याप्या हें॥ अरु
नंतरूप अन्न का तूं क्षेत्र हैं॥ चैतन्यरूप शक्ति कर बंध
कर्त्ता हें॥ अरु नाशकर्त्ता भी तूं हें॥ सर्व इंद्रीयों तें अव्यक्त
रूप स्थित हैं॥ अरु सर्व पदार्थों का प्रकाशक हैं॥ जैसे नेत्रों
तें रहित के आगें पदार्थ स्थित होवे॥ तब उह अवस्तु रूप
होता है॥ तैसे विद्यमान पदार्थ होवें॥ अरु तूं न कर्यों॥ तब
अवस्तु हो जाता है॥ जैसे दर्पण विषे मुख का प्रतिबिंब
होता है॥ तैसे तेरे देखें बिना प्रतिबिंब का अभाव हो जा
ता है॥ जब तूं पुर्यष्टिका रूप धार कर देह तें अदृष्ट हो
जाता है॥ तब सुख दुख आदिक कर्म नष्ट हो जाता है॥ कि
सी का ज्ञान नहीं होता॥ जैसे तम विषे कोऊ पदार्थ नहीं
भासता॥ तैसे तेरे बिना पदार्थ का सुख दुख नहीं भासता॥
जैसे प्रकाश कर अंधकार नष्ट हो जाता है॥ अरु पदार्थ
जिंउ के तिंउ भासते हैं॥ तैसे अज्ञान के नष्ट हूए आत्मा
जिंउ का तिंउ भासता है॥ वस्तु तें तूं अनामय रूप हें॥ ज्ञा
नें गुर देह विषे जो मन नें आस्था करी है॥ सो सहम अणि
निमेष के लखवें भाग जैसे सत्य है॥ दुख सुख की भावना
के अनंत मनता को प्राप्त भया॥ सो तेरे प्रसाद कर मन सफु
र होता है॥ इह जो पुर्यष्टका तेरी शक्ति है॥ तिस के देखने
कर पदार्थ भास आवते हैं॥ अरु मन के नष्ट हूए नष्ट हो
जाते हैं॥ कछु कार्य सिध नहीं होता॥ जैसे ज्ञान नें गुर विद्य
ली के प्रकाश कर कोऊ पदार्थ सिध नहीं होता॥ तैसे तेरे
ऐतध्यान हूए तें देहादिकों कर कछु सिध नहीं होता॥ अ

अरु मुख बिना
अभाव हो जा
ता है

रतं सर्व कों प्रकाशता हैं ॥ सदा निर्विकार निराकार हैं
सत चित्त आनंद रूप हैं ॥ अरु सुख दुःखादिक लक्ष्मी
मी ज्ञानी के चित्त कों स्पर्श कर्त्ती है ॥ अरु जिसका
चित्त समता विषे स्थित है ॥ तिसकों स्पर्श नहीं होता ॥ हे
देव इह जो सुख दुःख लक्ष्मी है ॥ सो अविवेक के आश्र
य है ॥ सो तेरे प्रसाद कर मेरा अविवेक नष्ट भया है ॥ तूं
निरीह निराकार हैं ॥ सत असत तें परें जो स्वरूप पर
मात्मा तेरी सदा जय है ॥ सर्व संसार तें अतीत तेरी सदा
जय है ॥ सर्व शास्त्रों का स्पंद तेरी सदा जय है ॥ हे देव ते
रे नाम रूप की सदा जय है ॥ अरु तेरे अविनाशी रूप की
जय है ॥ अजीत पुरुष तेरी सदा जय है ॥ माया उल्लास
कीया है ॥ अरु उपशम मूर्त्ति रूप हैं ॥ तांतें नमस्कार है
नमस्कार है ॥ हे सर्वात्मा तेरे स्थित होणे तें राग द्वेष दूर न
या है ॥ तावानाव मेरे भ्रांति हो गए हैं ॥ निरंतर समाधि वि
षे स्थित भया हैं ॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे प्रह्लादो
पाख्याने आत्म संवित वर्ननं नाम सर्गः ॥ ३६ ॥ श्री
वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इस प्रकार चिंतवता हूया
महावीर्यवान प्रह्लाद निर्विकार जो निजानंद समा
धि है ॥ तिस विषे जुड गया ॥ निर्विकल्प समाधि मों स्थित
भया ॥ जैसे मूर्त्तिका पहाड स्थित होता है ॥ तैसे स्थित भया
जब ऐसी समाधि विषे बहुत काल व्यतीत भया ॥ अप
ने भवन विषे सुमेर जैसे स्थित भया ॥ तब दैत्यों का [illegible]
चु दैत्य ईश्वर तिस कों जगाइ रहे ॥ पर न जागया ॥ जैसे स
मे विनां बीज अंकुर नहीं देता ॥ पंच सहस्र वर्ष समाधि
विषे बीत गए ॥ सरीर उसी प्रकार पुष्ट रहा ॥ दैत्यों के नग
र विषे भ्रांति हो गई ॥ परमानंद स्वरूप निजानंद जो प्रका
श कहै ॥ तिस विषे स्थित हूया ॥ कलनां सब मिट गई ॥ के
ता इक काल जब व्यतीत भया ॥ तब रसातल मंडल वि
षे नय नष्ट हो गया ॥ बल छोटे कं न द्राण कर जे वे ॥ हि

114 रएपकश्यिपुमरगया॥ तिसकापुत्रसमाधिविषेस्थितभ
या॥ अवरकोऊराजानहूया। दैत्यमंडलीविपर्ययहोतभ
ई॥ निःबलकोंबलीमारलूटलेवें॥ तबभीप्रह्लादकोंज
गाइरहे। तोभीनजागया॥ चित्तकलातिसकेअंतरनफुरी
जैसेमूर्त्तिकालिख्यासूर्यप्रकाशतेंरहितहोताहै॥ तैसेउ
सकीचित्तकलानफुरी॥ तबदैत्यउद्वेगवानहोकरजहां
जहांकिसीकोंसुखदायकस्थानदेशनासे॥ तहांचलेजा
वें॥ पातालमंडलकोंराजतेंहीनदेखतभए। मर्यादादूर
होगई॥ अपनेअपनेवांछितदेशकोंचलेजावें। स्त्रीपु
रुषरूदनकरें। शोकवानहोवें॥ अतिरूपदेवतेआन
दिखाईदेवें॥ निःबलदैत्योंकोंबांधलेजावें॥ दैत्यपुरवि
षेअनेकअकांडउपद्रवआनहूए। जैसेकल्पकेअंत
विषेजीवदुखपावतेहैं॥ तैसेदैत्यदुःखपावतेलागे॥
॥इतिश्रीउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपाख्यानेअसु
रपुरवर्ननंनामसर्गः॥३७॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥
हेरामजीइसप्रकारजबदैत्यपुरकीदशाहूई॥ तबसंपू
र्णजगतजालकाक्रमपालनेहारेजोविष्णुदेवहैं॥ सो
क्षीरसमुद्रविषेशयनकर्त्ताहारेशेषनागकीशय्याप
रविष्णुजीसोचतुर्मासकीवर्षाकालकीनिद्रातेंउतर
तभए॥ अर्थइहजोजागे॥ बुधिकेनेत्रोंसेंजगतकीमर्या
दाकोंविचारतेलागे॥ तबदेखतभए। जोपातालविषे
प्रह्लाददैत्यसमाधिस्थितभयाहै॥ तबक्षीरसमुद्रवि
षेशयनकर्त्ताहारेविष्णुजीशंखचक्रगदापद्महाथ
विषेहैं॥ अरसर्वदेहोंविषेव्यापकहै॥ सोपद्मासनकों
बांधकेविचारतेभए॥ प्रकाशरूपहैशरीरजिसका
अरशांतिरूपहै॥ त्रिलोकीरूपकमलोंकाभ्रमराऐ
सेविचारतभए॥ प्रह्लादआत्मपदविषेस्थितभया॥ पु
तलीवतहोगया॥ बडाकष्टहै। जोक्लिष्टदैत्योंतेंरहित
भई॥ तबदेवतोंकीपंक्तभीइछातेंरहितहोकरआत्म

पद विषे स्थित होजावेगी ॥ जब देवते अरु दैत्यों का वि
रुध न हूया ॥ तब देवते भी सभ मोहार्थी निर्द्वंद्व रूप हो
कर परम पद कों प्राप्त होवेंगे ॥ जैसे रस तें रहित वली
सूक जाती है ॥ तैसे देवते विरुध इच्छा तें रहित आत्म प
द कों प्राप्त होवेंगे ॥ तब पृथ्वी विषे जग उत्तम क्रिया को
ऊन करेगा ॥ न कोऊ तिस के फल कों प्राप्त होवेगा ॥ जब
पृथ्वी लोक सों क्रिया नष्ट भई ॥ तब लोक भी नष्ट हो
जावेंगे ॥ अरु अकांड प्रलै होजावेगी ॥ सब जगत मर्यादा तें न
ष्ट होजावेगा ॥ इस के नष्ट हूए भी कछु मुज कों लेप नहीं
लागता ॥ पर मैं अपणी लीला रची है ॥ सो सब नष्ट होजा
वेगी ॥ जब जगत नष्ट हूया ॥ तब सूर्य चंद्रमा तारे सब ही न
ष्ट होजावेंगे ॥ तब मैं भी इस सरीर कों त्याग कर परमपद
कों जाकर स्थित होवोंगा ॥ अकांड ही जगत उपशम कों
प्राप्त होवेगा ॥ तांते इस विषे मैं कल्याण नहीं देखता ॥
जो दैत्यों के उद्वेग तें रहित देवते भी शांति होजावेंगे ॥ तब
क्रिया नष्ट होवे ॥ अरु जीव दुखी होकर नष्ट होजावें ॥ तां
ते मैं जगत का क्रम स्थापन करों ॥ जो ईश्वर की नेत इसी
प्रकार है ॥ तब पाताल विषे जावों ॥ अरु मर्यादा कों जिउं
का त्यौं स्थापन करों ॥ जब पाताल का राजा प्रल्हाद तें इत
र मैं और करों ॥ तब उह देवतों का शत्रु होवेगा ॥ तां ते ऐ
सें न करों ॥ प्रल्हाद का जो देह है सो पिछला अंत का ज
न्म है ॥ परम पावन देह है ॥ अरु कल्प पर्यंत रहणा है ॥ ईश्व
र की नेत इसी प्रकार है ॥ तब मैं पाताल विषे जावों ॥ अरु
दैत्य इंद्र कों जगावों ॥ जैसे पहाड की कंदरा विषे मोर सो
या होवे ॥ अरु मेघ गर्ज कर तिस कों जगावे ॥ तैसे मैं प्रल्हा
द कों जगावों ॥ अरु प्रल्हाद जीवन्मुक्ति हूया ॥ दैत्यों का रा
ज करेगा ॥ जैसे मणि फुरणे तें रहित प्रतिबिंब कों ग्रहण
करती है ॥ तैसे जीवन्मुक्ति होकर विचरेगा ॥ इस प्रकार सृ
ष्ट नष्ट न होवेगा ॥ देवता दैत्यों संयुक्त रहेंगे ॥ अरु परस्पर

इनका युध भी न होवेगा॥ जदिप फिर इसका उदे होवेगा॥ अर
नष्ट होवेगा मुझ कों तुल्य है॥ तो भी जो कछु नेत है॥ तैसे ही
स्थित रहेगी॥ तांते मैं पाताल कों जावों॥ असुरेश्वर कों ज
गावों॥ जगत की मर्यादा कों स्थापन करों॥ जो नेत है सो अ
पणी लीला कर प्रतिपादन करों॥ दैत्यपुरु कों जाकर ति
स कों जगावों॥ उसी प्रकिती चार अपणे विषे जोड आवों
॥ ॥इति उपशम प्रकरणे परमेश्वर व्यतर को नाम
सर्गः॥ ३८ ॥श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इस प्रकार
चिंतवकर सर्वात्मा पुरुष जो विष्णु देव है॥ सो अपणे प
रिवार सहित क्षीरसमुद्र के मार्ग तें चले॥ जैसे मेघ की घ
टा एकठी होकर चले॥ तैसे जाकर प्रह्लाद के नगर कों
प्राप्त भए॥ कैंसा नगर है॥ मानो दूसरा इंद्रलोक है॥ मंदर
कोठा विषे प्रह्लाद कों विष्णुजी देखते भए॥ जैसे पहाड की
गुहा विषे पद्मजाडला स्थित होवे॥ तैसे प्रह्लाद कों स्थित
देख्या॥ अरु जो निकट दैत्य थे॥ सो विष्णुजी कों देखकर
भागे॥ गिड गिड पडे गहिरन सकों॥ जैसे सूर्य के उदे हूए कि
रणों का तेज देखकर उलूं भाग जावें॥ अरु जो दैत्य मुख्य
थे॥ तिन कों साथ लेकर विष्णुजी दैत्यपुर विषे प्रवेश की
या॥ जैसे तारों सहित चंद्रमा आकाश विषे प्रवेश करे
तैसे विष्णुजी गरुड पर आरूढ हूए लक्ष्मी चमर करती
साथ॥ और देव ऋषि भी आवते भए॥ जो विष्णु भगवान
जी प्रह्लाद के ग्रह विषे आए हैं॥ आवत्यें ही श्री विष्णुजी
कहत भए॥ हे महात्मा पुरुष जाग जाग॥ ऐसे कहिकर पं
चजन्य शंख कों बजावते भए॥ तब आकाश दिशा विषे
महाशब्द हूया॥ बहुड उसके पवणों साथ लागया॥ कैसा
शब्द है॥ जो विष्णुजी के प्राणों तें जिसका पूर्ण है॥ जैसे प्र
लेकाल में एकठे ही मेघों का शब्द होता है॥ अरु एकठे स
मुद्रों का शब्द होता है॥ तैसे वह शब्द पवणक कै दैत्य पृ
थिवी विषे गिड गिड पडे॥ विष्णुजी नें सनें सनें करके दे

त्येश्वरकों जगाया॥ जैंसे कदुकमंजरी मेघकर प्रफुल्लि
त होती है॥ तैंसे ब्रह्मरंध्र विषे जो प्राणशक्ति स्थित थी॥
विष्णुजी तिसकों जगाया॥ तब शरीर विषे प्राप्त भई॥ जैंसे
पहाडतें गंगाजीउतरिकर समुद्रकों प्राप्त होवे॥ तैंसे श्री
ग्रहीसर्व अंगौरतें प्राणलक्ष्मी सरीर विषे प्रवेश करगई॥
तब प्राणरूप दर्पण विषे चितसंवित्तप्रतिबिंबित होक
र चेतोन्मुखत्व भई॥ अरमन भावकों प्राप्त भई॥ जैंसे द
र्पण मुखदर्पणकों ग्रहण करके मुखद्वैतभावकों प्राप्त
होता है॥ तैंसे कछूइक आकारवान होकर चित्तनेत्रोंके
खोलणेकों समर्थ भया॥ जैंसे प्रातहकालकों नीलोत्पल
कमल खिडआवते हैं॥ तैंसे नेत्र प्रफुल्लित होआए॥ प्रा
ण अपानपवन नाडीविषे छिद्रोंके मार्ग विचरणे लागी
जैंसे वायुकर कमलफुरणे लागता है॥ तैंसे मन प्राणश
क्तिकर फुरणे लागा॥ जैंसे समुद्र विषे तरंग फुरते हैं॥ तैंसे
मन विषे वृत्ती फुरणे लागीयां॥ तिसके अनंतर नवद्वारे
प्रफुल्लित होआए॥ जैंसे अर्धसूर्यके उदे हूए तालविषे
कमल खिडआवते हैं॥ तिसकाल जो भगवानजी जागजा
गशब्द कहते थे॥ तब जागपा॥ अरु जानत भया॥ जो मुजकों
जागजागशब्द विष्णुभगवान कहा है॥ जैंसे मेघका शब्द
सुणकर मोर प्रसन्न होता है॥ तैंसे प्रसन्न भया॥ प्रफुल्लित
नेत्रं जो तिससहित मन विषे दृढ होआई स्मृतरूप॥ तब
त्रिलोकीका ईश्वर विष्णुजी कहते भया॥ जैंसे पूर्वकम
लोद्भव ब्रह्माकों कहा था॥ तैंसे गरुडकों कहत भया॥
कमलतेंउत्पत
हे साधु तूं महालक्ष्मी अपणीकों स्मरणकर॥ अरु अ
पणे आकारकों स्मरणकर॥ तूं कौन है॥ सम विनां देहके
त्यागणेकी इच्छाका हेकोंकराथी॥ ग्रहण अरु त्यागके सं
कल्पतें रहित जो पुरुष है॥ तिसकों भावाभावके होणे वि
षे का प्रयोजन है॥ तातें तूं उठखडा हो॥ अपणे आचार
विषे सावधान हो॥ इह तेरा सरीर कल्पपर्यंत रहेगा॥ नष्ट
नहीं होणा इहने तहे॥ हमने तकों जिंउके तिंउ जानणे हा

रे हैं॥ अनिंदित तूं जीवन्मुक्ति हूया राज विषे विचिर॥ ज्ञाण
मनगत उद्वेग कल्पपर्यंत तेरा देह रहेगा॥ हे साध कल्प के
अंत विषे तूं सरीर कों त्यागेगा॥ त्याग कर अपणी महिमा वि
षे स्थित होवेगा॥ जैसे घट के नष्ट हूए घटाकाश महाका
श विषे समावता है॥ तैसे सरीर कों त्याग कर कल्प के अंत
अपणी महिमा विषे स्थित होवेगा॥ अब तूं निर्मल दृष्टि कों
प्राप्त हूया हैं॥ अरु लोकों का परावर तुज देख्या है॥ अब
जीवन्मुक्ति विलासी हूया है॥ हे साध बादशा सूर्य तो उदे
हूए नहीं॥ जो प्रलेकाल विषे तपावते हैं॥ अरु पहाड जलते
हैं॥ अब तूं किंउ शरीर कों त्यागता हैं॥ उन्मत्त पवन तो चला
नहीं॥ त्रिलोकी कों भसम उडावणे वाला॥ अरु देवत्यों के वि
मान तिस कर गिडे नहीं॥ तूं किंउ शरीर कों त्यागता हैं॥ पुह
कर मेघ अरु उह विद्युली फुरणे लागी नहीं॥ अर पहाड तो प
रस्पर युध करणे लागे नहीं॥ जो तिन के बडे शब्द होते हैं॥
अरु कल्पांत के मेघ तो गर्जणे लागे नहीं॥ तूं किंउ वृथा श
रीर कों त्यागता हैं॥ अब तो मैं नक्षत्रों कों खैंचणे लागा नहीं॥ मैं
नक्षत्रों विषे विचरता हों॥ तां ते तूं शरीर कों किंउ त्यागता हैं॥
हे साध जीव अज्ञान कर स्थूल भया है॥ अर्थ इह जो देह
विषे आत्माभिमान कीया है॥ तिस कर मन व्याकुल रहता
है॥ अरु दुःखों कर पीडा जीर्ण होता है॥ तिस कों म[illegible]न
ता है॥ मैं कृष्ण हों॥ दुखी हों मूढ हों॥ अरु अनात्म अभिमा
न विषे दृढ निश्चा है॥ इह भावना जिस के अंतर स्थित है॥
तिस कों मरण श्रेष्ट है॥ अरु जिस कों तृष्णा पीडा जलावती
है॥ जो पुरुष आधि व्याधि दुःखों कर पीडा जलता है॥ अरु का
म क्रोध रूपी सर्प जिस के अंतर फुरते हैं॥ देह रूपी सुकाव
हो विकारी चंचल चित्त है॥ तिस कों मरण श्रेष्ट है॥ देह का त्याग
णां लोकों विषे मरण कहते हैं॥ स्वरूप के नास किसी का
नहीं होता॥ नावें ज्ञानी होवे॥ नावें अज्ञानी होवे॥ हे साध जि
स की बुधि आत्मतत्व के अवलोकन तें ज्ञात सों उपरत
भई है॥ ऐसा यथार्थदर्शी ज्ञानवान है॥ तिस का जीवणा

श्रेष्ट है॥ सो पुरुष सम्यक ज्ञान कर हेय उपादेय तें रहित
चैतन्य तत्व विषे तद्रूप चित्त भया है॥ तिस कों जीवन्मु
क्त जानता है॥ जिस का अंतर राग द्वेष तें शीतल भया है॥
अरु दृश्य वर्ग कों साक्षीभूत होकर देखता है॥ तिस को
जीवन्मुक्त श्रेष्ट है॥ जिस पुरुष ने संकल्प तें रहित चित्त
कों आत्मा विषे जोड्या है॥ तिस कों जीवन्मुक्त जानता है
चित्त कों शांतवान करके लीलावत जगत के कार्यों विषे
विचरता है॥ ऐसा जो वासनां तें रहित पुरुष है॥ तिस कों
जगत विषे जीवन्मुक्त जानता है॥ इष्ट की प्राप्त विषे हर्ष
वान नहीं होता॥ अनिष्ट के प्राप्त तें द्वेषवान नहीं होता॥
ग्रहण त्याग की बुधि नष्ट भई है॥ तिस कों जीवन्मु
क्त जानता है॥ जिस के दर्शन कीये तें आनंद उपजे॥ तिस
का जीवन्मुक्त श्रेष्ट है॥ जिस के उपदेश कर हिर्दे कमल
प्रफुलित हो आवे॥ तिस का जीवन्मुक्त जानता है॥ ॥
इति श्री उपशम प्रकरणे लोग्र क्लोदोपाख्याने नारायणोप
देशो नाम सर्गः॥ ३९॥ श्रीभगवानोवाच॥ हे सा
ध्य देह जो इस साथ स्थित दृष्ट आवती है॥ तिस का
नाम जीवन कहते हैं॥ अरु इस देह कों त्याग कर औ
र देह विषे जो प्राप्त होणा इस का नाम मर्ण कहते हैं॥
हे बुधिवान इस दोनों पक्षों ते जो मुक्ति है॥ तिन कों म
र्णो क्या अर जीवण क्या॥ तां तें तूं दोनों तें मुक्ति हैं॥ इह
जीवण मर्ण दोनों नाममात्र हैं॥ अरु गुणवान का जी
वण जानता है॥ अरु मूर्खों का मर्ण जानता है॥ अर तें
न जीवता हैं॥ न मरेंगा॥ देह के होते भी तूं विदेह हैं॥ आका
श की न्याई असंग संग हैं॥ तां तें तूं देह विषे भी निर्लेप
रहेंगा॥ तूं अब जाग्या हैं॥ आप कों जिउ का तिउ जाण्या
है॥ इह देह परिछिन्न रूप है॥ अर तूं सर्वदा सर्व प्रकार
सर्वात्मा चैतन्य प्रकाश रूप है॥ देह तें निर्लेप है॥ इंद्री
या अरु मन आदिक की क्रिया तुज कर पडी होती है॥
सन का कर्त्ता भोक्ता तूं ही हैं॥ अरु निर्लेप हैं॥ तत्व दर्शी

११८

117 कोंकिसीविषेरागद्वेषनहींहोता॥ जोप्रलैकालकापव
नचलै॥ तोभीचलायनहींसकता॥ कल्पांतकेदुखआन
उदेहोवें॥ तोभीज्ञानवानअपणेआपविषेस्थितहोताहै
उसकरचलायमाननहींहोता॥ हेसाधोइसदेहकेनष्ट
हूंए नष्टकोऊनहींहोता॥ इसदेहविषेजोपरमात्मआत
माहै॥ सोदेहकेहोणेकरहोतानहीं॥ अरुदेहकेनष्टहूंए
नष्टनहींहोता॥ जोबुधिवानपुरुषहैं॥ सोसर्वकर्ताभीअ
कर्ताहै॥ किसीजगतकेपदार्थोंविषेग्रहणत्यागकीइछा
नहींराखते॥ जबकर्त्तृत्वभोक्तृत्वशांतिहोगया॥ तबशां
तिपदशेषरहताहै॥ इसनिश्चैकीदृढताकोंबुधिवान
मुक्तिकहतेहैं॥ जोप्रबुधपुरुषहै॥ सोचिन्मात्रस्वरूपहै
ग्राह्यअरुग्राहकभावदेहइंद्रीयोंकरहोताहै॥ जिसके
तिदेसोंग्रहणत्यागभावदूरहुआहै॥ सोजीवन्मुक्तिहै॥ ऐसी
स्थिततिनकोंउदेहोताहै॥ सर्वभावविषेक्षोभवाननहीं
होता॥ जिनकीचेष्टाअर्धसुषुप्तकीन्याईहै॥ सोसर्वजगत
विषेआत्माकोंदेखताहै॥ आत्मविषयणीबुधिकरकैसु
खविषेहर्षवाननहींहोते॥ दुखविषेखेदवाननहींहो
ते॥ उहआत्मतत्वविषेजागतहैं॥ अरुसंसारकीओर
तेंसोएहैं॥ दोहडा॥ सभभूतोंकीयांनिद्राजागतजो
गीताहि॥ जामेंजागतभूतसभ॥ सामुनिनिद्रालखाइ
॥१॥ हेपुत्रअबतूंपरमपदकोंप्राप्तभयाहैं॥ एकदिनब्रह्म
काइसदेहसाथभोग॥ अरुराजलक्ष्मीकोंव्यतीतकर
बहुडुविदेहमुक्तिपरमपदकोंपावेंगा॥ ॥इतिउ
पशमप्रकरणेप्रह्लादोपाख्यानेनारायणबोध
नेनामसर्गः॥ ४० ॥श्रीवसिष्ठोवाच॥ हेरामजीज
गतरूपीरतनोंकाडब्बा त्रिलोकीविषेजिसकादर्शन
अद्भुतहै॥ ऐसापद्मनाभिजोविष्णुजीहै॥ सोचंद्रमाकी
न्याईशीतलवाणीकरइसप्रकारकहतभया॥ तबप्र
ह्लादजीअपणेनेत्रोंकोंखोलतभया॥ धीर्यकोंलीएंको
मलवचनमननभावकोंग्रहणकरकहतभया॥ प्र

रामोवाच॥ हे देव मैं तुज को चिरपर्यंत अंतर निर्मल बुधि कर देख्या है॥ अरु चर्म दृष्ट कर बाह्य देख्या है॥ चक्र कल्याण हूया॥ हे महेश्वर अपणा आप स्वरूप अनंतात्मा है॥ सर्व संकल्पों तें रहित आकाशवत निर्मल है॥ अब मुज कों न शोक है॥ न मोह है॥ न वैराग है॥ न देह के त्यागणे की इछा है॥ न देह के राखणे विषे हर्ष है॥ मैं यथा इछित अपणे आप विषे अपणे आप कर स्थित हों॥ इस प्रकार मैं नित निर्मल संवित विस्त्रत पावन रूप केवल स्थित हों॥ हे कमल नयन जो सर्वत्र ही है॥ विस्त्रत आत्मरूप है तब हेय उपादेय दूसरा भाव कल्पना कहां होवे॥ इस संपूर्ण जगत विषे किस का त्याग करीये॥ इह संपूर्ण जगत विज्ञानरूप भासता है॥ केवल अपणे स्वभाव कर दृष्टारूप द्रष्टरूप होकर भासणे लगा है॥ तिस द्रष्टा विषे विश्रांत वान हूया हों॥ अपणे आप कर अपणे आप विषे विश्राम पाया है॥ अब भावाभाव पदार्थ जगत के सों मुक्त हूया हों॥ हेय उपादेय तें रहित मुज कों आत्मतत्व भासता है॥ सो सम भाव कों प्राप्त भया हों॥ अब मुज कों संसे कछु नहीं रहा॥ जो कछु त्रिलोकी विषे कर्त्ता है सो तेरी पूजा कर्त्ता है॥ जब लग इह विदेह नहीं हूया॥ तब लग तेरी पूजा करणे योग है॥ आदर संयुक्त तुम ग्रहण करो॥ इस प्रकार देवतों का राजा कहि रहा॥ तब क्षीर समुद्र विषे सयन करणे हारे विष्णु देव जी पहाडों का राजा जो सुमेर है तिस के पाणी साथ विष्णु जी कों अर्घ पाद्य पूजन कर्त्ता भया॥ बहुड इंद्र चक्रादि पद्म आदिक शस्त्रों का पूजन कीया॥ बहुड देवता विद्याधरों का पूजन कीया॥ इस प्रकार गोविंद नारायण की पूजा परवार संयुक्त कर्त्ता भया॥ तब लक्ष्मीपति विष्णु भगवान जी कहते भए॥ श्री भगवानोवाच॥ हे देवतों के ईश्वर उठ खडा हो सिंहासन पर बैठ मैं तुज कों

अपणे हाथसों अभिषेक देताहों ॥ पांचजन्यशंखबजाव
ताहों ॥ तिसकाशब्दसुणकरसनदेवतासिधसमूहआय
करतेरामंगलउत्साहकरेंगे ॥ इसप्रकारकहिकरपुंडरी
काक्षविष्णुदेवजीदैत्यकोंसिंहासनपरबैठगया ॥ बैठाय
करक्षीरसमुद्रसप्तसमुद्रोंका अरुगंगाजलसनतीर्थोंका
जलमंगाया ॥ बडुडपांचजन्यशंखबजाया ॥ तिसकेश
ब्दकरसनदेवतेसिधमुनिरिषविद्याधरलोकपाल आ
ए ॥ सर्वोत्तमपुरुषदैत्यराजकेनिमित्त आए ॥ सनकोंभगवा
नखेंचलीया ॥ सनउस्तुतिकरणेलागे ॥ प्रल्हादकोंअभिषे
ककीया ॥ मधसूदनजीइसप्रकारकहतेभए ॥ हेनिहपाप
प्रल्हादजबलगसुमेरुकेधारणेहारीपृथवीहै ॥ अरसू
र्यचंद्रमाकामंडलहै ॥ तबलगतें अखंडितगुणवानरा
जकोंकर ॥ अरइष्टअनिष्टकाफलजोप्रवरूपहै ॥ सोसम
बुधिवीतरागहोकरभोग ॥ अरुराजकीपालनाकर ॥ इस
राजकीतुमकोंपूर्णभूमिकाप्राप्तभई है ॥ तिसविषेस्थित
हूए जैसागुणोंकाप्रवाहप्राप्तहोवे ॥ तैसाहर्षशोकतेंरहि
तहोकरभोगो ॥ अहंममभावावासीवतेंरहितहूयातेंबंध
माननहोवेंगा ॥ अबदैत्योंकारुधिरभूमिपरनपडेगा ॥
अर्थइहजोदेवतोंसाथयुधविरुधनहोवेगा ॥ आजतेंले
करदेवतेअरदैत्योंकासंग्रामगया ॥ जैसेमंदराचलतेंर
हितक्षीरसमुद्रशांतिकोंप्राप्तभया ॥ तैसेदेवतेअरुदैत्य
स्वास्तिहीरहेंगे ॥ मोहरूपजोनिद्राहै ॥ सोतेरेरिदेसोंनष्टभ
ई है ॥ सदाप्रकाशरूपरिदेकीलक्ष्मीप्राप्तभई है ॥ अनं
तविलासकोंभोगतालक्ष्मीकोंभोग ॥ ॥ इतिउपशम
प्रकर्णेप्रल्हादोपाख्यानेप्रल्हादअभिषेकोनाम
सर्गः ॥ ४१ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हेरामजीइसप्रका
रविष्णुजीपुंडरीकाक्षकहिकरमानुषदेवताकिंनर
आदिकसहितपरवारसंयुक्तगमनकर्तेभए ॥ देवत्योंके
समूहकोंविदाकर्के आपक्षीरसमुद्रविषेशेषनागके
आसनपरस्थितजातेभए ॥ प्रल्हादकीपुहपअंजलीलेके

इंद्रकों अपणी स्वर्ग विषे भेज्या ॥ तब विगतज्वर हूए ॥ अर्थ
इह जो विष्णुजी कों सृष्टि स्थित करणे की चितवन थी ॥ जो
प्रह्लाद विनां किस प्रकार होवेगी ॥ सो प्रहलाद कों स्थित
कीया ॥ सर्व चितवनां नष्ट भई ॥ हे रामजी इह प्रह्लाद की
संपूर्ण अवस्था तुजकों कही है ॥ जो इसकों विचारेगा ॥
सो परमपद कों प्राप्त होवेगा ॥ सम्यक विचार करकें इसके पा
प नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी अज्ञान रूपी जो पाप है ॥ सो इ
सके विचारतें नष्ट हो जाता है ॥ पाप का कारण जो अज्ञान
है ॥ तिसके नाश करणेहारा इह विचार है ॥ श्रीरामोवाच
॥ हे भगवन प्रह्लाद का मन जो परमपद विषे गलमग
या था ॥ पांचजन्य शंख के शब्द करकें तिस कों महात्मा पु
रुष कैसे जगाया ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे निहपाप रा
मजी ज्ञानी कों विषे मुक्त दो प्रकार की है ॥ एक सदेह मुक्त
है ॥ एक विदेह मुक्त है ॥ अब इनका भिन्न भिन्न विभाग
सुण ॥ जिस पुरुष की बुध देहादिकों विषे असंसक्ति है
ग्रहण त्यागतें रहित चेष्टा कर्त्ता है ॥ तिस कों जीवन्मुक्त
जान ॥ देहतें विदेह कों पावे ॥ तिस कों विदेह मुक्ति कहते
हैं ॥ विदेह वासनातें रहित होता है ॥ अरु जीवन्मुक्ति अ
हंकारतें रहित होता है ॥ क्रिया कर्त्ता है ॥ तो भी अकर्त्ता
शांति रूप है ॥ हे महाबाहु रामजी प्रह्लाद के अंतर शुध
वासना थी ॥ इस कर पांचजन्य शंख के शब्द कर जगाया
अरु इह जो विष्णु है ॥ सो सर्व भूतों का आत्मा है ॥ जैसी ति
सकों इच्छा फुरती है ॥ तैसी शीघ्र ही होती है ॥ सो विष्णुजी
सभ का कारण है ॥ कोऊ इसका कारण नहीं ॥ सृष्टि की
उत्पत्ति स्थित निमित्त विष्णुजी वपु धारता है ॥ आत्मा के
देखणे कर माधव विष्णुजी का दर्शन होता है ॥ अरु मा
धव के आराधनतें शीघ्र ही आत्मा का दर्शन होता है ॥
आत्मा के देखणे निमित्त तुम भी इस दृष्टि कों आश्रय करो
इस दृष्टि कर शीघ्र ही परमपद की प्राप्त होवेगी ॥ निरं

तर आत्मपद है। तिसकों पावेंगा॥ ॥इति उपशम प्रक
रणे प्रहलाद अवस्था पतंनाम सर्गः॥४२॥ श्रीरा
मोवाच॥ हे भगवन सर्व धर्मों के ज्ञाता तेरे वचन पर
म कल्याण रूप हैं। तिनके श्रवण कर मैं आनंदमान
हूया हों। जैसे चंद्रमा की किरणों कर औषधी पुष्ट हो
ती हैं। तैसे तुमारे वचनों कर रिदा खिड आया है। तुम
जो कहते हो। सज्जन का कार्य अपणे पुरुषार्थ कर सिध
होता है। तो प्रह्लाद माधवजी के वर बिना किउं न जाग
ता भया। जब विष्णुजी वर दीया तब जाग्या॥ श्रीवसि
ष्ठोवाच॥ हे राघवजी जो कछु प्रह्लाद को प्राप्त भया है॥
सो महात्मा पुरुष को अपणे पुरुषार्थ कर प्राप्त होता है
काहे ते जो आत्मा विष्णु नारायण विषे भेद कछु नहीं॥
जैसे श्वेतता अरु बरफ विषे भेद कछु नहीं। तैसे आत्मा
अरु विष्णु विषे भेद कछु नहीं। जो विष्णु है सोई आत्मा
है। जो आत्मा है सोई विष्णु है। विष्णु अरु आत्मा दोनों ए
क वस्तु के नाम हैं। अरु प्रह्लाद जिसका नाम है। तिस
कों प्रथम अपणे आप कर आप ही अपणी प्रेमा भक्ति सों
विष्णुजी न भक्ति विषे जोडता। प्रह्लाद आत्म शक्ति कर जुड र
या। जुडा हूया। आत्मा ते आप ही वर पावता भया। और
आप ही अपणे विचार करके अपणे मन को जीता। इह जी
वक दी चित अपणे आप ही कर अपणी शक्ति सों जागता
है। कदी विष्णुजी की भक्ति कर जागता है। विचार ते रहित
पुरुष को विष्णुजी भी ज्ञान देणे को समर्थ नहीं होता। आ
त्मा के साक्षात्कार विषे मुख्य कारण पुरुषार्थ विचार है
गौण कारण वरादिक हैं। तां ते बल कर के पंच इंद्रियों को
वश कर। जे पुरुष प्रयतन विना जनार्दनजी उधार कर्त्ता
होवे। तो अनंत प्रकार के जीवों को दर्शन दे कर उधार किं
उ नहीं कर्त्ता। जो गुरु पुरुषार्थ विना उधार कर्त्ता होवे। तब
अज्ञानी अविचारी ऊंट बैल अरु वरपक्षयों का किउं नहीं
उधार कर्ते। अपणे मन के स्वस्ति कीये विना परम सिधता

काश्रात्ममहापुरुषनहींजानते हेरामजी आपकर आप
णी आराधनाकर अपणेकर आपको देख आपक
र अपणे विषेस्थितहो अभ्यासयतनमुख्य है इसतें जो
रहितहै तिसको पूज्यपूजकोका कमकहा है जोइंद्रीयों
कोवसनहींकरसकते जिस इंद्रीयोंको वस्य कीयाहै
तबतेदपूजासाथ्याश्रयोजनहै उपशमविचारवि
नां विष्णुजीकी भक्ति सिधनहीं होती तांते उपशमविचा
रसंयुक्त आत्माका आराधनकर तिसकरसिधता
कोपावेगा जोप्राणी विष्णुजीके आगें प्रार्थनाकर्त्ती है
सो आत्माके आगें किउं नहीं कर्त्ती सभजीवोंके अंतरवि
ष्णु आत्मा स्थितहै तिसकोत्यागकरजोबाह्यविष्णुप
रायण होतेहैं सोबुधिवाननहीं रिदेगुहाविषेजोचेत
न्यतत्वहै सोईश्वरका सनातनवपुहै अरुशंखचक्रजि
सकेहाथविषेहैं सो आत्माका गौणवपुहै जोमुख्यकोत्या
गकरगौणकी ओरधावतेहैं सोविद्यमानकोत्यागक
र आवरणार्थ आसाको बढावतेहैं हेरामजी जैसा विष्णु
रूद्रजिसका नामहै इनको चिरकालपर्यंत पूजता र
हे अरु मन उपशमविचारसंयुक्त नहीं भया जब उह
बहुतकालहोवैं तोभीइसको संसारसमुद्रतें तराय
नहीं सकते जोनिर्भयसर्वदुःखोंतेरहित आत्मपद है
तिसविषेस्थितहोवो॥ ॥इतिउपशमप्रकर्णेमोक्ष
उपायेमूलदोषाख्यानेप्रल्हादउपाख्यानसमाप्त
नामसर्गः॥ ४३ ॥श्रीवसिष्ठोवाच॥ हेरामजी संसा
रनामवालीजोमाया है सोअनंत है जबचित्तवस्य होवैतब
निवर्तहोजातीहै अन्यथानिवर्त्तनहींहोती जैताकछु
जोगत देखणेविषेआवता है सोसभमायामात्रहै सोस
भचित्तके नासकरकेनासताहै इसके ऊपरपरवइ
तिहासकहयाहै सोसुण॥ अथकथागाधिकी॥ हे
रामजी पृथ्वीविषे एककोसलनामदेश है सोकैसा
देश है जोरतनोंकरपूर्णहै तिसदेसविषेएकगाधि
नामब्राह्मण होतभयाहै सोकैसाथा जोवेदविद्या

चतुर
विषेप्रवीनथा ॥ मानोवेदोंकीमूर्तिथा ॥ अरुबालिकअ
वस्थातेंलेकरवैराग्यादिकगुणोंकरसंपन्नशोभतामन
या ॥ एककालमोंकछुकामनामननविषेधारतपकरणे
कोबनमों ॥ तिसकरशोभतामनया ॥ जैसेप्रकाशकरभव
नशोभताहे ॥ तैसेशोभतामनया ॥ एककालमोंकछुकाम
नामननविषेधारकरविष्णुजीकातपकरणेलागा ॥ अ
पणेकार्यकोमननविषेधारकरविष्णुजीकेध्यानविषेरा
त्रिदिनजलमेंखडारहा ॥ तबबडेतपकोंदेखकरविष्णु
जीप्रसन्नहूए ॥ जहांब्राह्मणतपकर्ताथा ॥ तहांआनप्राप्त
भए ॥ अरुकहा ॥ हेब्राह्मणजलतेंनिकसकरजोकछु
वांछितहे ॥ सोफलमांग ॥ तबगाधकहा ॥ हेभगव
नअसंख्यजगतकेजीवोंकाजोरिदाकमलहे ॥ तिसके
तुमभौंमरेहो ॥ जैसेईश्वरजोतुमहो ॥ त्रिलोकीरूपीक
मलकेतुमतलावहो ॥ सोतुमकोंमेरानमस्कारहै ॥ हेभ
गवनमुजकोंएहीइछाहे ॥ जोतुमारीमायाआश्चर्यरूप
हे ॥ जिसकरइहजगतरचाहे ॥ किसीप्रकारतिसकोंदे
खों ॥ हेरामजीजबइसप्रकारगाधब्राह्मणकहा ॥ तबे
विष्णुभगवानकहा ॥ हेब्राह्मणतंमायाकौंदेखेंगा ॥ देख
करबहुडत्यागभीदेवेंगा ॥ ऐसेकहिकरविष्णुजीअं
तर्धानहोगए ॥ तबब्राह्मणवरकोंपाकरआनंदमान
हूया ॥ चलतेंबेठतेंसुरतविष्णुजीकेवरविषेरहे ॥ जो
मयमायाकबदेखोंगा ॥ तबकिसीकालमोंतिसीतला
वविषेस्नानकर्णेलागा ॥ अघमर्षणकहायेपापोंकाना
शकर्तातिसमंत्रकेंजपत्येंजपत्येंतिसकाचित्तविपर्य
यहोकरनिकसगया ॥ तबउसकोंस्नानमंत्रभूलगया
बहुडआपकोंआपणेगृहविषेदेखतामनया ॥ बहुडआ
पकोमृत्युहूयादेखतामनया ॥ जोमेंमृत्युहूयाहों ॥ अरुस
नकटुंबकेलोकरुदनकर्तेहें ॥ शरीरकीकांतिजातीर
हीहे ॥ प्राणनिकसगए ॥ अरुनेत्रफटगए ॥ अंगभस्महो
गए ॥ तबबांधवलोककहतभए ॥ अबइहअमंगलरूप
हे ॥ इसकोंजलाईये ॥ ऐसेकहिकरजलावणोंकोंलेचले

अमनकरत
नयावन

त्रिखा विषे पाजलाया॥ जलाय कर अपणे गृह मों आए॥ क्रि-
या कर्म करणे लागे॥ हे रामजी तिसके अनंतर ब्राह्मण कूं-
न देश विषे एक चंडाल का गृह था॥ तहां आप कों चंडाली
के गर्भ विषे देखत भया॥ जो मैं यहां आन पडा हों॥ समें पा-
कर गर्भ तें बाहर निकस्या॥ रूपमान मूर्त्ति बहुत सुंदर चंडा-
ली की उस साथ बहुत प्रीति भई॥ जब द्वादश वर्ष का भया
बहुड षोडश वर्ष का भया॥ तब स्वानों कों साथ ले कर मृ-
गों कों मार ल्यावे॥ बहुड एक चंडाल के गृह विषे विवाह
हूया॥ बहुड पुत्र कलत्र वाला हूया॥ जोबन अवस्था कों
गृह विषे व्यतीत कीया॥ बहुड वृद्ध भया॥ तब पत्रों की कुटी
बणा कर बाहिर जा रहा॥ उहां दुर्भिक्ष पडा॥ इसके जो बां-
धव थे सो क्षुधा कर मरणे लागे॥ तब उहां तें एकला निकस्-
या॥ केई स्थानों कों लंघता गया॥ एक कीर देश विषे जा नि-
कस्या॥ अरु उहां का राजा मृत्यु हो गया॥ तिस राजे का बडा
सुंदर हस्ती था॥ तिसकों मंत्रीयों ने छोड रख्या॥ जो कोउ पुरु-
ष प्रथम इसके मुख लागे॥ तिसकों राजा करणा॥ उह हस्ती च-
ल्या आवता था॥ तिसनें इसकों देख्या॥ बहुड सुंदर चरणों क-
र चल्या आवे॥ मानो सुमेर पर्वत चल्या आवता है॥ जब नि-
कट आया॥ तब हस्ती इसकों सिर ऊपर चडा लीया॥ तब नि-
गारे तुरीयां बाजणे लागे॥ जो जय राजा की जय राजा की॥ व-
डे निगारे बाजणे लागे॥ मानो प्रले काल के मेघ गर्जते हैं॥ अ-
रु नटादिक उस्तत करणे लागे॥ जब हस्ती पर बैठे तिसकी
शोभा वधाई॥ जैसे तारों विषे चंद्रमा शोभता है॥ तैसे शो-
भत भया॥ अंतहपुर राणीयों विषे जा स्थित भया॥ जेती क-
छ राजा के अंतहपुर विषे राणीयां सहेलीयां थी॥ सो सब इ-
सके निकट आईयां॥ अरु इसकों वटणा मलणे लागीयां॥
स्नान कराइके हीरा मोती आदिक भूषण पहिराये॥ ति-
स कर राजा शोभता भया॥ सब स्थान सब देशों विषे इस-
की आज्ञा चलणे लागी॥ अरु बडे तेज कर संपन्न हूया॥ अ-
रु लक्ष्मी कर शोभता भया॥ इस प्रकार चिरकाल पर्यंत रा-
ज करता भया॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे गाधि चंडालरा-
ज्यप्राप्त नाम सर्गः॥ ४४ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥
हे रामजी इस प्रकार राजलक्ष्मी कों पाकर आनंदमान

हुया॥ जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है॥ तैसे राजा राज
लक्ष्मी कर शोभता भया॥ आठ वर्ष पर्यंत राज कर्त्ता भया
तब एक समें वस्त्र भूषण पहिरते हूए बैठा था॥ जो मन
विषे संकल्प आन फुरना॥ जो मुज कों वस्त्रों अरु भूषणों
के पहिरनें कर क्या है॥ मैं तो राजा आपणे तेज कर तेजस्वी
हों॥ सोभावान हों॥ हे रामजी ऐसे विचार करके भूषण व
स्त्र उतार डारते॥ शुध स्वरूप मूर्त्ति होकर स्थित भया॥ जैं
से प्रातःकाल कों तारागण के अभाव हूए स्याम आका
श रहि जाता है॥ तैसे होकर बहुड़ आपणी चंडाल अव
स्था के वस्त्र पहिर के एकला ही निकस्या॥ बाह्य की देढी
विषे जा स्थित भया॥ तब हूए देखके चंडाल जो दुर्भिह
कर छाड आए थे॥ तहां के वडे चंडाल जहां सों आनिक
से॥ तिनों विषे एक चंडाल तंबूरी हाथ विषे धार कर गाव
ता आवता था॥ जैसे कोइलों के समूह विषे एक कोइल
शब्द करे॥ तैसे एक चंडाल गावता आया॥ राजा कों देख
कर पछाण्या॥ पछाण कर राजा के सन्मुख आया॥ मानों
स्याम पर्वत चल्या आवता है॥ आकर कहत भया॥ हे भा
ई एता काल तूं कहां था॥ हम कों तूं छाड कर एकला ही
सुख भोगणे लागा हैं॥ हे भाई ईहां के राजा तुज कों सुखी
कीया होवेगा॥ काहेतें जो तूं गावता भला हैं॥ राजा कों रा
ग प्यारा होता है॥ अरु तूं कोकला की न्याईं गावता हैं॥ इस
कर तुज कों बहुत धन दीया होवेगा॥ अथवा अवर धनी
कों तुज प्रसन्न कीया होवेगा॥ तां तें तूं सुखी भया हैं॥ हे रा
मजी इस प्रकार उह चंडाल मुखतें कहता तिसके सन्मु
ख आया॥ अरु राजा नेत्रों साथ उस चंडाल कों जनाए॥
जो तूं लक्ष्मी हो॥ मुखतें बोलन नहीं॥ अरु उह चंडाल कछू
समझे नहीं॥ सन्मुख चल्या आवे॥ जिउं जिउं राजा वर्जे ति
उं तिउं उह अधिक कहे॥ अरु राजा के मुख की कांति घ
टती जावे॥ अरु ऊपर तें जरोखे सों सहेलीयां देखतीयां
उनों सब वृत्तांत देख्या॥ जो इह राजा चंडाल है॥ ऐसे बिचा

एक के महाशोक को प्राप्त भईयां॥ कहिणे लागीयां हाइ
हाइ इह हम को वडा पाप हूया है॥ जो इसके साथ स्प
र्श कीया है॥ अरु भोजन खाया है॥ ऐसी बात देख क
र उनके मुख की कांति भी घट गई॥ तब उह चंडाल
राजा अपणे अंतह पुर विषे आया॥ जेते कछु अंतह
पुर विषे लोक थे॥ सो सभ राजा को देख कर भागग
ए॥ मंत्री टहिलूए स्त्रीयां सभ भाग गए॥ तब तिस देश
विषे जो वडे पंडित थे॥ तिनों विचार कीया॥ जो इह पा
प और किसी प्रकार नहीं मिटता॥ तां ते चिखा बणा
इ अग्नि विषे जल मरीये॥ तब पाप निवृत्त होवे॥ तब
पुत्र इस्त्रीयां बांधवों को त्याग कर पडे जलें॥ तां ते अ
नेक चिखा जलणे लागीयां॥ तब चंडाल राजा विचा
र करते भया॥ जो मैं यएक के निमित्त एते नगरवासी प
डे जलते हैं॥ तां ते मुझ को भी जलणा श्रेष्ट है॥ हे राम
जी उह राजा भी चिखा बणा के जल मूया॥ तब गाध
ब्राह्मण का सरीर जो ताल विषे डूबकी लई थी॥ सो
कंपायमान हूया॥ तब जल ते बाहर निकस्या॥ परस
वधान न भया॥ वालमीकोवाच॥ हे नारद जी जब
इस प्रकार वसिष्ठ जी कहा॥ तब सूर्य भगवान अस्त
हूया॥ सर्व सभा परस्पर नमस्कार कर के स्नान को ग
ए॥ बहुड रात्रि के नष्ट हूए सूर्य की किरणों साथ आ
न बैठे॥ ॥इति उपशम प्रकरणे राज प्रध्वंस व
र्णनं नाम सर्गः॥ ४४ ॥श्री वसिष्ठोवाच॥ हे राम
जी एता तम गाध ब्राह्मण ने दो महूर्तों विषे देखा।
बहुड अर्ध घटी पर्जंत तो इस को बोध कछु न हूया।
तिस ते अनंतर बोधवान हूया॥ अरु विचार करणे
लागा॥ जो मुझ को कछु भ्रम जैसा हूया है॥ कहां था उ
ह मेरा मरणा॥ कहां था चंडाल के गृह विषे जन्म लेणा
बहुड राज करणा॥ बहुड अग्नि विषे प्रवेश कर जल
णां॥ अरु कहां इह देश॥ जो गाध ब्राह्मण ई हां स्थित

122 हों। परब्रह्माजन्म मुजकों प्राप्त हूया है। हे रामजी ऐसें से वि
चारकर कें जलतें बाहिर निकस्या। संध्यादिक कर्म क
रनें लगा। इस नाम कों बहूड बहूड स्मरण करे। अरु
आश्चर्यमान होवे। पर ऐसे न जानें जो मैं भगवान का
वर पाकर माया देखी है। जब केतेइक दिन इस प्रका
र व्यतीत भए। तब एक ब्राह्मण दुर्बल जैसा क्षुधार्थी
थका हूया इसके आश्रम पर आया। तब गाधि उस
ब्राह्मण कों आदर संयुक्त बैठाया। अरु फल फूल ए
कठे करके तिसके आगें आन राखे। तब एक दिन
सयन अवस्था पर चर्चा वार्त्ता करणे लागे। तब प्रसंग पा
कर गाधि पूछा। जो हे ब्राह्मण तेरा सरीर रूप जैसा हू
या है सो कारण क्या है। हे रामजी जब इस प्रकार गाधि
पूछा। तब उस ब्राह्मण कहा। हे साधु एक कालमें दे
शांतर फिर्ती फिर्ती उत्तर दिशा की ओर गया। तब कि
रात देश विषे जा प्राप्त भया। तहां रहणे लागा। उहां के
गृहस्ती लोक मेरी बहुत प्रकार टहल करें। जो अन्न अ
रु वस्त्र कर टहल करें। तब मेरे मुखतें इह वचन नि
कस्या। जो ईहां के लोक श्रधावान अरु धर्मिष्ट हैं। त
ब उनों कहा। हे साधु ईहां आगे बहुत श्रधा अरु धर्म
था। अब कछु घट गया है। तब मैं कहा किउं घट गया
है सो कहो। तब उनों कहा। हे साधु इस देश का राजा
मृत्यु हूया था। बहुड राजा एक चंडाल आन हूया। प
रन्तु सम वि किसी नें न जाणा। आठ वर्ष पर्यंत राज क
रनें लगा। जब उसकी वार्त्ता प्रगट भई। जो इह चंडाल
है। तब देश के रहणे वाले क्षत्री ब्राह्मण उनों चिखा
बैठ कर सती अग्नि विषे जल मूए। इस प्रकार हजा
र जीवों के जलमूए हैं। अरु राजा भी जल मूया है। इस
कारण तें दया घट गई है। जब इस प्रकार मैं नगर वा
सीयों तें सुण्या। तब मैं शोकवान हूया। अरु उहां तें च
ल्या। प्रयागादिक तीर्थों के स्नान करकें छूछ चांडाय

णव्रतकीएहैं॥तिसवर्त्तोंकरमेराशरीररूष्टहोगया
है॥अबतेरेआश्रमपरआयाहूं॥हेरामजीजबइस
प्रकारब्राह्मणकहा॥तबगाधविस्मयकोंप्राप्तभया
जोमैंजानताथा॥जोमुजकोंभ्रमजैसाउपजाथा॥सोइ
सनेवार्त्ताप्रत्यक्षहोकरदिखाईहे॥बहुडबहुडपूछा
तबउसनेऐसेकहा॥तबसुणकरआश्चर्यमानहूया
जबरात्रिव्यतीतभई॥तबब्राह्मणरमतारहा॥तबगा
धएकलाहोकरविचारतभयां॥तांतेमैंउसीदेशकों
जावों॥जहांमुजकोंचंडालदेहभासाथा॥हेरामजी
विचारकरकैंगाधब्राह्मणचंडालअरराजभ्रमदे
खणेकेनिमित्तचल्या॥जातांजातांहूणदेशविषेजा
प्राप्तभया॥तहांचंडालोंकेस्थानगयां॥अरअपणी
कियाकेस्थानदेखे॥आश्चर्यमानपडाहोवे॥ग्राम
वासीयांसोंपूछे॥सोउनोंनेऐसेकहा॥जोश्यामजैसा
सुंदरसरीरवालास्मरणहै॥हेरामजीजबइसप्रका
रब्राह्मणपूछा॥तबग्रामवासीकहतभए॥हेब्राह्मण
एककटंचनामचंडालहोतभयाहे॥क्रमकरकैंउहव
डाभया॥उसकाविवाहहूया॥बेटीबेटासहितचंडाल
कटुंबीभया॥जबवृधहूया॥तबइनिह्मपडाईहांसों
छोडगया॥अरएकनगरकोराजामृत्युभयाथा॥तहां
जापहूंचा॥तबउहांकेलोकोंराजइसकोंदीया॥तहांआ
ठवर्षपर्यंतराजकर्त्तारहा॥जबनगरवासीयोंसुण्या
जोइहचंडालहे॥तबबहुतलोकअग्नोकवानहूए॥अ
रचिखाबणाइकेजलमूए॥इसप्रकारउसकावृत्तांत
हूयाहे॥हेरामजीइसप्रकारगाधसुणकरआश्चर्यमा
नहूया॥वारंवारपूछेइउहीकहें॥एकमासरहिकरआ
गेगया॥किरातदेशमोंजाप्राप्तभया॥जेतेकछुस्थानों
विषेविचरताथा॥सोसभनहींदेखताभया॥जहांसुंदरस्त्री
यांरहितीथी॥तिनकोंभीप्रत्यक्षदेखताभया॥तिनकोंदे
खकरनगरवासीयोंसोंपूछे॥जोईहांकोईचंडालराजा

जोमतेकैंसाभरम
देशकैंभरब्राह्मण
तकसृष्टिआयाभर
मसतकैंमैं[illegible]

नीहोतनयाहै ॥ हेरामजीजब इसप्रकारब्राह्मणपूछा ॥ त
बउहकहतभए ॥ हेसाधइहांकाराजामृतकहोयाथा
अरुमंत्रीयोंहस्तीछोडा ॥ जोकोउमंगलहस्तीकेसन्
मुखआवे ॥ तिसकोंराजाकरणी ॥ तबहस्तीकेसन्मुखचं
डालआनिकस्या ॥ तबतिसहस्तीचंडालकोंसीसपर
चढायलीया ॥ तबउसकोंराजतिलकदीया ॥ आठवर्ष
पर्यंतराजकर्त्ताभया ॥ पाछेंजोउसकेबांधवआए ॥ अ
रुइसकेसाथचर्चालागेकरणे ॥ तबसहेलीयांऊपरसों
देख्या ॥ जोइहचंडालहै ॥ जैसेजानकरउनोंइसकात्या
जौंम गकीया ॥ तबलोकनाईजनोंविचारकरचेष्टाकरतेभए ॥
सोसभहीजलमए ॥ बहुडउहराजाआपकोंधिकारक
केउहभीजलमया ॥ आठवर्षउसराजकीया ॥ अबबाद
शवर्षउसकोंबीतेहैं ॥ हेरामजीइसप्रकारश्रवणकरकें
गाधब्राह्मणआश्चर्यकोंप्राप्तभया ॥ कहांमैंजलविषे
स्थितथा ॥ कहांएतीअवस्थाकोंपावताभया ॥ जैसेविचा
रकरताथा ॥ जोपर्वतलावृत्तांतस्मरणमोंआया ॥ हौंविष्णु
जीसोंमायादेखणेकावरमांगपाया ॥ सोतिसमायाकर
एताभ्रमदेख्याहै ॥ अरुइहआश्चर्यहै ॥ जोईहांदोमहूर्
त्तव्यतीतभएहैं ॥ ऊहांआठवर्षोंकास्वप्नभ्रमहूयाहै ॥
सोभ्रमसतहोभासयाहै ॥ संसेनिवारणकेअर्थबडे
विष्णुजीकाआराधनकरों ॥ जिसकीमायाकरएताभ्रम
देख्याहै ॥ अवरकोईइससंसेकेनिवारणेकोसमर्थन
हीं ॥ हेरामजीजैसेविचारककेंगाधब्राह्मणवनकोंजा
करतहांजाकरतपकरणेलागा ॥ एकचुलीजलकीपान
करे ॥ भोजनकछुनकरे ॥ इसप्रकारदेढवर्षपर्यंततप
कीया ॥ तबत्रिलोकीकानाथविष्णुजीप्रसन्नहोकरब्रा
ह्मणकेनिकटआतभए ॥ अरुकहतभए ॥ हेब्राह्मणमे
रीमायातोंअबदेखीहै किंउ ॥ जोजगतजालकेरचणे
हारीहै ॥ अबओरक्याइछाकरताहैं ॥ हेरामजीजब
इसप्रकारविष्णुभगवानकहा ॥ तबब्राह्मणकहतभया

जैसे मेघ कों देखकर पपीहा बोले ॥ तैसे बोलत भया ॥ गा
धीवाच ॥ हे भगवन तेरी माया तो मैं देखी है ॥ पर एक
संसे मुजकों रहा है ॥ जो इह स्वप्न भ्रम की न्यांई देख्या है ॥ ति
स विबेक जकी विभमता कैसे भई ॥ जो ईहां दो महूर्त ब्य
तीत हूए हैं ॥ अरु उहां चिरकाल मैं भ्रमता फिरता हों ॥ अ
रु तिस जूठ भ्रम के पदार्थों कों जागृत विषै प्रत्यक्ष कैं
से देख्या है ॥ श्रीभगवानोवाच ॥ हे ब्राह्मण ओर क
छु नहीं ॥ तेरे चित्त का भ्रम है ॥ जिसके चित्त विषै तत्व की
अदृष्टता है ॥ तिसकों इह चित्त भ्रम होता है ॥ उह का भ्र
म था ॥ जेता कछु जगत देखता हैं ॥ सो तेरे चित्त का भ्रम है
इतर कछु नहीं ॥ सब तेरे ही चित्त विषै इस्थित है ॥ जैसे बी
ज के अंतर वृक्ष होता है ॥ तैसे पृथ्वी जल तेज वायु आ
काश जेता कछु प्रपंच तुजकों भासता है ॥ विस्तार सहि
त सो चित्त विषै स्थित है ॥ अरु जब चित्त स्पंद फुरता है ॥
तब वह विस्तार संयुक्त जगत भासता है ॥ सो सब चित्त का
भ्रम है ॥ वासना सहित चित अनेक भ्रमकों देखता है ॥
अरु जो वासनां तें रहित चित्त है ॥ तिसकों सर्वात्मा ही द
ष्टि आवता है ॥ तातें चित्त ही कों स्थित कर ॥ हे ब्राह्मण इस
चित्त विषै केई कोटि ब्रह्मांड स्थित हैं ॥ जो तुजकों चंडाल
अवस्था का अनुभव हूया ॥ तो इस विषै क्या आश्चर्य है
तूं कहता हैं ॥ जो मैं वनी माया देखी है ॥ सो तुज क्या देखी है
जो कछु तुजकों द्रूप भासती है ॥ सो सभी माया मात्र है
जो कछू तुजकों आपणे गृह विषै मरणे का अनुभव भ
या था सो भी माया थी ॥ राजकर्णी भी माया थी ॥ चरवा वि
षै जलणा भी माया थी ॥ अतिथ ब्राह्मण कों मिलकर च
र्चा पूछी भी माया थी ॥ कदंनी होणा भी माया थी ॥ राजक
र्णी भी माया थी ॥ बहुर इसनान देख्या भी माया थी ॥ जैसे
एते भ्रम तुज माया मात्र देखे हैं ॥ तैसे इह जगत भी माया सब
मात्र है ॥ हे साधु जैसे स्वप्ने विषै नाना प्रकार के पदार्थ
पड़े भासते हैं ॥ तैसे इह जगत भी सब माया मात्र जान ॥
हे साधु इस चित्त के भ्रम करकें जगत भासता है ॥ अरु चि

तके स्थित हूए नष्ट होजाता हे। सो चित्त का नष्ट होणा क्या
हे। चित्त कों अफुर कर्णा इह नष्ट होणा है। जब इह फुर्णा
अंतर्मुख आत्मा की ओर आवे। तब जगत भ्रम मिट जा
वे हे साध इह सर्व जगत मायामात्र है। कोऊ पदार्थ सत्य
नहीं। जैसे उह भ्रम तुज कों मायामात्र भास्या हे। तैसे इह
भी मायामात्र है। हे रामजी इस प्रकार विष्णु देवजी कहि
कर उठ खडे हूए। तब गाध अरु रिषीश्वर मुनीश्वर थे
सो सर्व विष्णु देव की पूजा कर्ते भए। पूजा लेकर क्षीरस
मुद्र कों गमन कर्ते भए। तब उह गाध उठकर उसी भ्रम
कों देखणे लागा। किरात देश विषे गया। तिन कों देख
कर आश्चर्यमान होवे। अरु कहे जो भगवान जी कैसे
मायामात्र कहते हैं। इह तो मैं प्रत्यक्ष देखता हों। बहुड
कहता भया। इस संसे के निवर्त्त कर्णे कों और कोऊ सम
र्थ नहीं। ताते बहुड विष्णु जी का आराधन करों। हे रामजी
ऐसे विचार करकै गाध ब्राह्मण बहुड तप करने लागा।
तब थोडे काल मों विष्णु भगवान प्रसन्न होकर आए।
अरु कहा। हे ब्राह्मण अब तूं क्या चहता हैं। तब गाध क
हा। हे भगवन तुम कहते हो सर्व भ्रम मात्र है। अरु मुज
कों प्रत्यक्ष रूप पडा भासता हे। जे भ्रम होता तो प्रत्यक्ष हो अनु
भव न होता। अरु थोडे काल विषे बहुत काल किउं क
रस माणा। इह भी संसा हे सो निवर्त्त करो। हे रामजी गाध
जब इस प्रकार कहा। तब भगवान जी कहते भए। हे ब्रा
ह्मण जो कछु तुज कों इह भासता हे। सो सर्व मायामात्र हे
इतर कछु नहीं। अरु जिस प्रकार तुज कों इह अनुभव
भया हे। सो सुण। हे ब्राह्मण उह कटंच नाम चंडाल एक
चंडाल के गृह विषे उत्पत्त भया था। बहुड क्रम करकै उह
वडा भया। बहुड विवाह संतान हूई। दुर्भिक्ष पडा। तब उ
स देश कों त्याग कर किरात देश का राजा जाइ हूया। ब
हुड लोकों सुणया। जो इह चंडाल हे। तब सभी अग्नि वि
षे जल मए। सो कटंच चंडाल और था। तिस कों इह अ

वस्था भई थी॥ जो पाछें उह भी जलमया॥ सोई प्रतिभा तुज
कों [illegible] ऽआन फुरी है॥ जैसी ऽअवस्था उसकों प्राप्त हूई थी
तैसी तेरे चित्त विषे ऽआन फुरी है॥ इस कारण तें तूं जो भ्रा
न्ता भया है॥ जो इह ऽअवस्था मैं देखी है॥ इसी का नाम भ्रमा
या है॥ हे साधु ऽएक समात्र तें ऐसे भी होता है॥ जो ऽऔर की
प्रतिभा ऽऔर कों फुर ऽआवती है॥ कहूं ऽअमोघ भी फुर
ऽआवती है॥ कहूं एक जैसी फुर ऽआवती है॥ इस भ्रम का ऽअ
न्त नहीं॥ सब चित्त के भ्रम कर हो भासता है॥ जब चित्त ऽआ
त्मपद विषे स्थित होता है॥ तब जगत भ्रम निवृत्त हो जा
ता है॥ ऽअरु काल की विषमता इस प्रकार होती है॥ जैसे जा
गत की दोघटी विषे ऽअनेक वर्षों का स्वप्ना ऽआवता है॥ तै
से तूं इह भ्रम भी जान॥ इह सब चित्त का भ्रम है॥ ऽअप
णे चित्त कों स्थित करके ऽअपणे ब्राह्मण के ऽआचार कों
कर॥ हे रामजी ऐसे कहि कर विष्णु भगवान जी ऽअंतर्ध्या
न होगए॥ पर ब्राह्मण का संसा दूर न भया॥ उह ऐसे विचा
र कर कहणे लागा॥ जो ऽऔर की प्रतिभा मुज कों कैसे भ
ई॥ इह तो ऽअस्चर्य हीं मैं भोगी है॥ जो ऽआप देखी नहीं होती
तिसका ऽअनुभव नहीं होता॥ बहुड विचार करके कहा॥
जो इस संसे के दूर करणे का उपाव मैं भगवान सों पूछों
हे रामजी ऐसे विचार करके बहुड तप करणे लागा॥ त
ब विष्णु भगवान जी ऽआए॥ ऽअरु कहा॥ हे ब्राह्मण ऽअब
तेरी क्या इच्छा है॥ तब ऐसे भगवान कहा॥ तब गाधि ब्राह्म
ण कहत भया॥ तुम कहते हो जो ऽऔर की प्रतिभा तुज कों फु
री है॥ ऽअरु मुज कों प्रत्यक्ष ऽअपणी पड़ी भासती है॥ ऽअरु
काल की विषमता भी भासती है॥ इह संसे मेरे चित्त तें निव
र्त करो॥ श्रीभगवानोवाच॥ हे ब्राह्मण इह सब जगत
मेरी माया कर रचा है॥ तिस विषे मैं तुज कों सत क्या कहों
ऽअरु ऽअसत क्या कहों॥ जो कछु तुज कों भासता है॥ सो सब
माया मात्र है॥ चित्त के भ्रम करके सत भासता है॥ ऽअरु है क
छु नहीं॥ ऽअरु थोड़े काल विषे जो बहुत काल भासता है॥ सो
स्वप्नवत है॥ जैसे जागत के एक महूर्त्त विषे स्वप्ने मों ऽअने

कवर्षों का अनुभव होता है॥ जैसे जैसे होता है॥ तैसे तैसे
होभासता है॥ रोगी कों थोडा काल भी बहुत हो भासता है
हे साधु जो नहीं भोग्या होता॥ तिस का भी अनुभव होता है
जैसे त्रिकालदर्शी कों भविष्यत वृत्तांत भी वर्तमान की
न्यांई भासता है॥ तैसे तुज कों अनुभव भया है॥ अरु एक
ऐसा होता है॥ जो प्रत्यक्ष अनुभव कीया होता है॥ अर वि
स्मरण होजाता है॥ एस भ्रम मायामात्र चित्त का भ्रमण है
जब लग चित्त आत्मपद विषे शांत नहीं भया॥ तब लग
अनेक भ्रम भासते हैं॥ जब चित्त स्थित होता है आत्मपद
विषे॥ तब सर्व भ्रम मिट जाते हैं॥ केवल एक आत्मतत्व
ही भासता है॥ हे साधु जेता कछु जगत है॥ सो अज्ञान क
रके भासता है॥ अरु आत्मज्ञान तें नष्ट होजाता है॥ तांतें
तूं चित्त कूं आत्मपद विषे जोड॥ तब सर्व भ्रम नष्ट होजा
वेगा॥ हे साधु अहं त्वं आदिक जो दृष्ट हैं॥ अज्ञानी कों स
त भासते हैं॥ अरु ज्ञानवान कों सर्व आत्मरूप भासता
है॥ सर्व संकल्प तें रहित आत्मपद तुज कों प्राप्त होवेगा
तब संसे सर्व तेरे मिट जावेंगे॥ पर प्रथम तप कर। जो तेरा
अंतःकरण शुध होवे॥ हे रामजी त्रिलोकी के नाथ विष्णु
जी कहि कर अंतर्ध्यान होगए॥ तब गाधब्राह्मण विष्णु
भगवान के वचन रिदे विषे धार कर तप करणे लागा
जो कछु मन की फुरणी वृत्ति है॥ तिस कों स्थित कर्त भया
दश वर्ष पर्यंत चित्त कों समाधि विषे राख्या॥ जब ऐसा
तप कीया॥ तब चिदानंद आत्मा जिस कों साक्षात्कार होत
भया॥ बहुड परम शांतिवान होकर स्थित भया॥ सर्व संस
यों तें रहित हूया॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे गाधोपा
ख्याने गाधबोधप्राप्ति नाम सर्गः॥ ४६ ॥ श्रीवसिष्ठो
वाच॥ हे रामजी इह गाध का उपाख्यान मैं तुज कों माया
की विषमता दिखावणे अर्थ कहा है॥ जो परमात्मा की
ऐसी माया है॥ विस्तृत रूप महा मोह के देणे हारी है॥ जो
आत्म तत्व तें भुला है॥ तिस कों नाना प्रकार के भ्रम दिखा

वती है ॥ तें देखा ॥ जो दो मुहूर्त कहां ॥ अरु एता काल चंडा
ल अरु राजा नाम वर्षों पर्यंत ~~[illegible]~~ देखणा कहां ॥ बड़
उ भ्रम का गत्यत्त देखणा कहां ॥ एसी नै माया की विषम
ता है ॥ जब लग बोध नहीं होता ॥ तब लग अनेक भ्रम को
दिखावती है ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन इह जो माया
मय संसार चक्र है ॥ तिस का बदनाती होएवेगा है ॥ अरु सर्व
प्रकार दुखों के देणेहारा है ॥ जिस प्रकार इस तें छूटीये ॥
सोई उपाव कहो ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इह जो मा
या मय संसार है ॥ तिस का नाभि स्थान चित्त है ॥ जब चित्त
वश होवे ॥ तब चित्त कर रचा संसार नष्ट होजावेगा ॥ हे रा
मजी इह वार्ता तूं भली प्रकार जानता ही हैं ॥ संसार रू
पी चक्र का नाभि चित्त है ॥ जब तूं चित्त को स्थित करेंगा ॥
तब जगत भ्रम निवृत्त होजावेगा ॥ हे रामजी जब चित्त
स्थित होता है ॥ तब परम पद प्राप्त होता है ॥ इन उपावों को

तांतें तप तीरथ दान व्रत ध्यान जेते कि उपाव हैं

तेयागकै संतों का संग अरु ब्रह्म विद्या का विचार इस उपाव क
र चित्त आत्म पद विषे स्थित होता है ॥ जो कछु संतों अरु
शास्त्रों निर्णय कीया है ॥ तिस विषे वारंवार स्थित होव
णा ॥ अरु संसार को मृगतृष्णा की न्याई जान कर तिस
को त्यागणा ॥ इन दोनों उपावों कर आत्म पद की प्राप्त होवे
गी ॥ क्रिया से न करो ॥ पर इन के जानणेहारा जो है ॥ अनुभ
व आकाश तिस की ओर वृत्ति लाग रहे ॥ तिसी को आप
णा रूप जाणीये ॥ अरु तिसी विषे स्थित होवीये ॥ तेरा आ
पणा सरूप चिदाकाश अनुभव रूप है ॥ जब तिस का वा
रंवार अभ्यास होवे ॥ तब चित्त स्थित होवे ॥ अरु परम पद
की प्राप्त होवे ॥ हे रामजी जब लग चित्त आत्म पद विषे स्थि
त नहीं होता ॥ तब लग जगत भ्रम निवृत्त नहीं होता ॥ चित्त
के संयोग तें इस का नाम जीव कह्या है ॥ जैसे घट के संयो
ग तें महाकाश को घटाकाश कहीता है ॥ तैसे चित्त के संयो
ग तें आत्मा को जीव कहीता है ॥ अरु इह जगत भी चित्त वि
षे स्थित है ॥ जब लग चित्त है ॥ तब लग जगत है ॥ हे रामजी

जैसे सूर्य विनां प्रकाश नहीं होता॥ तैसे चित्त विनां जगत भ्र
म नहीं होता॥ शांति इसी का नाम है॥ जो चित्त नष्ट होवे॥ अरु
शिवता भी उही है॥ जो चित्त नष्ट होवे॥ आत्मता भी उही है॥
जो चित्त नष्ट होवे॥ अरु सर्वज्ञता भी उही है॥ जो चित्त नष्ट हो
वे॥ जब लग चित्त नष्ट नहीं हूया॥ तब लग संसार है॥ हे राम
जी जो चित्त तें रहित चैतन्य है॥ सो गत्यक चैतन्य कहीता है
सो अमन शक्ति सर्व कलना तें रहित है॥ जब लग आत्मा
का बोध नहीं होता॥ तब लग नाना प्रकार के पदार्थ भासते
हैं॥ जब आत्मा का बोध हूया॥ तब एक आत्मसत्ता ही भास
ती है॥ हे रामजी ज्ञानमात्र संवित की ओर वृत्ति को लावणा॥
अरु जगत के पदार्थों की ओर वृत्ति को नहीं लगावणा॥
जो इनके जानणेवाला अनुभवरूप है॥ तिस की ओर वृ
त्ति को लगावणा है॥ हे रामजी जब लग चित्त आत्मपद तें
विमुख है॥ तब लग संसार भ्रम को देखता है॥ अरु जब
आत्मपद विषे स्थित भया॥ तब सब भ्रम मिट जाते हैं॥
जब तुज को आत्मपद का साक्षात्कार हूया॥ तब कालकूट
विष भी अमृत समान हो जावेगी॥ हे रामजी जब इह आप
णे स्वभाव विषे स्थित होता है॥ तब संसार का कारण मोह
मिट जाता है॥ तिस पुरुष को किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं
रहती॥ उसका चित्त सतपद को प्राप्त होता है॥ तातें तुम भी
चित्त को स्थित करो॥ हे रामजी आत्मा परमानंद स्वरूप है॥
जिस के पाए तें अमृत का रस भी तुछ हो भासता है॥ जिस पु
रुष की स्थित आत्मपद विषे हूई है॥ सो सब तें उतम पद
विषे विराजता है॥ जैसे सुमेर पर्वत के निकट सब तलो की
के पदार्थ सब तुछ भासते हैं॥ तैसे तिस पुरुष के निकट तु
छ हैं॥ अरु वह तेज को पावता है॥ जो उस के आगे सूर्य का प्र
काश भी तुछ है॥ ऐसा परम प्रकाश शांतिरूप सर्व कलनां
तें रहित अद्वैत रूप है॥ हे रामजी तिस आत्मतत्व विषे स्थित
होवो॥ जिस पुरुष ने ऐसे स्वरूप को पाया है॥ तिस सब कछु
पाया है॥ अरु जो तिस ज्ञान स्वरूप के जाणे तें रहित है॥ जद्यपि
पवन तपस्वी गुणवान है॥ तो भी गर्दभ की न्यांई है॥ गुणउ

सके जो बड़े ऐश्वर्य कर संपन्न हैं ॥ अरु आत्मपद तें विमुख
हैं ॥ तिनकों विष्टा के कीड़े तें भी नीच जान ॥ हे रामजी जीव
ण तिनका श्रेष्ट है ॥ जो आत्मपद के निमित्त यतन करते
हैं ॥ अरु जीवण तिनका वृथा है ॥ जो संसार के पदार्थों नि
मित्त यतन कर्ते हैं ॥ देखणे मात्र तो चैतन्य हैं ॥ परन्तु वृक्ष की
न्याई तिनि जीव हैं ॥ अरु जो तत्व के ज्ञाता हैं ॥ सो आपणे प्रकाश
कर सूर्य चंद्रमा की न्याई प्रकाशते हैं ॥ अरु जिनकों शरी
र विषे अभिमान है ॥ सो मृतक समान हैं ॥ हे रामजी चित्तरू रूपी तलाव
पी हस्ती है ॥ सरीर विषे आन स्थित भया है ॥ सो शुभ वासनां
रूपी जल कों मलिन कर डारता है ॥ अरु धैर्य संतोष वै
राग्य रूपी कमलों कों तोड़ डारता है ॥ भोगों की
तृष्णा रूपी सूंढ करके ॥ हे रामजी ज्ञानरूपी सिंह होकर इस
चित्तरूपी हस्ती कों नखों साथ छेदो ॥ आत्म विषयणी बु
धि सोई नख हैं ॥ तिन नखों साथ चित्तरूपी हस्ती कों छेदो
हे रामजी चित्तरूपी कौवा है ॥ जैसे कौवा अपवित्र गोड़े
बैठता है ॥ तैसे चित्त देहरूप अपवित्र गोड़े बैठता है ॥ स
र्बदा भोगों की ओर धावता है ॥ तब बहु हावड़े दुःख कों पाव
ता है ॥ हे रामजी इह चित्तरूपी पखेरू है ॥ अरु भोगों रूपी
मांस के निमित्त सर्ब ओर कों भ्रमता है ॥ तैसे चित्तरूपी इस अरु जहां [illegible] रूपी
पंखेरू देहरूपी वृक्ष पर बैठता है ॥ तब आत्मतत्व के सो अमंगल अज्ञान विषे जाता
न का अभाव कर्ता है ॥ हे रामजी जिसकों पिशाच आन ला है तहां तें निवृत्त कर
गता है ॥ सो बहुत खेदवान होता है ॥ पड़ा आक्रंद कर्ता है ॥ तैं अभाव हो जाता है
से इसकों चित्तरूपी पिशाच लागा है ॥ अरु तृष्णारूपी पि
शाचनी साथ पड़ा आक्रंद कर्ता है ॥ तिसकों निकासो ॥ हे राम
जी इह चित्तरूपी बींतर है ॥ सो महा चंचलरूप है ॥ सर्बदा
भटकता रहता है ॥ कबहूं किसी पदार्थ कबहूं किसी
पदार्थ की ओर धावता है ॥ जब चित्तरूपी मर्कट स्थिर
होवे ॥ तब देह वासनां नष्ट होवे ॥ हे रामजी बुधि बोधक
के चित्त कों जीतो ॥ इह जगत तृण तें भी तुच्छ है ॥ इसके पा
र कों प्राप्त हो ॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे राघवसेनयो
ग नाम सर्गः ॥ ४८ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इह जो

मनकी वृत्त है॥ सो इष्ट अनिष्टकों ग्रहण कर्त्ता है॥ अरु ख
ड्ग की धारावत तीक्ष्ण है॥ इस विषे प्रीत मत कर॥ हे राम
जी बोधरूपी वल्ली शुभ काल कर प्राप्त भई है॥ तिसकों वि
वेकरूपी जल कर सिंचो॥ तब परमपद की प्राप्त होवे॥ हे
रामजी इह पंचभौतिक सरीरादिक जगत जो तुझ कों
भासता है॥ सो तेरा स्वरूप है नहीं॥ तूं शुध चेतन स्वरूप
है॥ शुध बुध सों विचार करके अनात्म पंचभौतों के अ
भिमान कों त्याग॥ जैसे उदालिक रिषीश्वर अभिमान कों
त्यागता भया है॥ तैसे तुम भी त्यागो॥ श्रीरामोवाच॥
हे भगवन किस क्रम करके इन अभिमान त्याग कर
उदालक सुखी भया है॥ जैसे भया है॥ तैसे कहो॥ श्रीव
सिष्टोवाच॥ हे रामजी जैसे पूर्व समह हूंत विचार क
के उदालक परमपद कों प्राप्त भया है॥ हे रामजी तैसे इ
ह जगत रूपी जीर्ण घर है॥ ॥अथ कथा उदालिक
रिषि की॥ इस पृथ्वी की वायुकोण विषे एक देश है
तहां बहुत पर्वत अरु तमाल वृक्षादिक बहुत तरवर
हैं॥ सघन जिसकी छाया है॥ फलों साथ स्थान भरे हूए
हैं॥ अरु महा मणी के स्थान हैं॥ तहां एक गंधमादन पर्व
त है॥ जो सब पर्वतों के राजा समान है॥ तिस स्थान विषे
एक उदालिक नाम ब्राह्मण था॥ सो बुधिवान अरु मा
न करणें योग्य विद्यावान था॥ परं अल्प बुधि था॥ अर्थ
इह जो आत्मपद तिस न पाया था॥ तैसा जो ब्राह्मण है॥ सो
यौवन अवस्था के पूर्व ही शुभ इछा करके यम नेम के त
पकों शास्त्र अनुसार साधता भया॥ तब इसके चित्त वि
षे इह विचार उपजता भया॥ जिस पद के पाए तें बहुड़ उप
जणे योग्य न रहे॥ जिस विश्रांत के पाए तें बहुड़ शोक कों
न प्राप्त होवे॥ हे देव ऐसा पद मुझ कों प्राप्त करो॥ कब में
मन का मनन भाव त्याग कर पहाड के शृंग पर आन वि
श्राम करोंगा॥ अरु इह रूप वासना मेरी कब मिटेगी॥
शुध बोधरूपी बेडी संत संग सत शास्त्र रूपी मल्लाह क

कि कब तर जावोंगा ॥ हे देव सर्व आरंभों कों यत्नों अलु ले-
पक कब होवोंगा ॥ जैसे जल विषे कमल अलेप रहता है ॥ तैं-
से मुझ कों क्रिया स्पर्श न करेगी ॥ अर मेरा परमार्थ रूपी सू-
र्य कब उदे होवेगा ॥ अरु उह समा कब आवेगा ॥ जो मैं ज-
नों के अंध कों ज्ञान रूपी नेत्र प्राप्त होवेंगे ॥ जिस नेत्रों क-
र मैं परम पद कों प्राप्त होवोंगा ॥ अरु अज्ञान दशा मेरी अर ज्ञान दृष्टि क
कब जावेगी ॥ उह समा कब आवेगा ॥ जो जगत के कर्म वा- ब प्राप्त होवेगी ७
सना तें रहित बालिकों की न्यांई करेंगा ॥ अर जगत मुझ
कों सुषुप्त की न्यांई कब होवेगा ॥ उह समा कब होवेगा ॥ जो
मुझ कों पथर वत निर्विकल्प समाधि लागेगी ॥ हे देव उह
समा कब होवेगा ॥ जो इष्ट अनिष्ट की प्राप्त विषे सम चित्त
रहोंगा ॥ अरु विराट की न्यांई सर्वात्मा कब होवोंगा ॥ अरु
चैतन्य वपु आकर सरीर कों असरीर वत देखोंगा ॥ अर क-
ब मेरी चिन्मात्र वृत्त होवेगी ॥ अर कब मेरी अंतर बाह्य क-
लना शांति हो जावेगी ॥ हे रामजी ऐसे विचार कर उदालि- चैंयोन
क चित्त कों विषे जौ रमणे लागा ॥ अरु चित्त रूपी बांतर दृष्य की
और तिक सजावे ॥ स्थिर होवे नहीं ॥ जब बाह्य मुख विषयों
कों अंतर्मुख कीया ॥ तब चित्त कों अंतर जोति दृष्ट आई ॥
तब भी विषयों कों चितवने लागा ॥ निर्विकल्प होवे नहीं ॥
जब रोक कर राखे ॥ तब सुषुप्त विषे लीन हो जावे ॥ विक्षेप
अर लय जो है ॥ तिस विषे चित्त रहे ॥ तब उहां ते उठ कर औ-
र स्थान कों चल्या ॥ जैसे सूर्य सुमेर की प्रदक्षणा कों चल-
ता है ॥ तैसे चल्या गंधमादन पर्वत की ओर कंदरा विषे जा
स्थित भया ॥ अरु कहा हे मूर्ख मन जो एक एक इंद्री का स्वा-
द लेते हैं ॥ सो नाश कों प्राप्त होते हैं ॥ तूं तो पंच विषयों के
सेवने वाला है ॥ तूं कैसे नाश न होवेंगा ॥ तातें तूं इन की इ-
च्छा कों त्याग कर शांति पद कों प्राप्त हो ॥ जब तूं इह भोग न
त्यागेंगा ॥ तब मैं ही तुझ कों त्यागोंगा ॥ हे मूर्ख मन तूं देह वि-
षे अहं अहं पड़ा करता है ॥ सो तेरी अहं किस पदार्थ विषै है
अंगूठे तें लेकर सीस पर्यंत तिस विषे सत वस्तु कोंन है ॥ इ

१२९
128

ह सरीर तो रक्त मूत्र चर्म का पुतला है॥ ए तो अहं रूप नहीं॥ स्वास वा
यु रूप है॥ पुडा जो आकाश रूप है॥ इह पांचों तत्वों का सरी
हूया र बण्यो है॥ अहं रूप वस्तु तो कछु नहीं॥ हे मूर्ख मन तूं अहं
अहं क्या पडा कर्त्ता है॥ इह जो तूं कहता है मैं देखता हों॥
सुणता हों॥ सूंघता हों॥ स्पर्श कर्त्ता हों॥ मैं स्वाद लेता हों॥ इन
के इष्ट अनिष्ट विषे राग द्वेष कर पडा जलता है॥ सो बृथा
कष्ट पावता है॥ नेत्र रूप कों ग्रहण कर्त्ते हैं॥ सो नेत्र रूप तें उ
पजे हैं॥ तेज का अंश नेत्रों विषे स्थित है॥ सो अपणे विषय
कों ग्रहण कर्त्ते हैं॥ इन के साथ मिल कर तूं किउं तपायमा
न होता है॥ अरु शब्द आकाश तें उत्पन्न हूया है॥ आकाश की
अंश श्रवणों विषे स्थित है॥ सो अपणे गुण शब्द कों ग्रह
ण कर्त्ता है॥ इन के साथ मिल कर तूं किउं तपायमान होता
है॥ अरु स्पर्श [illegible] पवन तें उत्पन्न भई है॥ अरु पवन की अं
श त्वचा विषे स्थित है॥ उही स्पर्श कों ग्रहण कर्त्ती है॥ तिस के
साथ मिल कर तूं किउं राग द्वेष पडा कर्त्ता हैं॥ रसनां जल
तें उत्पन्न भई है॥ सो जल का अंश जिह्वा के अग्र विषे स्थि
त है॥ सोई रस कों ग्रहण कर्त्ती है॥ तिस के साथ मिल क
र तूं किउं तपायमान होता है॥ ग्राहण इंद्री गंध तें उत्पन्न
अंश भई है॥ सो पृथवी की गंध माण विषे स्थित है॥ उही गं
ध कों ग्रहण कर्त्ती है॥ तिस साथ मिल कर तूं किउं तपाय
मान होता है॥ हे मूर्ख मन इंद्रीयां तो अपणे अपणे विष
य कों ग्रहण कर्त्ती हैं॥ तूं किउं इन विषे अभिमान कर्त्ता
है॥ जो मैं देखता हों॥ सुणता हों॥ सूंघता हों॥ स्पर्श कर्त्ता हों॥
रस लेता हों॥ इह तो इंद्रीयां सभ अनात्म जड हैं॥ अर्थ इह
जो अपणे अपणे विषय कों ग्रहण कर्त्तीयां हैं॥ अरु तें
जैसा समर्थ हैं॥ जो और के धर्म अपणे विषे माने कर रा
ग द्वेष पडा कर्त्ता हैं॥ जब तूं राग द्वेष तें रहित होकर स्वे
च्छा करें॥ तब तुझ कों नीं दुःख कछु न होवेगा॥ जो वासना
सहित कर्म कर्त्ता है॥ सोई बंध मानी का कारण होता है॥

इस कारण तें मैं तेरा संग त्याग कर परम पद चिदाकाश
कौं प्राप्त होवौंगा॥ मैं निर्विकार निराकार अहं त्वं की क
लना तें रहित हौं॥ अब मैं तुझ कौं पकिड कर तेरा त्या
ग कीया॥ तें चोर है॥ अब तुझ कौं त्याग कर मैं निरहंका
र पद कौं प्राप्त हूया हौं॥ सो कैसा पद है॥ न तम है॥ न प्र
काश है॥ न एक है॥ न दो है॥ न बडा है॥ न छोटा है॥ अहं त्व
कलना तें रहित अचेत चिन्मात्र है॥ जरा मृत्यु राग द्वे
ष तें रहित पद है॥ अब तेरे वियोग तें मैं निर्विकार शु
ध स्वरूप कौं प्राप्त भया हौं॥ हे मन तेरा होणा ही दुख
का कारण था॥ अब तूं निर्वाण होजा॥ ब्रह्मरूप विषे मैं
स्थित होता हौं॥ शुध आत्म तत्व कौं पावौंगा॥ जैसे एक ता
गा अनेक मणकों कौं एकत्र करता है॥ तैसे तैं सब इंद्री
यों कौं एकत्र करकै अहं अहं पडा करता था॥ तां तें तूं सभ
नों इंद्रीयों कौं लेकर निर्वाण होजा॥ तब तेरा जय होवैगी
॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे उदालक विचारो नाम
सर्गः॥ ४८ ॥ उदालकोवाच॥ आत्म सूक्ष्म तें सूक्ष्म
है॥ अरु स्थूल तें स्थूल है॥ शुध स्वरूप निराकार निर्विका
र है॥ सो मैं हौं॥ अचेत चिन्मात्र हौं॥ मेरे विषे विकार कोऊ
नहीं॥ जेते कछु जन्म मरण विकार भासते हैं॥ सो आत्मा
विषे चित्त नें कल्पे हैं॥ आत्मा विषे कोऊ नहीं॥ जन्मा ति
स कौं कहीता है॥ जो पहिलें न होवै॥ बहुड उपजे॥ आत्मा
तो आगे ही आप कर सिध है॥ बहुड जन्मता मरता कैसे
कहीये॥ अरु मृत्यु किस कौं कहते है॥ जो पहिलें होवै॥ अरु
पाछे अभाव होजावै॥ आत्मा तो आदि मध्य अंत विषे स
दा सिध रूप है॥ सर्व विषे स्थित अरु सर्व विकारों तें रहि
त है॥ सो चित्त के संग तें विकारों सहित भासता है॥ हे चित्त ते
रे संग कर मैं एते विकारों कौं प्राप्त भया था॥ सो अब मैं आ
प कौं जाण्या है॥ सरीर तो रक्त मांस का पिंड है॥ अरु इंद्रीयें
मन आदिक जड हैं॥ अहं अहं करणे वाला कोन है॥ जब
अहं नष्ट होती है॥ तब भावाभाव ग्रहण त्याग कैसे होवै

अरु सरीर विषे ब्रह्म
अहं अहं पडा होता है
जो आत्मा न ही जानता जो
कौन था
अहं होता है तब भावा
भाव पदार्थ कौं ग्र
हण करता है जहां

१२७

129

इंद्रीयां अपणे अपणे विषय कों ग्रहण कर्त्तीयां हैं ॥ म
न आदिक भी अपणे स्वभाव विषे स्थित हैं ॥ आत्मा भी
अपणे चैतन्य स्वभाव विषे स्थित है ॥ इह अहंकार वा
ले का अकार कछु नहीं पाईता ॥ तां ते इह निश्चा कीया
जो आत्मा विषे तां सभ पदार्थ जड़ हैं ॥ मैं तो चैतन्य आत्मा नि
र्लेप हौं ॥ आहै तहां मेरा संयोग किस साथ होवै ॥ अहं अ
विचार कर भासता है ॥ विचार कीए तें नष्ट हो जाता है ॥
अरु आत्मा अनात्मा नहीं होता ॥ अनात्मा आत्मा नहीं
होता ॥ आत्मा विषे अहंकार भासता है ॥ अरु विचार की
ए तें नष्ट हो जाता है ॥ हे मन तेरे साथ मिलणे कर बड़ा दुः
ख होता है ॥ अब तुझ ते रहित आपको देख्या है ॥ अब तूं
सभ इंद्रीयों सहित निर्वाण हो जा ॥ आत्मा रूप अग्नि वि
षे स्थित हो ॥ जो सभ भ्रम तेरी नष्ट हो जावै ॥ हे मूर्ख मन दे
ह कों भी तेरे संग कर दुख होता है ॥ आपते इस विषे भी दु
ख कोऊ नहीं ॥ मन विषे देह का अभिमान न होवै तब भी
दुःख कोऊ नहीं ॥ इनके अभिमान कर लेणे कर होता है ॥ इ
नके वियोग कर दुख का अभाव हो जाता है ॥ हे मूर्ख मन जे
ता कछु दुःख तुझ कों होता है ॥ सो देह अभिमान कर हो
ता है ॥ इस का अभिमान का हेतौ कर्त्ता हैं ॥ परंतु ऐसा मू
र्ख है ॥ जो वारंवार देह की भावना कर्त्ता हैं ॥ तें इन का अ
भिमान करणा सुख जानता है ॥ पर तेरा नाश होता पड़ा है
जैसे मछी मांस की इच्छा कर्त्ती है ॥ तब नाश होती है ॥ तैसे तूं
देह साथ सुख पावणे की इच्छा कर्त्ता हैं ॥ तब नाश कों प्राप्त
होता हैं ॥ तां तें इस का अभिमान त्याग कर ॥ तब सुख कों
प्राप्त होवें ॥ अरु देह भी कछु वस्तु नहीं ॥ पर सभ मन ही का
विकार है ॥ जब मन फुर्त्ता है ॥ तब संसार उपजता है ॥ जब म
न आत्मा विषे स्थित होता है ॥ तब संसार नष्ट हो जाता है ॥
इन पदार्थों ते मैं आपको भिन्न जाण्या है ॥ जैसे तिलों तें
तेल निकास लीया ॥ तो बहुड़ नहीं मिलता ॥ तैसे विचार क
र मैं अपणा आपका ढ लीया है ॥ बहुड़ इन के साथ नहीं

अरु अहंकार जो है पदार्थों के अहण करने वाला सो भी जड़ है

जैसे सूर्य की किरण विषे जल भासता है तैसे

दुःख

मिलता मैं ॥ शुध चिदानंद आत्मा हों ॥ सर्वव्यापक सर्व
रूप होकर स्थित हो ॥ सो तिसी पद विषे स्थित होवो
॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे राम जी ऐसे विचार करके उदा
लिक वृत्त कों विषयु तें निवर्त कीया ॥ पद्मासन धार
अरु प्रणव जो है ॥ सार्धमात्रा का ध्यान कर्त्ते भया ॥ अका
र ब्रह्मा उकार विष्णु मकार शिव अर्धमात्रा तुर्या इनके
क्रम सहित करने लागा ॥ प्रथम रेचक प्राणायाम क
रने लागा ॥ अकार की धुन साथ तिस कर सब प्राणवा
यु अंतर तें निकासी ॥ तब अंतर सब शुध होत भया ॥
जैसे अगस्त मुनि समुद्र को पान कर्त्ते भया ॥ तैसे उदा
लिक रेचक करके अंतर शून्य कर्त्ते भया ॥ अकार करके
अैसी धुन उचारी ॥ जो ब्रह्मा विष्णु रुद्र जी पर्यंत चली
गई ॥ देहाभिमान कों त्याग करि पुर्यष्टका को सुखमना
के मार्ग विषे प्राप्त कीया ॥ जैसे पंखी आलए कों त्याग
कर आकाश मार्ग को उडता है ॥ तैसे उदालक पुर्य
ष्टका कों ब्रह्मरंध्र विषे प्राप्त कीया ॥ जब लग चित्त सु
खयु न रहा ॥ तब लग स्थिर रहा ॥ काहे तें जो हठ करि सो
उख होता है ॥ इसी कारण तें जब लग सुखय न रहा ॥ तब
लग स्थित रहा ॥ जब थकात ब पुर्यष्टका की वायु अधः
को आई ॥ तब उकार विष्णु रूप की धुनि अरु ध्यान सा
थ प्राणायाम कुंभक कीया ॥ सब प्राण वायु कों आधार
चक्र विषे रोक्या ॥ न तले कौं गमन करे ॥ न ऊर्ध्व कों गमन
करे ॥ तिस कर प्राण वायु स्थित संघट होगई ॥ तिसतें अ
ग्नि निकसी ॥ तिस अग्नि करके इस का पाप पुन्य रूप सरीर
जल गया ॥ तिस विषे जब लग सुखय न रहा ॥ तब लग स्थि
त रहा ॥ ब ऊंड मकार की धुन रुद्र जी का ध्यान करके पूर
क प्राणायाम कर्त्ते भया ॥ पूरक प्राणायाम कर सत्त स्थो
न वायु सों पूर्ण कीये ॥ अरु ऊर्ध्व कों चित्त कला प्राप्त भई
जिसका स्पर्श महाशीतल है ॥ अैसा जो चंद्रमा का मंडल
है ॥ तिसतें अमृत की वर्षा होती है ॥ तिस कर इह अवरों
के पवित्र करणहारा हूया ॥ जैसे पथ्यां आकाश को जा

ताहै॥ अरु जल होकर उह औरों कों शीतल करती है॥ तैं
से इसका शरीर औरों कों पवित्र करणेहारा हूया॥ जब इ
स के सरीर विषे प्राण वायु स्थित भई॥ पद्मासन बांध
कर इंद्रीयों कों रोकता भया॥ जैसे हस्ती संगलों साथ बं
धीता है॥ तैसे इंद्रीयों कों रोककर अर्ध मात्रा जो है तुर्या॥
तिसके दर्शन निमित्त यतन करणें लागा॥ नेत्रों कों अर्ध
मूंदित करते भया॥ अरु प्राण अपान कों मूल चक्र विषे
रोकता भया॥ तिसकर नव हीं द्वार रोके गए॥ तातें मूल
चक्र के रोकणें कर नव हीं द्वार रोके गए॥ तब चित्त कों
रोकते भया॥ जब चित्त रूपी चंचल मृग दौडे॥ तब वैरा
ग्य अभ्यास के बल कर बहुड़ ले आवे॥ जैसे बन्न करके
जल का वेग रोका जाता है॥ तैसे चित्त कों स्थित कीया॥
तब अंतःकरण की जो शांति की वृत्त है॥ तिसकों त्याग क
र स्थित भया॥ तब मन की वृत्ति जो है निद्रा रूप जडता॥
तिस विषे मन मूर्छा होगया॥ तब राजस तामस सात्विक
गुण का जो प्रवाह है॥ सो बहुड़ फुरणें लागा॥ तिसकों आ
त्म विवेक के बल कर छेदत भया॥ जैसे प्रकाश करके
तम विकल्प कों छिदीता है॥ तैसे तम [तामस] के विकल्प कों छे
दत भया॥ विवेक के बल कर चित्त कों चैतन्य कला वि
षे लगाया॥ तिसकों चित्त की वृत्ति साथ साक्षात कार की
या॥ महा प्रकाशवान शांति रूप तिस विषे एक क्षण चि
त स्थित रहा॥ बहुड़ बाह्य निकस गया॥ बहुड़ अभ्यास
के बल कर आत्म कला विषे लगाया॥ तब तिस परम
शांति आत्म पद विषे चित्त की वृत्ति स्थित भई॥ तहां महा
अमृत आनंद के समुद्र विषे स्थित भया॥ जिस पद विषे
सिध देवता हैं॥ तिस पद विषे उदालक स्थित हूया॥ जो
वर्ष पर्यंत स्थित भया है॥ अरु जो एक क्षण स्थित भया है
तिस पद विषे सो दोनों तुल्य हैं॥ जिसकों तिस पद का अ
नुभव भया है॥ सो भोगों की इच्छा नहीं करता॥ जैसे जिस
स्वर्ग का नंदन वन देख्या है॥ सो कण्टक के बन की इच्छा
नहीं राखता॥ तैसे जो उस पद विषे स्थित भया है॥ सो भो

गोंकी इछा नहीं राखता ॥ हे रामजी इस कर उद्दालिक
स्थित था ॥ तब सिध गंधर्व विद्याधर तिस के निकट आ
न प्राप्त भए ॥ सो बडे तेजवान चंद्रमा की न्यांई जिस के
मुख हैं ॥ सो आकर इनकों नमस्कार करते भए ॥ और के
हा ॥ हे भगवन तुम स्वर्ग को चलो ॥ और दिव्य भोगों को
भोगो ॥ तुम बडी तपस्या करी है ॥ और धर्म अर्थ पुन्यों
का सार काम है ॥ और काम का सार इस्त्रीयां हैं ॥ सो इ
स्त्रीयां तुमारे भोगणे निमित्त हैं ॥ ऐसीयां स्त्रीयां मानो
दिव्य मूर्ते हैं ॥ स्वर्ग भी इनों कर शोभता है ॥ तां ते तुम वि
वान पर आरूढ होकर स्वर्ग को चलो ॥ हे रामजी जब
इस प्रकार विद्याधरों कहा ॥ तब उद्दालक उनकों अ
तुच्छ जानकर निरादर न कीया ॥ यथा योग्य पूजन क
रके कहता भया ॥ हे साधो तुमकों नमस्कार है ॥ इनकी
सुंदरता विषे मेरी इछा नहीं ॥ हमकों परमपद की इछा
है ॥ तुम जावो जहां ते आए हो ॥ सो उद्दालिक जो परमपद
विषे स्थित था ॥ तां ते विषयों के सुख को तुच्छ जानता भया
जैसे अमृत खाणे वाला खल खाणे की इछा नहीं राख
ता ॥ तैसे उद्दालिक विषय सुख को न चाहता भया ॥ उद्दा
लिक परमपद विषे स्थित भया ॥ इह परमपद कों पाकर
आपणे स्वछाचार विषे विचरता फिरे ॥ हे रामजी चि
त घन समाधि कर के महा चेतन तत्व कों प्राप्त भया ॥ सम
जो परम परमपद है ॥ तिस कों पावता भया ॥ सहित काल के
आकाशवत निर्मल भया ॥ सत्तासमान विषे स्थित हो
कर विचरता भया ॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे उद्दा
लिक विश्रांत वर्णनं नाम सर्गः ॥ ४८ ॥ श्री रामो
वाच ॥ हे आत्म ज्ञान रूपी कमलों के सूर्य ॥ हे संसार
पी तपतों को जलावणे हारे अग्नि ॥ हे अज्ञान रूपी ताप
के नाशकर्त्ता चंद्रमा ॥ हे स्वामी सत्तासमान का रूप क्या
है ॥ श्री वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जब असंत भाव

कीभावना दूर होजावे चित्तका। तिसतें जो बोध रहे सो
सत्तासमान है। जब चित्त तें रहित आत्मसत्ता बोध होती
है। जिसविषे चित्त लीन होजाता है। तब सत्तासमान
उदे होती है। जो आस्तिकाभाव स्थित है सो सत्तासमा
न है। हे रामजी जब सर्व दृश्यप्रपंच शांति होजावे। अ
रु शुध सम बोध होवे। अंतर बाह्य का विवधान मिट
जावे। तब सत्त जगत एकरूपता से समाधि अरु उथा
न एक जैसा होजावे। ऐसी जो दृढता है सो समानसत्ता है
जो देह के होते भी विदेहरूप है। तिसकों तुर्यातीत पद
कहते हैं। समाधिविषे स्थित होवे तो भी केवलीरूप
है उथान होवे तो भी केवलीरूप है। अरु जो जीवन्मुक्ति
पुरुष हैं हम तें आदि लेकर जिनकों ज्ञान दृढ प्राप्त भ
ई है नारद ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक अरु और भी जो ज्ञानवा
न पुरुष हैं सो सत्तासमान विषे स्थित हैं। तिनको समा
धि उथान विषे तुल्यता है। जैसे आकाश को पवन का च
लणा ठहिरणा समान है। तैसे सत्तासमान विषे उदा
लक विचरता भया। जब विदेहमुक्ति होणे लागा। तब
पहाड की कंदरा विषे पत्रों का आसन बणाकर पद्मास
न बांधा। अरु बाह्य पदार्थों का त्याग कीया। प्राणवायु कों
मूलआधारचक्र कर नवही द्वार खेचरी मुद्रासें रोकते
भया। सब विकल्पों कों त्याग कर आत्मतत्व मात्र विषे चि
त्तकी वृत्ति कों जोडता भया। तब शुध चिन्मात्र विषे चित्त
की वृत्ति जा प्राप्त भई। रोम खडे हो आए। तिस विवधान
कों त्याग कीया। तब सत्तासमान स्वयंभू पद कों प्राप्त भया
जो परम विश्रांतरूप आनंदमय स्वरूप है। तिसकों प्राप्त
भया। चिरकाल करके क्षीण मन होगया। जिसतें चित्त उप
जा था। तिसी विषे जा लीन भया। उत्तम आनंद कों उदाल
क प्राप्त भया। तब केते काल पाछे तिसका सरीर गिड पडा
तब केते काल पाछे स्वर्ग तें देवतों की यां इस्त्रीयां अप्स

खे
आकाश

नीकुमारकी व्यक्ति लेकर आईयां ॥ महा अग्निकी न्याई
जिसका प्रकाश है ॥ अरु ककै केशू है ॥ ऐसीयां जो दे
वीयां हैं ॥ सन देवतों कर पूजस खीयां सहित सो आ
नकर उदालक के सरीर के गले विषे सुंदर रत्नों के फ ई
लों की माला पहिरीयां ॥ अरु तिसके आगे नृत्य क
रने लागीयां ॥ हे रामजी उदालिक के चित्त की वृत्ति कल
नों तें रहित भई ॥ तब तिस विषे विवेकरूपी वल्ली प्र
गट भई ॥ तिस वल्ली कों आत्मानंद फल पडा ॥ अरु सो
अनंत आनंद को प्राप्त भया ॥ ॥ इति उपशम प्रक
र्णे उदालिक निर्वाण वर्ननं नाम सर्गः ॥ ५० ॥ श्री
वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जिस प्रकार उदालिक रू
षीश्वर आत्मपद कों प्राप्त भया है ॥ तैसे ते भी क्रम
कर के अपने आपको विचार ॥ तब तें भी आत्मपद कों
प्राप्त होवैंगा ॥ हे कमलनयन रामजी कल्याण यही है
जो शास्त्रों अरु गुरों के वचनों कों समझीये ॥ तिसके
अभ्यास विषे बुधि कों लगावणें ॥ इस प्रकार जब दृ
ढता होवे ॥ तब परमपद की प्राप्त होवे ॥ अथवा बुधि एक
विषे तीक्ष्ण अभ्यास होवे ॥ कलनां कलंक तें रहित कैसे ऐसे भी दृकसमय्या
सा बोध होवे ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भूत भविष्यत ती तें रहित होवे तब
नों काल के ज्ञातवेत्ता एक ज्ञानवान पुरुष समाधि विषे अबनासी पद कों प्रा
स्थित होते हैं ॥ अरु जगत के व्यवहार विषे भी विचर पत होवे
ते हैं ॥ अरु एक समाधि विषे स्थित होते हैं ॥ तिन दोनों
विषे श्रेष्ठ कौन है ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी प्र
थम तो समाधि का लक्षण सुण ॥ जो समाधि किसकों
कहते हैं ॥ अरु विवहार किसकों कहते हैं ॥ जो अनात्म
देह अभिमान तें रहित है ॥ अरु अंतर जिसका संतोष क
र शीतल हूया है ॥ अरु करुणा मैत्री साथ संपन्न है ॥
तिसकों समाधि कहते हैं ॥ अरु जिसका मन आत्म समा
धि विषे शांति कों प्राप्त भया है ॥ तिसकों समाधि कही

ताहे ॥ हे रामजी जिसकों ऐसा निश्चा होता है ॥ जो मैं शुध चिदा
नंदस्वरूप हों ॥ दृश्य के संबंध तें रहित हों ॥ ऐसे निश्चे कर
जिसका अंतर शीतल होता है ॥ सो कोऊ बन अथवा गृह
विषे रहे ॥ उनकों दोनों तुल्य हैं ॥ अरु दोनों पुरुष भी तुल्य
हैं ॥ हे रामजी जो पुरुष इंद्रीयों को सुकचाइ समाधि लगा
बैठा है ॥ अरु मन कर जागत के पदार्थों की चितवना क
र्ता है ॥ तिसकी समाधि मिथ्या है ॥ अरु जो बिवहार बिचार
सहित अहंकार कामना तें रहित कर्ता है ॥ तिसकों बुधि
वान की समाधि के तुल्य जान ॥ कोऊ ज्ञानवान बिवहार क
र्ते हैं ॥ कोऊ ज्ञानवान समाधि कर्ते हैं ॥ सो दोनों तुल्य हैं ॥
अरु दोनों निश्चे कर परमपद कों पावते हैं ॥ इस विषे संसे
नहीं ॥ ज्ञानवान निर्वासा पुरुष है ॥ व्यवहार कर्ता दृष्ट आ
वता है ॥ तो भी अकर्ता है ॥ अरु अज्ञानी कर्ता कछु नहीं
पर वासना कर कर्ता भाव कों पावता है ॥ हे रामजी जिस
विषे कर्तृत्व का अभिमान नहीं ॥ सो निश्चे कर के अकर्ता है
तिसकों केवल समाधि विषे स्थित जान ॥ अरु जिस विषे
कर्तृत्व का अभिमान है ॥ अरु समाधि कर बैठा है ॥ सो वा
सना साथ बांधा हूया है ॥ हे रामजी जिस चित्त सों वासना
नष्ट होती है ॥ तिसकों अचल चित्त कहीता है ॥ अरु जिस
चित्त विषे वासना पड़ी उठती है ॥ तिसकों सदा होने वान
जान ॥ सो दुखी रहता है ॥ हे रामजी जिसके अंतर संसार
का राग द्वेष मिट गया है ॥ सो शांति कों प्राप्त भया है ॥ तिस
कों सदा समाधि है ॥ हे रामजी गृह विषे स्थित है ॥ अरु चि
त अहंकार तें रहित है ॥ तिसकों कुटंब अरु जनों के स
मूह वन के समान हैं ॥ गृह वन उसकों समान है ॥ हे राम
जी जो पुरुष सर्व भावाभाव पदार्थों तें आत्मा कों अतीत
जानता है ॥ सो (समाधीन) समाहित चित्त कहीता है ॥ जिसकों इस ज
गत स्वप्न की न्यांई भासता है ॥ सो समाहित चित्त कहीता
है ॥ उह पुरुष जनों के समूह विषे बैठा है ॥ तो भी मुक्ति रू

पहै॥ हेरामजी जिस पुरुषकों आत्मस्वरूप बिषे अहंप्रत्यय
भई है॥ तिसकों अंतरमुखी कहीता है॥ जिस पुरुषका चि
ने आत्मज्ञान करसु खीलया है॥ तिसकों सन जगत शी
तल भासता है॥ अरु जिसको देहाभिमान है॥ तिसका
अंतर तृष्णाकर पडा जलता है॥ तिसकों सन जगत
जलता भासता है॥ हेरामजी इह सन जगत इसके चित
विषे इस्थित है॥ जैसी भावना चित्त विषे होती है॥ तैसा
जगत हो भासता है॥ स्वर्ग पृथवी पाताल पर्वत नदीयां
जेता कछु जगत भासता है॥ सो सन इसके चित्त विषे है
उही बाल विस्तार रूप हो भासता है॥ जैसे बटके बीज
विषे बटका विस्तार होता है॥ तैसे जगत विस्तार सहित
चित्त कर भासता है॥ अरु बाह्य जो चंद्रमा सूर्यादिक भा
सते हैं॥ सो भी चित्त विषे भासते हैं॥ अरु चित्त कर भासते
हैं॥ हेरामजी जिसके अंतर शांतिरूप आत्मा स्थित है
तिसकों सन जगत शांतरूप आत्मा भासता है॥ हेराम
जी जिस पुरुषकों आत्मपद बिषे प्रतीत भई है॥ इंद्रीयां
साथ कर्म पडा कर्त्ता है॥ पर हर्ष शोक वासना ते रहित
है॥ सो समाहित चित्त कहीता है॥ जो पुरुष सर्वगति अ
त्माकों देखता है॥ सो बीतीकों चितवता नहीं॥ अरु न बि
ष्यतकी इछा नहीं कर्त्ता॥ अरु वर्त्तमान विषे रागद्वेषतें
रहित विचरता है॥ सो समाहित चित्त कहीता है॥ हेराम
जी जो पुरुष जगतकी पूर्व अपर अवस्थाकों देखकर
हसता है॥ अरु समपद विषे स्थित है॥ किसी विषे मम
त्व नहीं राखता॥ केवल अद्वैत तत्व उसको भासता है॥ सो
समाहित चित्त कहीता है॥ तिसकों रागद्वेषतें रहित अ
त्माहीं भासता है॥ हेरामजी अहंताही करके इह दीनता
कों पावता है॥ जब अहंता इसको फुरती है॥ तब अनेक
प्रकारके सुख दुख देखता है॥ जैसे जेवडी विषे सर्प भा
सता है॥ अरु भयकों पावता है॥ जेवडीके ज्ञानतें भय

दूरहोजाताहै ॥ तैसेअहंताकरकेनयदुखपावताहै ॥ अग्र
अहंताकेक्षीणहुएरागद्वेषतेंरहितशांतिरूपज
गतनाशताहै ॥ हेरामजीज्ञानवानसनकर्मकर्त्ताहै । प
रतिसविषेअभिमानकछुनहीकर्त्ता ॥ सत्तासमानवि
षेस्थितरहताहै ॥ जगतकोंद्वैतभावनहीदेखता ॥ स
र्वआत्माभावकरदेखताहै ॥ ॥ इतिउपशमप्रगव
र्तेध्यानविचारोनामसर्गः ॥ ५१ ॥ श्रीवसिष्ठोवा
च ॥ हेरामजीचित्तादिकजोजगतहै ॥ सोवास्तवतेंआ
त्मातेंभिन्नकछुनही ॥ आत्मरूपीमर्चहै ॥ तिसविषेज
गतरूपीतीक्ष्णताहै ॥ जैसेतीक्ष्णतामर्चीतेंभिन्ननहीं
तैसेचित्तादिकजगतआत्मातेंभिन्ननही ॥ जैसेइक्षुतें
मधुरताभिन्ननही ॥ तैसेआत्मातेंजगतभिन्ननही
जैसेपथरविषेकठोरताहै ॥ तैसेआत्माविषेजगत
है ॥ जैसेजलविषेद्रवताहै ॥ तैसेआत्माविषेजगतहै ॥
जैसेअग्निविषेउष्णताहै ॥ तैसेआत्माविषेजगतहै ॥ जै
सेबरफविषेशीतलताहै ॥ तैसेआत्माविषेचित्तादि
कजगतहै ॥ जैसेसूर्यविषेप्रकाशहै ॥ तैसेआत्माविषे
चित्तादिकजगतहै ॥ जैसेअमृतविषेस्वादुवेदनाहै ॥
तैसेआत्माविषेचित्तादिकजगतवेदना(फुरणा)है ॥ हेरामजी
जैसेसूर्यकेअंशविषेप्रकाशहोताहै ॥ तैसेआत्मावि
षेअहंतादिकप्रकाशहै ॥ जैसेजलतेंतरंगभिन्ननही
तैसेआत्मातेंअहंतादिकभिन्ननही ॥ जेताकछुजगत
भासताहै ॥ सोसर्वआत्मतत्वकाप्रकाशहै ॥ सोआत्माअ
नंतहै ॥ सर्वविषेपूर्णहै ॥ एकहीईश्वरनानाभावजग
तहोकरभासताहै ॥ इतरकछुनही ॥ जैसेआकाशअप
नेस्वभावविषेस्थितहै ॥ तैसेआत्मसत्ताअपनेआप
विषेस्थितहै ॥ सोनिर्वेदनहै ॥ परवेदननीतिसतेंभिन्न
नही ॥ जैसेजलतेंतरंगहोताहै ॥ तैसेआत्मातेंवेदनहो
भासताहै ॥ जैसेअग्निविषेउष्णताहोतीहै ॥ तैसेआत्मा

विषे अहंतादिक वेदना है॥ जैसे पवन विषे चलणा होता है॥ तैसे आत्मा विषे अहंतादिक नासते हैं॥ हे रामजी जीवों की जो जीवनरूप है॥ सो आत्मज्ञान है॥ अरु ज्ञानसत्ता का जीव चैतन्य है॥ चैतन्य का जीव चिन्मात्र है॥ तातें चिन्मात्र अरु जीवों विषे रंचक भी भेद नहीं॥ जैसे ज्ञानरूप जो है चैतन्यसत्ता तिस विषे अरु जीव विषे भेद कछु नहीं॥ तैसे चिन्मात्र अरु जगत विषे भेद कछु नहीं॥ एक अखंड सत्ता जिउं की तिउं स्थित है॥ हे रामजी एक सत्ता आदि मध्य अंत तें रहित प्रकाशरूप है सो चिन्मात्र तत्व अपणे आप विषे स्थित है॥ सो अनाश्पद है॥ जिस विषे वाणी नहीं प्रवेश करसकती॥ जो तेक छु वाक्य हैं॥ सो तिन के जनावणे निमित्त कहे हैं॥ वास्तव ते कछु नहीं॥ एक अद्वैत तत्व को अपणे हिरदे विषे धारकर स्थित होवो॥ ॥इति उपशम प्रकर्णे भेदनिरासो नाम सर्गः॥ ५२ ॥श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी एक आगें पुरातन इतिहास हूया है॥ तिस को रूषीश्वरों कहा है॥ सो सुणि॥ ॥अथ कथा सुरघ परघ की॥ ॥ किरात देश का राजा सुरघ होत भया है॥ तिस का वृतांत है॥ सो विस्मय को उपजावणेहारा है॥ हे रामजी उतर दिशा विषे पृथ्वी है॥ तहां सुंदर स्थान सुगंधित हैं॥ मानो कर्पूर कर लपेटी हूई है॥ मानो सदा शिव के हंस आन एकत्र हूए हैं॥ हिमालय का शृंग तिस ऊपर कैलाश पर्वत है॥ सो सर्व पर्वतों ते उत्तम है॥ अरु श्वेत महा उज्जल है॥ जैसे विष्णु जी का क्षीरसमुद्र श्वेत है॥ तैसे उज्जल चंद्रधारी रुद्र जी का स्थान है कैलाश॥ तहां गंगा जी का प्रवाह चलता है॥ नदीयां अरु नद चलते हैं॥ कमलों सहित सुंदर तलाव हैं॥ गौयां अरु मृग अरु वर्ग आने कं मानो ब्रह्मांड की नौतन रचना हूई है॥ तिस हिमालय के तले स्वर्णवत ककीयां जटीवाले किरात रहते हैं॥ जै

पंक्ती

सेवृक्षो के मुंढ विषे पपील का रहती हैं ॥ तैसे पर्वत के आ
श्रे किरात देश के जीव रहते हैं ॥ तिस किरात देश का रा
जा सुरघ होत भया है ॥ कैसा राजा जो लक्ष्मी तिसकी भु
जा विषे प्रत्यक्ष है ॥ मानो पराक्रम की मूर्त्ति है ॥ वेगवान
ऐसा जैसा पवन है ॥ अरु वैराग्यवान ऐसा जैसा जैने
दृष्टा ॥ अरु बुधिवान ऐसा जैसा बृहस्पति है ॥ अरु क
वि ऐसा जैसा शुक्र जी है ॥ राजा ऐसा जैसा राजे इंद्र देवतों
का राजा है ॥ अरु धनी ऐसा जैसा कुबेर है ॥ ऐसा राजा हो
कर राज कर्त्ते भया ॥ अरु भली प्रकार प्रजा की प्रतिपाल
करे ॥ जो भले मार्ग धर्म विषे प्रवर्त्तें तिनकी रक्षा करे ॥ अरु
जो पापादिक चोरी कर्म करें ॥ तिसको दंड देवे ॥ अरु आप
को जैसा कर्म आन प्राप्त होवे ॥ तिसको रागद्वेष ते रहित
होकर करे ॥ एक काल में आपले स्थान बैठा है ॥ जो चित्त
विषे विचार आन उपजत भया ॥ अरु संसे रूपी वायु कर
बुधि रूपी पंखडी तिसका डुलायमान होत भई ॥ बड़ा
कष्ट है ॥ जो मैं जीवों को कष्ट देता हों ॥ कष्ट न देवों धन देवों
जैसे तिलों को तेली पीडता है ॥ तैसे मैं पापीयों को कष्ट देता
हों ॥ अरु दुष्टों को कष्ट दीये बिना राज नहीं चलता ॥ अरु
जब दंड देता हों ॥ तब बडे दुःख पावते हैं ॥ मैं क्या करों दोनों
बातों कर दुख होता है ॥ हे रामजी ऐसे विचार विषे राजा
भ्रमता रहे ॥ जैसे वायु विरोले विषे तृण भ्रमता है ॥ तैसे रा
जा संसे विषे भ्रमता रहे ॥ तब एक दिन तिसके गृह विषे मां
डव्य मुनि आन प्राप्त भया ॥ जैसे इंद्र के गृह विषे नारद आ
वे ॥ तैसे मांडव्य मुनि आया ॥ राजा तिसका भली प्रकार पूज
न कर्त्ते भया ॥ अरु राजा संदेहवान होकर तिसको पूछते भे
या ॥ सुरघोवाच ॥ हे भगवन सर्व धर्मों के वेत्ता तुमारे
आवणे कर मैं बडे आनंद को प्राप्त भया हों ॥ जैसे वसंत
ऋतु कर पृथ्वी प्रफुलित होती है ॥ तैसे मैं प्रफुलित भया
हों ॥ मैं भी आपको पुन्यवानों विषे जानत भया हों ॥ काहे ते
जो तुम मेरे गृह विषे आए हो ॥ जैसे सूर्य के उदे होणे कर

कमल खिड आवते हैं ॥ तैसे तुमारे दर्शन कर प्रसन्न भया
हो ॥ हे भगवन मुजकों संसा है ॥ तिसके निवारणे को तुम यो
ग्य हो ॥ जैसे सूर्य के उदे हूये अंधकार नष्ट हो जाता है ॥ तै
से तुमों कर मेरा संसा निवृत होवेगा ॥ तातें तुम मेरे संसे
कों दूर करो ॥ सो संसा मुजकों इह है ॥ जो कोउ दुष्ट कर्म क
र्ता है ॥ तिसकों मैं दंड देता हों ॥ जब उनकों दंड कर दुखी
देखता हों ॥ तब मुजकों दया उपजती है ॥ दंड नहीं कर्ता
तब प्रजा निर्भय होकर पाप कर्ती है ॥ इह संसे मुजकों
खैंचता है ॥ तातें तुंही उपाव मुजकों कहो ॥ जिसकर मुज
कों समता प्राप्त होवे ॥ जैसे सूर्य की किरणों सम नगो ड विषे
सम होती है ॥ तैसे इष्ट अनिष्ट की प्राप्त विषे सम रहों
सो कृपा कर कहो ॥ श्रीमांडव्योवाच ॥ हे राजन इह तो
बहुत सुगम है ॥ अरु आपणे आधीन है ॥ आपही कर सि
ध होता है ॥ हे राजन सर्व उपाधि मन विषे उठती है ॥ सो मन तु
तुच्छ है ॥ विचार कीए ते नष्ट हो जाता है ॥ जैसे उष्णता कर के
बरफ जल हो जाती है ॥ तैसे विचार कीए ते मनन भाव
नष्ट हो जाता है ॥ तब ताप नष्ट हो जाता है ॥ जैसे सरत का
ल के आए कुहीड नष्ट हो जाता है ॥ तैसे विचार कीए ते म
न नष्ट हो जाता है ॥ सो विचार इही है ॥ जो मैं कौन हों ॥ अर
देह इंद्रीयां क्या हैं ॥ अरु जगत क्या है ॥ अरु जन्म मरण
किसकों कहते हैं ॥ इस विचार कर ते आपणे स्वभाव वि
षे स्थित होवेंगा ॥ तब तुजकों हर्ष शोक राग द्वेष चलाय
न सकेंगे ॥ जैसे वायु कर पर्वत चलायमान नहीं होते ॥
तैसे तूं अचल रहेंगा ॥ हे राजन जब आत्म बोध होवेगा
तब मन ने आपणे मनन भाव कों त्याग देवेगा ॥ तैसे तूं प
ते रहित आपणे स्वरूप कों प्राप्त होवेंगा ॥ जैसे तरंग के
मिट गए कर जल निर्मल भाव कों प्राप्त होता है ॥ तैसे तूं
अचल भाव कों प्राप्त होवेंगा ॥ मनन भाव अग्यान नष्ट
हो जावेगा ॥ अरु आत्म सत्ता ही का तान होवेगा ॥ जैसे
काल उही होता है ॥ परकृतं गोर हो जाती है ॥ तैसे मन

उहीहोवेगा। परस्वनाव[illegible]ऽगवरहोजावेगा। ऽरु
तेरेदहिलए। ऽप्रप्रजानीसाधुवृत्तहोजावेगी। तेरीऽग्या
ज्ञाऽनुसारवर्तेंगे। ऽरतुजकोंदेखकरप्रसन्नहोवें
गे। हेराजनजबतेंविवेकरूपीदीपकहाथलेकर।
चेतामलोंऽात्मतानकोपावेंगा। तबतेरीवडाईसुमे
रतेंभीऽधिकहोवेगी। ऽरुजिनकोंदेहविषेऽभि
मानहे। ऽरुचित्तविषेवासनाहे। सोतुछसंसारकीव
नविषेपडेहूवतेहें। जैसेचिकडकेकीटचिकडविषे
पडाहूवताहे। तेंसेजेताकछुऽनात्मऽभिमानहे। सो
दुःखकेदेणेहाराहे। हेराजनजोसतवस्तुहे सोरिदेवि
षधार। ऽरुजोऽसतहे तिसकात्यागकर। जबऽात्मा
त्मतत्त्वकाविचारहोताहे। तबऽवरसंसारनिवर्तहो
जाताहे। हेराजनसर्वविषेसर्वप्रकारऽरसर्वकाल
सर्वात्माकीभावनाकर। जोपरमात्मतत्वहे सोतुजको
प्रकाशेगा॥ ॥इतिउपशमप्रकर्णेसुरघवृत्तांत
मांडव्यउपदेशोनामसर्गः॥५३॥ श्रीवसिष्ठोवा
च॥ हेरामजीइसप्रकारमांडव्यमुनिकहिकरऽप
णेस्थानकोंगया। तबसुरघुराजाएकांतबेठकरवि
चारतेभया। जोमेंकौनहों। ऽरुइहजगतकाहे। नमेंसु
मेरहों। नमेरासुमेरहे। नमेंपृथवीहों। नमेरीपृथवीहे।
नमेंजगतहों। नमेराजगतहे। नमेंकिरातमंडलहों। न
मेराकिरातमंडलहे। काहेतेजोइहऽपणेस्वभावविषे
स्थितहें। जोमेंनहोवों तोभीइहहें। नमेंइनकाहों। नइ
हमेरेहें। नपुत्रादिककुटुंबमेराहे। नमेंइनकाहों। न
मेंराजाहों। नमेराराजहे। ऽरुसरीरइंद्रीयांभीमेंनहीं
इहजडहें। मेंचेतन्यहों। इनसाथमेरासंबंधकछुनहीं
मनबुधिचित्तइहसभऽनात्मरूपहें। मेंचेतन्यरूपहूं
ऽपतेंरहितहों। काहेतेंचेतजोदृश्यहे सोभीमेंनहीं। मेंऽ
चेतचिन्मात्रऽपणेऽापविषेस्थितहों। वदऽापकैसाहे

जो मैं ऽअपणे ऽआप पाया है ॥ मैं तो निर्विकल्प ऽआत्मा हों ॥ सर्व
विषे ब्रह्मात्मा मैं व्याप रहा हों ॥ इन्द्रीयां ते लेकर जेते कछु भू
त जात हैं ॥ सभनका ऽआत्मा मैं हों ॥ हे भगवान ऽआत्मा सभने के
ऽअंतर व्याप्या हूया है ॥ ब्रह्मा ते ऽआदि तृण पर्यंत सभनेका
ऽआत्मा एही है ॥ सर्व ऽअंगका सोका सभका सत्ता हारा एही है ॥ स
रीर रूपी रथ्य इसी कर चलता है ॥ ऽअब मैं निश्चे कर्के बोध
वान हूया हों ॥ दृष्टा की जो ऽअलख दृष्ट है ॥ सो मैं देखी है ॥ जो
कछु पावणे योग्य था ॥ सो पाया है ॥ ऽअच्युत जो चिन्मात्र तत्व
है ॥ तिसको मैं प्राप्त हूया हों ॥ जेती कछु दृश्य है ॥ तिसको स्वरू
पते मैं देख्या है ॥ ऽअहं मम मेरा दुख नष्ट भया है ॥ मैं पूर्ण चिदा
नंद ऽआत्मा हों ॥ नित्य शुद्ध ऽअनंतात्मा ऽअपणे ऽआप विषे स्थि
त हों ॥ न कोऊ दुख है ॥ न सुख है ॥ सर्व ब्रह्म है ॥ दूसरी वस्तु क
छु है नहीं ॥ राग किसका करों ॥ ऽअरु द्वेष किसका करों ॥ मैं मि
थ्या मटता कों प्राप्त होकर दुखी होता था ॥ ऽअब कल्याण हू
या है ॥ मैं ऽअपणे ऽआप स्वभाव विषे स्थित भया हों ॥ ऽऐसे ऽआ
त्मा के साक्षात्कार बिनां दुखी था ॥ इसके देखे ते किसका शो
क करों ॥ ऽअरु किसका मोह करों ॥ इह सभ न जानत ऽआत्मा के
प्रकाश का प्रकाश नासता है ॥ सो ऽआत्म रूप ही है ॥ तां ते मेरा
नमस्कार है ॥ नमस्कार है ॥ सुषुप्त की न्याई ज्योति रूप हों ॥ ऽअ
चेत चिन्मात्र ऽअपणे ऽआप विषे स्थित हों ॥ ॥ इति उपशम
प्रकरणे सुरघु विश्रांत वर्ननं नाम सर्गः ॥ ५४ ॥ श्रीव
सिष्ठोवाच ॥ हे रामजी किरात देश विषे जो स्वर्णवत जटा
वाले हैं ॥ तिनका राजा परमानंद कों प्राप्त भया ॥ इस प्रकार वि
चार ऽअभ्यास कर्के ब्रह्मरूप हूया ॥ जैसे गाधका पुत्र विश्वामि
त्र तप कर्के उसी सरीर साथ्य छत्री ते ब्राह्मण हूया है ॥ तैसे रा
जा सुरघु ऽअभ्यास विचार कर्के ब्रह्मरूप हूया है ॥ ऽअनेक रा
ज कार्यों कों कर्ता ऽअकर्ता हूया है ॥ जैसे सूर्य इष्ट ऽअनिष्ट वि
षे सम है ॥ तैसे राग द्वेष ते रहित कार्य कर्ता भया ॥ जैसे जल
विषे कमल ऽअलेप रहता है ॥ तैसे राजकार्य विषे निर्लेप रहे
जीवन्मुक्ति होकर विचरता है ॥ बडुते सै ए वर्षों कों बीतावता
भया ॥ जैसे समुद्र विषे तरंग लय होता है ॥ तैसे सुरघु जीव स्व
भाव कों त्याग कर परब्रह्म होत भया ॥ ॥ इति उपशमप्र

कर्णे सुरघुवृत्तांतसमाप्तं नाम सर्गः ॥५५॥ श्रीवसि
ष्ठोवाच ॥ हे रामजी तुम भी इसी दृष्टकों आश्रे करो । तब
सर्व भय मिट जावें । जैसे बालिक कों तम विषे भय होता है
अरु दीपक कों हाथ लीया तब भय मिट जाता है । तैसे सं
सार घोर विषे ज्ञानरूपी दीपक हाथ विषे लीयें सभ भय
निवृत्त हो जाते हैं । हे रामजी इह पावन दृष्ट मैं तुझ कों कही
है । इस कों चित्त विषे विचार के एक समाधि विषे स्थित हो
पृथवी का भूषण हो कर लोकों विषे विचिर ॥ श्रीरामोवा
च ॥ हे मुनीश्वर एक समाधि क्या कहीये । अरु एक समाधि कैं
से होती है ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जब सुरघु प्रबुध
हूया था । तब तिस का प्रणाद रिषि साथ संवाद हूया है । सो
महा अद्भुत संवाद है । जो उनों परस्पर मिल कर चर्चा करी है
तिस कों सुण । हे रामजी पारसी देस का राजा महावीर था ॥
अरु परघ तिस का नाम था ॥ सो सुरघ का मित्र था । जैसे नं
दनबन विषे कामदेव अरु बसंत रुत का मिलाप होता है
तैसे सुरघ अरु परघ का मित्रता वथा । एक काल में परघ
के देश विषे प्रलै बिनां अग्नि की न्याई होत भई ॥ तिस कर सभन
जीव दुख पावणे लागे ॥ जैसे प्रलै काल विषे सभन जीव दुख पा
वते हैं । तैसे जीव दुख पावणे लागे ॥ महा दुर्भिक्ष पडा । लोक
दुख पावणे लागे । तब राजा परघ प्रजा कों दुखी देख कर प्र
जा के दुख निवर्त करणे कों समर्थ न भया । तब सर्व प्रजा अ
रु कुटंब कों त्याग कर के एक पहाड की कंदरा विषे जा तप
करणे लागा । जैसे जैनेंद्र तप कीया था । तैसे कंदरा विषे सके
पत्र खावे । तिस कर तिस का नाम प्रणाद होत भया । अरु
उस दीप विषे तिस का नाम प्रणाद सिध भया । अरु तपण
ही जो चित्त की वृत्ति कों आत्मपद विषे जोडता भया । सहस्रव
र्ष पर्यंत तप कीया । जब अभ्यास कर चित्त स्थित भया । केवल
ज्ञान स्वरूप आत्मतत्व रिदे की निर्मलता कर प्रकाशता भया
तब संताप मिट गए । रागद्वेष तें रहित जीवन्मुक्त होकर
विचरता भया । ऐसे फिर्ते फिर्ते किरात देश का राजा जो सुर
घ था । तिस के देश कों जाप्राप्त भया । तब सुरघु पूर्व मित्र कों

देखकर उठ खड़ा हूया॥ परस्पर कंठ लगा मिल्ये दोनों
तोत हूये पथे॥ एक आसन पर बैठ गए॥ अरु आपस मों
कुशल कल्याण पूछने लागे॥ प्रथम परघ बोलत भ
या॥ हे मित्र मैं तेरे दर्सन कर परमानंद को प्राप्त भया हों॥
हे साधो अब मैं ज्ञानवान भया हों॥ अरु तेनी मांडव्य ऋषि
के प्रसाद कर के ज्ञानवान हूया है॥ हे राजन मेरा वांछि अमीष्ट
त प्राप्त है॥ अब तें दुखों ते रहित जीवन्मुक्ति आत्मपद
विषे विश्रांतवान हूया हैं॥ अब परम कल्याणवान हूया
हैं॥ जैसे सरत काल को आकाश निर्मल होता है॥ तैसे
तें निर्मल हूया हैं॥ अरु सम्न कार्यों को कर्ती सम भाव
विषे रहता हैं॥ आधि व्याध दुख तेरे नष्ट भए हैं॥ अरु द
शो दिशा विषे तेरा यश प्रसिर रहा है॥ हे राजन तुमारी
अरु हमारी मित्राई थी॥ सो मैं पाकर तुम कहां रहे॥ हम
कहां रहे॥ बहुर अब आन कठे आनंद हूए हैं॥ बडा ही आ
श्चर्य है॥ ईश्वर की नीत जाणी नहीं जाती॥ सुरघोवाच
॥ हे भगवन देव जो परमात्मा है॥ तिसकी नीत को जाणन
होसकीता॥ सो महा गंभीर विस्मय को देणे हारी है॥ अ
रु दुर्विज्ञान है॥ आगे तुमारा हमारा वियोग होगया था
अब वियोग का संयोग आन हूया है॥ अरु तुम जो ह
मारा कुशल पूछा है॥ सो तुमारा आवणा ही हमारा कु
शल है॥ इसकर के परम पावन हूया हों॥ हे भगवन संतों
का जो आवणा है॥ सो मथुर अम्रत की न्याई है॥ संतों का
मिलणा परम पद का तलाव है॥ सो तुमारे मिलणे कर हम
परम शुधता को प्राप्त भए हैं॥ ॥ इति उपशम प्रकर
णे सुरघु परघ समागम वर्नन नाम सर्गः॥ ५६॥
श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे राम जी तब पर्व वृत्तांत कर रहे
त बहुर सुपरघ बोलत भया॥ परघोवाच॥ हे राज
न जो जो समाहित चित्त इस जगत जाल विषे कर्म करते हैं जो
सो सुखरूप होते हैं॥ अब संकल्प ते रहित परम विश्रांत है
अरु परम उपशम समाधि है॥ तिस विषे स्थित हूया है कि

र
इकचित

उ ॥सुरघोवाच॥ हे भगवन तुम हीं कहो। जो सर्व संकल्प
तें रहित परम उपशम समाधि किस कों कहते हैं। जो ज्ञान
वान महात्मा पुरुष हैं। सो तूष्णीं रहैं। अथवा व्यवहार करें
उह असमाहित चित्त कदाचित नहीं होते॥ हे साध नित अ
बुध जिनों का चित्त है। औ जगत के कार्य भी करते हैं। तो भी
आत्म तत्व विषे स्थित हैं। सो सर्वदा समाधि विषे हैं॥ हे भ
गवन परमार्थ तत्व जो बोध है॥ सो आसा रूपी तृणों को ज
लावने हारी अग्नि है॥ ऐसी निरास रूप जो समाधि है। सो
ई समाधि है॥ हे साधु तिस का चित्त समाहित भया है॥ सो
नित तृप्त सदा शांति रूप है॥ अरु सर्व पदार्थों विषे जिं उ
कति उसम बुधि है॥ जैसे का तैसा आत्म ज्ञान कर्‍या है॥ ति
सी विषे स्थित है। सो समाधि कहीता है। तूष्णी रहण के
नाम समाधि नहीं। जिसके हिरदे विषे निरहंकारता है। सो
पुरुष समाधिवान कहीता है॥ ऐसी जो समाधि है॥ सो सु
मेर तें भी अधिक स्थित है। हे साधु जो पुरुष अचल चि
त्त है॥ ग्रहण त्याग बुधि जिसकी निवृत्त भई है। अरु पूर्ण
आत्म तत्व ही पडा भासता है। सो व्यवहार कर्त्ता हष्ट आ
वता है॥ तो भी तिस कों समाधि है॥ जिसका चित्त एक क्षण
भी आत्म तत्व विषे स्थित होता है॥ तिस को अनंत क समा
धि हो जाती है॥ क्षण क्षण वढती जाती है॥ जैसे सूर्य के उ
दे हूए स नहीं कोइ काश भासता है॥ तैसे ज्ञानवान कों आ
त्म तत्व भासता है॥ जैसे बालक कों कालन नाव विस्मरण न
हीं होता॥ तैसे ज्ञानवान कों अपणां चिन्मात्र रूप विस्मर
ण नहीं होता॥ जैसे सी स्वैमंदर विषे सर्व ओर तें अपणा
मुख भासता है॥ तैसे ज्ञानवान कों सर्व ओर तें अपणा आ
प ही भासता है॥ जैसे स्यामता विनां काजर नहीं पाईता॥ तैं
से आत्मा विनां जगत नहीं पाईता॥ हे साधु जिसकों आत्म
तें इतर पदार्थ कोऊ नहीं भासता॥ तिसकों उथान कैसे हो
वे॥ सर्वदा आपकों बोधरूप आत्मा देखता है॥ जो मैं चैतन्य रू
प हों॥ सर्वदा सर्वात्मा समाहित चित्त हों॥ उथान कैसे होवे

हे साधो आत्मतत्व सर्वदा ज्ञानरूप है॥ सो सर्वदा स-
र्व प्रकार आत्मा स्थित है॥ बहुड़ समाधि अरु उत्थान कैसे
होवे॥ उसको समाधि उत्थान विषे भेद कछु नहीं॥ उह स-
दा अद्वैतरूप है॥ ॥इति उपशम प्रकरणे समाधि
निश्चेवर्णनं नाम सर्गः॥५८ ॥परघोवाच॥ हे राज-
न तिस्रेक कै अब तूं जाग्या हैं॥ अरु परमपद को प्राप्त भ-
या हैं॥ अरु पूर्णमासी के चंद्रमावत शीतल अंतःकर्ण
भया हैं॥ अरु मुखकमल परमशोभा करि शोभता है॥
अरु बुद्धि लक्ष्मी करि शोभित भया हैं॥ निर्मल विस्तृत
गंभीर तेरा रिदाकमल भासता है॥ अहंकाररूपी मे-
घ तेरा नष्ट होगया है॥ सरत काल के आकाशवत स्व-
च्छ निर्मल भया हैं॥ हे राजन अब तुजको सर्वत्र सर्वथा
तुष्टता है॥ अरु रागद्वेष तें रहित विराजता हैं॥ सार अ-
सार को तुज भलीप्रकार जान्या है॥ अरु आपणे आप
करि तृप्त भया हैं॥ कछु इछा तुजको नहीं रही॥ सुर-
घोवाच॥ हे मुनीश्वर इस जगत विषे ग्रहण करणेयो-
ग्य कछु वस्तु नहीं॥ जेते कछु दृश्य पदार्थ हैं॥ सो सब अ-
भासरूप हैं॥ ग्रहण त्याग किसका करीये॥ काहे तें जो है
नहीं॥ जैसे सूर्य की किरणों विषे जल भासता है॥ सो तिस
का ग्रहण त्याग क्या कहीये॥ तैसे इह जगत है नहीं॥ हे रा-
जन जगत विषे एक तुछ पदार्थ है॥ एक अतुछ पदार्थ
हैं॥ जो थोड़े काल विषे नष्ट होजाते हैं॥ सो तुछ हैं॥ जो चि-
र काल पर्यंत रहते हैं॥ सो अतुछ हैं॥ सो दोनों कालतें उप-
जे हैं॥ अरु जब मैं अकालरूप आत्मा को देख्या है॥ त-
ब दोनों तुल्य होगए हैं॥ बहुड़ हौं इछा किसकी करौं॥ हे
राजन इह इंद्रीयों के जो विषय हैं॥ सो दृश्यरूप हैं॥ इन-
तें आदि लेकर जो पदार्थ हैं॥ सो आपातरमणीय हैं॥ अ-
र्थ इह जो विचार विना सुंदर भासते हैं॥ इनकी जो इछा
कर्त्ते हैं॥ सो आपणे नाश के निमित्त कर्त्ते हैं॥ जैसे पतंग दी-
पक की इछा कर्त्ता है॥ सो आपणे नाश के निमित्त कर्त्ता है

तैसे जो विषयों की इच्छा कर्त्ता है ॥ सो अपणे नाश के नि
मित्त कर्त्ता है ॥ अरु जो सम्यक् दर्शी ज्ञानवान है ॥ सो कि
सी जगत के पदार्थ की इच्छा नहीं कर्त्ते ॥ हे साधु रामजी ह
र्ष अरु ग्रहण त्याग जेते कछु विकार हैं ॥ तिन सभनों ते रहि
त में शुद्ध आत्म तत्व विषे स्थित हों ॥ बहुत कहणे कर
क्या है ॥ जिस पुरुष के मन ते वासना नष्ट भई है ॥ सो उपशा
म कल्याण मूर्त्ति परम पद को प्राप्त होता है ॥ संसार समु
द्र को तर जाता है ॥ ॥ इति उपशम प्रकरणे सुर
घु परघु निर्वाण वर्णनं नाम सर्गः ॥ ५८ ॥ श्रीवसि
ष्ठोवाच ॥ हे रामजी सुरघु परघ जगत को आतम रूप वि
चारते भए ॥ विचार कर्के परस्पर गुरु ज्ञान के पूजते भ
ए ॥ परघ राजा चला जाता रहा ॥ हे रामजी तुझ को इन का पर
स्पर संवाद श्रवण कराया है ॥ सो परम बोध का कारण है
इस विचार के क्रम कर्के बोध को प्राप्त होता है ॥ तिस ते
बुद्धि कर्के जब विचार करेंगा ॥ तब अहंकार रूपी बद
लों का अभाव हो जावेगा ॥ अरु शुद्ध हृदय रूपी आकाश
विषे आत्म रूपी सूर्य प्रकाशेगा ॥ ताते तुम परमात्म प्र
काश के ज्ञान निमित्त अहंकार रूपी बदलों के त्यागणे
का यतन करो ॥ सो आत्म सत्ता सत चितानंद रूप परम प
द है ॥ तिस विषे स्थित होवेंगा ॥ हे रामजी जो पुरुष नित अंत
र्मुख अध्यात्ममय होता है ॥ अरु नित चिदानंद विषे चि
त्त को जोडता है ॥ सो सदा सुखी है ॥ तिस को शोक कदाचि
त नहीं होता ॥ जो पुरुष आत्मपद विषे स्थित हूया है ॥
अरु बहि व्यवहार कर्त्ता दृष्ट आवता है ॥ तो भी अकर्त्ता है
जैसे कमल जल विषे दृष्ट आवता है ॥ तो भी अलेप है ॥ तै
से ज्ञानवान व्यवहार कर्त्ता दृष्ट आवता है ॥ तो भी अलेप
है ॥ हे रामजी जिस का अंतःकरण विचार कर शांतिवान
हूया है ॥ तिस को संसार के पदार्थ दुख नहीं देते ॥ जैसे सिं
ह को मृग के बच्चे दुख नहीं दे सकते ॥ तैसे ज्ञानवान को ज
गत के पदार्थ दुख नहीं देते ॥ जिस पुरुष को आत्मानंद

प्राप्त हूआ है ॥ तिसकों विषयों की इच्छा नहीं रहती ॥ हे रा
मजी जिस पुरुष ऽअविद्यारूप जगत का त्याग कीया है
तिसके चित्त कों जगत के पदार्थ वस नहीं कर सकते
ऽअरु जिस पुरुष कों ऽआत्मबोध हूआ है ॥ ऽअरु संसार
का कारण मोह निवर्त्त भया है ॥ सो जगत के कार्य कर्त्ता दि
ष्ट ऽआवता है ॥ तो भी उसकों स्पर्श नहीं कर्त्ते ॥ जैसे ऽआका
स विषे ऽअंधकार द्रिष्ट ऽआवता है ॥ परु ऽआकास कों स्प
र्श नहीं कर्त्ता ॥ तैसे ज्ञानवान कों पदार्थ स्पर्श नहीं कर्त्ते ॥
हे रामजी जिसके रिदे विषे ऽआत्मज्ञानरूपी चंद्रमा प्रका
सता है ॥ तिसका जन्म ऽअरु कुल सफल होता है ॥ जैसे पू
र्णमासी का चंद्रमा ऽअपणे ऽअंमृत कों पायकर ऽअपणे वि
षे सीतल प्रकाशता है ॥ तैसे जिस पुरुष ऽआत्मचिंतवनों
का ऽअभ्यास कीया है ॥ सो शांति पद कों पावता है ॥ हे रामजी
बोध भी उही श्रेष्ट है ॥ ऽअरु ज्ञान भी उही श्रेष्ट है ॥ ऽअरु मि
त्र भी उही श्रेष्ट है ॥ जिसकर ऽआत्मज्ञान प्राप्त होवे ॥ हे राम
जी इह ऽअपणा ऽआप मित्र है ॥ ऽअरु ऽअपणा ऽआप ही शत्रु है
तां ते ऽअपणे ऽआपकों चिकड विषे न डारे ॥ जो देह विषे ऽअ
हंभाव करके विषयों की तृष्णा कर्त्ता है ॥ सो ऽअपणा ऽआपना
श कर्त्ता है ॥ ऽअरु जो देह के ऽअहंभाव कों त्याग कर ऽआत्म ऽअ
भ्यास कर्त्ता है ॥ तब ऽअपणा ऽआप उधार कर्त्ता है ॥ सो ऽअपणा
ऽआप मित्र है ॥ जो ऽआप कों संसार समुद्र विषे डारता है ॥ सो
ऽअपणा ऽआप शत्रु है ॥ हे रामजी प्रथम इह विचार करके दे
खे ॥ जो जगत क्या है ॥ ऽअरु कैसे उत्पत्त भया है ॥ ऽअरु कैसे निवृ
त्त होवेगा ॥ ऽअरु मैं कौन हों ॥ ऽअरु सत क्या है ॥ ऽअसत क्या है ॥ ऐ
से विचार करके जो सत है ॥ तिसका ऽअंगीकार कर ॥ ऽअरु जो ऽअ
सत है ॥ तिसका त्याग कर ॥ हे रामजी न धन इसका कल्याण
कर्त्ता है ॥ न बांधव इसका कल्याण कर्त्ता है ॥ ऽआपणा कल्या
ण इस ऽआप ही कर्णा है ॥ ऽअपणे मन साथ मित्राई करे जो दृ
ढ वैराग ऽअभ्यास यत्न करे ॥ तब संसार कष्टतें छूटे ॥ जब
वैराग ऽअभ्यास कर तत्व का ऽअवलोकन करे ॥ तब संसार

समुद्र तें तर जावे ॥ हे रामजी अवर उपाव कोऊ न करे ॥ तो ए
कउपाव करे ॥ जो देह कों काष्ट लोष्ट के समान जान इसका
अभिमान त्याग करे ॥ जब अहंकार अभिमान त्याग कीया
तब आपे ही आत्म सूर्य प्रकाश आवेगा ॥ सो परमानंद स्वरू
प है ॥ अरु सुषुप्त तें भी अफुर है ॥ सो बाणी कर कहा नहीं जा
ता ॥ सो अनुभव करके आप ही मों जाणीता है ॥ हे रामजी सन
जागतें ही रूप है ॥ जब चित्त का दृढ अभ्यास उसी विषे होवे
तब स्थावर जंगम विषे ऊही देव पडा भासे ॥ अवर वासनां
सन निवर्त हो जावे ॥ केवल परमानंद तत्व ही पडा भासे ॥ ८
॥ इति उपशम प्रकरणे कारणोपदेशो नाम सर्गः
॥ ५८ ॥ श्री वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी मन करके मन को छे
दो ॥ अरु अहं मम का त्याग करो ॥ जब लग मन नहीं नष्ट हो
ता ॥ तब लग जगत के दुख नहीं मिटते ॥ हे रामजी जैसे प्रले
काल विषे अनंत दुख होते हैं ॥ तैसे मन की वासनां कर अ
नेक दुख होते हैं ॥ जैसे स्याम घटा के वर्षणे कर नदीयां बढ
जाती हैं ॥ तैसे मन के फुरणे कर आपदा बढ जाती है ॥ इसके ऊ
पर पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं ॥ सो परस्पर सुहृ
दों का है सुण ॥ अथ कथा भास विलास सुहृदों की
॥ सह्याचल पर्वत बडा पहाड है ॥ ऊंचा तो आकाश को ग
या है ॥ अरु पीठ कर पृथवी को घेर लीया है ॥ अरु नीचे पाता
ल को गया है ॥ तिसके ऊपर वृक्षों के समूह हैं ॥ तहां गंगाजी के
झरणे चलते हैं ॥ कुबेर अरु विद्याधरों के स्थान हैं ॥ मोतीयों अ
रु स्वर्ण के स्थान हैं ॥ उसकी पीठ पृथवी विषे मानुष रहते हैं
तहां सुंदर रचना बणी हूई है ॥ मानों स्वर्ग लोक अरु ब्रह्म
लोक की उपमा दीजीये ॥ तहां अत्रि नाम ऋषीश्वर रहता था
साधों के आश्रम दूर करणे हारा था ॥ तिसके आश्रम पर दोत
पस्वी आन रहे ॥ जैसे आकाश विषे वृहस्पति शुक्र रहते हैं ॥
तिन दोनों के गृह विषे दो पुत्र सुंदर उत्पन्न भए ॥ एक का नाम
भास ॥ अरु दूसरे का नाम विलास था ॥ दोनों क्रम करके वृद्ध
होते भए ॥ परस्पर तिनकी प्रीत बहुत बढी ॥ एक देह ही रहे ॥
देखणे मात्र तो दो हैं ॥ पर चित्त एक ही है ॥ जब केता काल व्य

तीत भया॥ तब तिनके माता पिता सरीर कों त्यागकर
स्वर्ग कों गमन करते भए॥ तब तिनके वियोग कर दो
नों सोकवान भए॥ तब उनके मर्णे की क्रिया सभ
करी॥ उनके गुण स्मरण कर के सोकवान होवें॥ हे रा
मजी इस प्रकार सोक कर उनका सरीर कृष्ण होग
या॥ ॥इति उपशम प्रकर्णे भास विलास वृत्तां
त सह्याचल गिरि वर वर्ननं नाम सर्गः॥ ६०॥
श्री वसिष्ठोवाच॥ हे रामजी जैसे उजाड का वृक्ष
जल विना सूक जाता है। तैसे उनका सरीर कृष्ण हो
गया॥ तब दोनों विरक्त होकर विचरने लागे॥ बहुड
आपस में तो विछुड गए॥ जब केता काल व्यतीत भ
या॥ तब बहुड आन मिले॥ तब विलास कहत भया
हे भाई मेरे हिर्दे कों आनंद देणे हारे। तेरा मेरा वियो
ग होगया॥ तिस विषे तुं जनकहु निर्मल तप कीया है किं
उ॥ तेरी बुधि सोक तें रहित हुई है किंउ। अरु आत्मप
द पाया है किंउ॥ तें अब कुसल रूप हुया है किंउ॥
भासोवाच॥ हे साधु अब हम कों कुसल हुया है। जो
तेरा दर्शन भया है॥ अरु जो जगत विषे कहो॥ तो कुस
ल कहां है॥ जब लग आत्म ज्ञान उदे नहीं भया॥ तब ल
ग सुख कहां है॥ जब लग ज्ञेय जो परमात्म तत्व है॥ तिस
कों नहीं पाया॥ अरु जब लग चित्त रूप भ्रम का क्षीण न
हीं भई॥ संसार सागर कों नहीं तरें॥ तब लग कुसल क
हां है॥ हे साधु संसार रूपी विसूचका रोग है। सो आत्म ज्ञा
न विनां दूर नहीं होता॥ सभ जीव उही कर्म नित करते हैं।
जिस कर दुख की प्राप्त होवे॥ देह रूपी एक वृक्ष है॥ तिस वि
षे बालिक अवस्था पत्र है॥ यौवन अवस्था फल है॥ वृध
अवस्था रूपी फल है॥ मौत काल के मुख में जा पडता है
बहुड उपजता है॥ बहुड नष्ट होता है॥ हे साधु चित्त रूपी
हस्ती है॥ वैराग्य रूपी संगलों पाए विनां कामादिकों के स्वा
द लेणे कर दूर तें दूर चल्या जाता है॥ हे साधु बुधि रूपी पं

खेरणीहै॥ अरुवासनांरूपीजालहै॥ तिसविषेपडीक
ष्टपावतीहै॥ इहमैंकीयाहै॥ इहकर्त्तीहों॥ इहकरोंगा इ
सीचिंताविषेनष्टकर्त्तीहै॥ एकक्षणभीविश्रामकोंनहीं
पावतीहै॥ भाई चित्तरूपीकमलहै॥ तिसकोंरागद्वेषरू
पीहस्तीपडाचूर्णकर्त्तीहै॥ जोइहमेराबांधवहै॥ इह
मेरामित्रहै॥ इहमैंहों॥ अहंममहीइसकोंमार्त्तीहै॥ शुद्ध
आत्मस्वरूपकोंत्यागकरदेहादिकोंअनात्मरूपविषे
अहंभावकर्त्तीहै॥ तबदीनताकोंप्राप्तहोतीहै॥ जैसेरा
ज्यतेंरहितराजाकष्टकोंपावताहै॥ तैसेइहजीवआत्म
ज्ञानतेंरहितकष्टकोंपावताहै॥ जबदेहाभिमानकोंत्या
गे॥ तबकुशलहोवे॥ ॥इतिउपशमप्रकर्णेअवि
तगतिपादनंनामसर्गः॥ ६१॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे
रामजीइसप्रकारउनोंपरस्परचर्चाकरी॥ जबकेताका
लव्यतीतभया॥ तबअभ्यासद्वाराउनोंकोंनिर्मलज्ञानप्रा
प्तभया॥ मोक्षपदकोंप्राप्तभए॥ तातेहेरामजीज्ञानतेंऔ
रमार्गकल्याणकासंसारतरणेंकोकोऊनहीं॥ तिसतेंशा
स्त्रोंकाश्रवणअरुसंतोकासंगज्ञानकेउपजावणेकोंउ
पावणाहीहै॥ हेरामजीजोदेहतेंअतीतमहात्मापुरुषहैं
रू९ सोचिन्मात्रतत्वविषेस्थितहैं॥ जैसेरथकेटूटेतेंरथवाहे
कोंदुखकछुनहींहोता॥ तैसेदेहकेदुखतेंज्ञानवानकों
दुखकछुनहींहोता॥ हेरामजीदेहअरुआत्माकासंयोग
कछुनहीं॥ जैसेजलअरबेडीकासंयोगकछुनहीं॥ तैसेदे
हअरुआत्माकासंयोगकछुनहीं॥ हेरामजीइसकोंजोदु
खहोताहै॥ सोदेहाभिमानकरहोताहै॥ जहांअहंममअभि
मानहोताहै॥ तहांदुःखभीहोताहै॥ जैसेमछीजलकेवियो
गकरदुखपावतीहै॥ तैसेजिसपुरुषकोंदेहविषेअहंम
मभावहै॥ सोबडेकष्टकोंपावताहै॥ अरुजिसकोंदेहविषे
अहंममभावनहीं॥ तिसकोंदुखभीकोऊनहीं॥ काहेतेंजोस
र्वसंवितमात्रआत्मतत्वस्थितहै॥ सोशुद्धहै॥ द्वैतकल्पनकेफु
रणेतेंरहितहै॥ जोतिसपदविषेस्थितहैं॥ तिसकोंद्वैतक

कछु नहीं नासता ॥ अरु जो अस्ता नहीं ॥ तिनकों देत कलनां
पड़ी नासती है ॥ हे रामजी इह सर्व जीव निर्दुखरूप है ॥ पर
अज्ञान नाम करके दुखी पड़े होते हैं ॥ जैसे स्थाणु विषे अज्ञा
न करके चोर नाम नासता है ॥ तैसे आत्मा विषे अज्ञान कर
कें दुख पावते हैं ॥ इह पुरुष असंग रूप है ॥ कलना करके
संबंधी पड़े नासते हैं ॥ जैसे स्वप्ने विषे अंगना बंधन कर्त्ती
है ॥ तैसे अपणी कलना बंधन कर्त्ती है ॥ हे रामजी देह
अरु आत्मा का संबंध कछु नहीं ॥ जैसे जल अरु बेड़ी का
संबंध कछु नहीं ॥ तैसे देह अरु आत्मा का संबंध कछु न
हीं ॥ हे रामजी जिसकों देह विषे आत्म अभिमान है ॥ तिस
कों जन्म मरण संसार के दुख हैं ॥ जैसे बीज तें वृक्ष उत्पत हो
ता है ॥ तैसे देहाभिमान तें दुख उत्पत्ति होता है ॥ हे रामजी जो
पुरुष व्यवहार भी पड़ा कर्त्ता है ॥ अरु मोह तें रहित है ॥ औ
सा जो निर्मल चित्त है ॥ सो संसार तें मुक्ति है ॥ अरु जो सर्व व्यव
हार को त्याग बैठा है ॥ अरु अंतर चित पदार्थों सों बंधमा
न है ॥ सो पुरुष दुख पावता है ॥ अरु जो अंतर मोह तें रहित
है ॥ सो मुक्ति है ॥ जो पुरुष आकाश की न्याई निर्लेप है ॥ सो
पुरुष समता भाव अद्वैत आत्मतत्व विषे स्थित है ॥ ॥
॥ इति उपशमप्रकरणे अंतरसंगविचारो नाम स
र्गः ॥ ६२ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन संग दोष किसकों
कहते हैं ॥ अरु मोक्ष किसकों कहते हैं ॥ अरु बंध किसकों
कहते हैं ॥ अरु किस उपाव कर मुक्ति होता है ॥ श्रीवसि
ष्ठोवाच ॥ हे रामजी देह अरु देही का जो विभाग है ॥ देहमात्र तिसको त्यागकर
विषे जो अपणा विश्वास कर्त्ता है ॥ तिसी कों बंधन कहते हैं
हे रामजी आत्मतत्व अनंत है ॥ पर देह विषे अहंभाव करके
आपकों तुच्छ जानता है ॥ इस विषे जो सुख की इच्छा कर्त्ता है
सो इसी का नाम बंधन है ॥ अरु जिसकों इह निश्चा हूआ है
जो सर्व आत्मा ही है ॥ मैं किसकी इच्छा करों ॥ अरु किसका त्या
ग करों ॥ इस कर जीवन्मुक्ति कहीता है ॥ अथवा इह निश्चा
करे ॥ जो न मैं हों ॥ न जगत है ॥ सर्व भावाभाव कों त्याग कर अ
द्वैत सत्ता विषे स्थित होणा इसकों जीवन्मुक्ति कहीता है ॥

नकर्मों के त्यागणे की इच्छा है ॥ न कर्मों के करणे की इच्छा हैं
तिस कों असंग संग कहीता है ॥ हे रामजी जिस कों आत्म
तत्व विषे निष्ठा है ॥ अरु रागद्वेष तें रहित है । सो असंग
संग कहीता है ॥ हे रामजी नासैं विषे रसद्रीऊ च अथवा बे
ल कों पावते हैं ॥ अरु नारकउ गई फिरते हैं । जो आसा रूपी
फासी साथ बंधे जीव हैं ॥ सो बडे दुःख पावते हैं ॥ इह सं
न संसार का फल भोगते हैं ॥ पशु पंखी वृक्ष अरु वृक्ष अने
क योनी कों पावते हैं ॥ सो संसारी दो प्रकार के होते हैं । एक
बंध हैं ॥ अरु एक वंदना करणे योग्य हैं । जो मूढ जीव हैं सो
बंध हैं ॥ अरु जो तत्ववेत्ते हैं ॥ सो वंदना करणे योग्य हैं ॥ हे राम
जी आत्मतत्व तें जो गिडा है ॥ अरु देहादिक विषे अभिमा
न कीया है ॥ सो मूढ है ॥ सो संसार विषे जन्ममरण कों पावे
गा ॥ अरु जिन कों आत्मतत्व का ज्ञान हूया है ॥ अरु आत्मा
ही विषे जिन का निष्ठा है ॥ सो वंदना करणे योग्य है ॥ अरु
जो शंख चक्र गदा पद्म जिस के हाथ विषे है ॥ आत्मतत्व
का निष्ठा है ॥ सो तीन लोकों की पालना करता है ॥ सो वंदना
करणे योग्य है ॥ जो निरालंब सूर्य आकाश विषे विचरता है
सदा स्वरूप का निष्ठा है ॥ सो वंदना करणे योग्य है ॥ जो महा
प्रलेपर्यंत जगत कों उत्पत्त करे कर्ता है ॥ अरु सदा आत्म
स्वरूप का निष्ठा है ॥ ब्रह्मा होकर विराजता है । सो वंदना
करणे योग्य है ॥ अरु लीला कर गौरी भगवती कों संग राख
ता है ॥ अरु अनंत कों लगावता है ॥ शंकर वपु कों धारकर
सो वंदना करणे योग्य है ॥ इस तें आदि ले कर सिध विद्याध
र लोकपाल हैं ॥ तिन कों संसार स्वरूप विषे है ॥ सो वंदना
करणे योग्य है ॥ अरु जो देहादिकों विषे संसक्त है ॥ सो बंधन
रूप जन्ममर्णों का कारण है ॥ हे रामजी जो संसक्त जीव हैं
सो बोधे हूए हैं ॥ केई देवतारूप धारकर स्वर्ग विषे जाते
हैं ॥ केई मानुषों विषे रहते हैं ॥ केई सर्प दैत्यादिक होकर
पाताल विषे रहते हैं ॥ तीनों लोकों विषे भटकते फिरते हैं
जैसे समुद्र विषे तरंग उपजते हैं ॥ अरु मिट जाते हैं ॥ तैसे त्र

ह्मांड विषे जीव उपजते हैं॥ अरु मिट जाते हैं॥ कालरूपी
बालिक के खेलणे का खेनू जीव हैं॥ कबहूं अधह को उ
छलता है॥ कबहूं ऊर्ध कों उछलता है॥ हे रामजी जेता क
छु जगत है॥ सो सभ देहादिकों विषे संसक्त है॥ सो तृष्णा
अग्नि करके तृणों की न्याई पड़े जलते हैं॥ हे रामजी जो संस
क्त जीव हैं॥ तिनके सरीरों के पावणे की संख्या कछु नहीं
जेती कछु आपदा है॥ सो तिनको प्राप्त होती है॥ जैसे समु
द्र विषे सभ नदीयां आन प्रवेश करतीयां हैं॥ तैसे आप
दा तिनकों प्राप्त होती है॥ हे रामजी देहादिक अभिमानी
सदा विषयों की सेवना करते हैं॥ सो बन्धबन्धनकों कों पा
वते हैं॥ अरु जो असंसक्त पुरुष हैं॥ तिन पुरुषों कों सभ
विनत संपदा प्राप्त होती है॥ जैसे वर्षा काल विषे नदीयां
जल कर पूर्ण होती हैं॥ तैसे असंसक्त पुरुष को सर्व संप
दा प्राप्त होती है॥ जिस पुरुष कों देहाभिमान घट जाता
है॥ तिसकों आत्मत रूप जान॥ अर्थ इह जो विचार जिउ
जिउ बढता है॥ तिउं तिउं अमर होता है॥ चंद्रमा की न्याई
शीतल मुक्ति रूप होता है॥ तब शांति कों पावता है॥ ॥
॥ इति उपशमप्रकर्णे असंसंग विचारो नामस
र्गः॥ ६३ ॥ श्री वसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इह जो मैं तु
जकों उपदेश कीया है॥ तिसको विचार कर अभ्यास क
र॥ जो सर्वदा काल सर्व कर्मों कों कर्त्ती चित्त कों देह आदि
क अभिमान विषे संसक्त न कर॥ केवल चैतन्य तत्व है
तिस विषे स्थित हो॥ हे रामजी जब सर्व तें नीरस हूया॥ अ
रु आत्मतत्व विषे स्थित हूया॥ तब विगत संग होवेगा॥
जीव का जीवत्व चलता रहेगा॥ केवल चिदात्मा होकर स्थि
त होवेगा॥ सर्व व्यवहार कर्त्ता भी अकर्त्ता होवेगा॥ जैसे बु
दलों के दूर हूयें सूर्य स्वभाविक प्रकाशता है॥ तैसे फुरणे
तें रहित चैतन्य प्रकाशता है॥ जैसे चिंतामणि प्रकाश आ
प स्वभाविक भासती है॥ तैसे आत्मतत्व स्वभाविक भास

जो आतम

आवेगा॥ बहुड क्रिया तुजको स्पर्श न करेगी॥ जैसे कम
लों कों जल स्पर्श नहीं कर्त्ता॥ तैसे तुजकों क्रिया स्पर्श न क
रेगी॥ ॥इति निर्वाणप्रकर्णे सात्विक समाचार
जोग उपदेशो नाम सर्गः॥ ६४ ॥श्रीवसिष्ठोवाच
॥ हे रामजी असंगासंग जो पुरुष है सो ध्यान करे अथ
वा व्यवहार करे सदा ध्यान विषे स्थित है॥ बाह्य क्रिया
कर्त्ता दृष्ट आवता है॥ अंतर सर्व कलनां तें रहित है सो
ब्रह्मलक्ष्मी कर शोभता है॥ हे रामजी जो आत्मारामी पु
रुष है॥ सो बाह्य क्रिया कर्त्ता दृष्ट आवता है॥ अरु अंत
र तें सुमेर की न्याई अचल है॥ जिनका चित्त आत्मपद
नया विषे स्थित है॥ तिसकों सुखदुख कछु नहीं लागता॥ जैसे
स्फटिक को प्रतिबिंब का रंग नहीं चढता॥ तैसे ज्ञानवा
न को सुखदुख स्पर्श नहीं होता॥ जिस पुरुष कों पराव
र ब्रह्म का साक्षात्कार हूया है॥ तिनके चित्त कों रागद्वे
ष का रंग नहीं चडता॥ जैसे आकाश विषे बदल दृष्ट आ
वते हैं॥ पर आकाश को स्पर्श नहीं कर्त्ते॥ तैसे ज्ञानवान
को रागद्वेष स्पर्श नहीं कर्त्ते॥ जो आत्मध्यानी है॥ जिसकों
परमबोध का साक्षात्कार हूया है॥ अरु कलना मल तें
मुक्ति हूया है॥ (कों) सो असंगासंग है॥ हे रामजी जो आत्मरामी
पुरुष है॥ तिस आत्मज्ञान के अभ्यास कर संसत्ता दूर
नई है॥ अन्यथा निवर्त्त नहीं होती॥ जब चित्त गणाम आ
त्मा की ओर पावेगा॥ तब जाग्रत नी स्वप्न की न्याई होजावे
गी॥ अरु चित्त परमशांति कों पावेगा॥ जैसे चंद्रमा प्रणाम
के सूर्यवत प्रकाशता है॥ तैसे चित्त दृढ प्रणाम के वश ते
आत्मरूप होजावेगा॥ जब चित्त चेतनाव नां तें रहित क्षीण
होवेगा॥ तब क्षीण चित्त कहीता है॥ तब जाग्रत इसकों सु
षुप्त की न्याई होजाती है॥ तिस अवस्था विषे जो कछु कर्त्ता
है॥ सो अहंकार तें रहित कर्त्ता है॥ जैसे जंत्री की पुतली अहं
कार तें रहित चेष्टा कर्त्ती है॥ तैसे उह पुरुष निरहंकार सं

वेदनतेंरहितक्रियाकर्त्ताहै॥हेरामजीइसप्रतिष्ट
भावाभावरूपजागतसमचित्तविषेहोताहै॥जबा
चित्तआत्मभावकोंप्राप्तभया॥तबकिसकोंकिसक
रैबंधनहोवे॥सर्वआत्मतत्वहीहै॥जैसेनटस्वांगोंकों किसका४
धारताहै॥परबंधमानकिसीविषेनहीहोता॥तैसेबो
धवानपुरुषजागतकीन्यांईक्रियाकर्त्ताहै॥अरुजी
वन्मुक्तिहै॥हेरामजीतुमभीबोधकोंप्राप्तिकरकेंसुषुप्त
कीन्यांईक्रियाकरो॥जोऐसेकर्त्ताहै॥सोकर्त्ताभीअ
कर्त्ताहै॥ऐसेनिश्चयकोंधारकरजैसेइच्छाहोवे॥तैसेक
रो॥हेरामजीज्ञानवानकीचेष्टाबालिकवतहोतीहै॥जैं
सेबालिकपघूडेविषेअंगोंकोंपडाहलावताहै॥तैसे
ज्ञानवानअभिमानसंवेदनतेंरहितक्रियाकर्त्ताहै
जबचित्तअचित्तहोजाताहै॥जोकछुक्रियाकर्त्ताहै॥ति रूप
सविषेअलेपरहताहै॥हेरामजीजबेइसकोंसुषुप्तद
शाप्राप्तभई॥तबेइसकाअंतरशीतलहोजाताहै॥राग
द्वेषनहीफुर्त्ता॥अरुआत्मानंदकरपूर्णहोताहै॥जैसे
पूर्णमासीकाशोभताहै॥तैसेजीवन्मुक्तिपुरुषशोभता चंद्रमा
है॥हेरामजीजोपुरुषतुर्याअवस्थाविषेस्वभाविकास्थि
तहै॥सोअविनाशीहै॥आत्मानंदकरआनंदीहै॥अरु
कलनातेंरहितहै॥जबऐसेतुर्यातीतपदकोंप्राप्तहोता
है॥अभिमानकलनातेंरहितपर्मजोतिविषेस्थितहोता
है॥जैसेलूणकीदलीजलविषेपाईजलरूपहोजातीहै
तैसेउहआत्मरूपहोजाताहै॥ ॥इतिउपशमप्रकर
णेसंसक्तिचिकित्सोपदेशोनामसर्गः॥६५॥श्रीव
सिष्टोवाच॥हेरामजीजबतुर्यापदविषेस्थितहोताहै
तबकेवलजीवन्मुक्तिपदविषेस्थितहोताहै॥इसतेंउ
परंततुर्यातीतविदेहपदविषेस्थितहोताहै॥सोवाणीका
विषयनहीं॥जैसेआकाशकोकोउनहीमापता॥तैसेतु
र्यातीतवाणीकाविषयनहीं॥हेरामजीजोतुर्यातीतपद

विषे स्थित हूया है ॥ सो निर्दुःख भावकूं प्राप्त हूया है ॥ सो
पुरुष कर्त्ता अकर्त्ता है ॥ जैसे मृत्तिका लेखा चंद्रमा उ
दे अस्ति तें रहित होता है ॥ तैसे उह पुरुष प्रणाम तें र
हित होता है ॥ हे रामजी इह जगत सत चिदानंद स्वरू
प है ॥ अहं त्वं नाम तें रहित है ॥ तिस विषे स्थित हो ॥ आ
त्मा सर्व नाम सर्व रूप है ॥ अरु सर्व नाम सर्व रूप तें र
हित है ॥ नाम रूप जो उपदेश के निमित्त सवासीयों ने
कल्पे हैं ॥ वस्तु तें जगत जो उही रूप है ॥ जैसे जल तरंग
हो भासता है ॥ इतर कछु नहीं ॥ जैसे जल तरंग विषे भे
द कछु नहीं ॥ जैसे पट अरु तंतु विषे भेद कछु नहीं
तैसे ब्रह्म अरु जगत विषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी अ
वर द्वैत वस्तु कछु नहीं ॥ पर मैं तेरे समझावणे के निमि
त द्वैत अंगीकार कर के कहता हों ॥ इह जो शरीर है ॥
इस साथ तेरा संबंध कछु नहीं ॥ जैसे तम अरु प्रका
श का संबंध कछु नहीं ॥ तैसे देह अरु आत्मा का सं
बंध कछु नहीं ॥ देह मलिन असत जड़ रूप है ॥ अरु
आत्मा चैतन्य निर्मल अव्यक्त सत रूप है ॥ देह साथ
सनबंध कैसे होवै ॥ हे रामजी जैसे कबुधी अग्नि विषे
जल बुधि करै ॥ तैसे अज्ञानी देह विषे आत्म बुधि क
र्ती है ॥ जैसे मारूस्थल विषे सूर्य के तेज कर जल भास
ता है ॥ तैसे अज्ञानी देह विषे आत्म बुधि कर्ता है ॥ हे रा
मजी आत्मा निर्मल नित प्रकाश रूप है ॥ अरु देह अ
सत मलिन रक्त मांस रूप है ॥ इसके साथ आत्मा का सं
बंध कैसे होवै ॥ आत्मा विषे देह का अभाव है ॥ केवल
एक अद्वय आपणे आप विषे स्थित है ॥ तिस विषे द्वैत कै
से होवै ॥ हे रामजी स्वरूप तें न कोऊ बंध है ॥ न मुक्ति है ॥ स
र्व रूप आत्मा अपणे आप विषे स्थित है ॥ अंतर बाह्य
सन तूं ही विराजता है ॥ इह जो मानता है ॥ मैं सुखी हों दु
खी हों मूढ हों ॥ इस मिथ्या दृष्टि को दूर तें त्यागो ॥ अरु के

वल गयपणे आप विषे आपको जाणो ॥ जैसे प्रकाश अ
रु तम की एकता नहीं होती ॥ तैसे आत्मा अरु सरीर
की एकता नहीं होती ॥ हे रामजी सरीर जो चलता बोल
ता बैठता है सो वायु के संयोग कर क्रिया कर्त्ता है ॥
आठों स्थानों विषे वायु के बल कर अक्षरों का उच्चार
होता है ॥ उर कंठ सिर जिह्वामूल दंत नासका उष्टता
लूं ए आठ स्थान हैं ॥ कखगघङ इन चारों का कंठ विषे उ
च्चार होता है ॥ चछजझ इन वर्गों का तालूं विषे उच्चार हो
ता है ॥ टठडढ इन चारों का मूर्धन विषे उच्चार होता है
तथदध इन का दंतों विषे उच्चार होता है ॥ पफबभ इन
का उष्ट विषे उच्चार होता है ॥ ङञणनम इनु का नासका
विषे उच्चार होता है ॥ जिह्वामूल विषे जिह्वा का उच्चार हो
ता है ॥ जिस पद के आदि हकार होवे उसका उर विषे
उच्चार होता है ॥ आठों स्थानों विषे इन वर्गों का वायु कर
उच्चार होता है ॥ अरु नवों स्वरों समों का उच्चार होता है ॥
सो आत्मा इनतें निर्लेप है ॥ जैसे बांसरी वायु कर शब्द
करती है ॥ तैसे इह पांचों तत्वों कर शब्द होता है ॥ सो इन विषे
आत्म अभिमान करणी जो मैं कर्त्ता हूं ॥ मैं भोक्ता हूं ॥ मैं मू
र्ख हूं मैं सियाणा हूं ॥ अरु नेत्रादिक इंद्रियां भी वायु कर सोम छाम्ह रवता है
चेष्टा करतीयां हैं ॥ तां ते इस भ्रम को त्याग कर आत्मपद वि
षे स्थित हो ॥ आत्मा आकाशवत सर्व विषे पूरण आप
को जाण ॥ जैसे आकाश सर्व ठौड विषे पूर्ण है ॥ तैसे आप
को सर्व ठौड विषे पूर्ण जान ॥ हे रामजी जहां चेतरूपी वंखी
वासना कर जाता है ॥ तहां ही आत्मा का अनुभवरूप
हो भासता है ॥ जैसे जहां पुहप होता है ॥ तहां सुगंध होती है भी
तैसे जहां चित्त होता है ॥ तहां भासता है ॥ जैसे सब पृथवी
विषे जल है ॥ पर भासता तहां है ॥ जहां खोदीये ॥ तैसे आत्मा
सब ठौड पूरण है ॥ पर भासता तहां है ॥ जहां चित्त होता है
हे रामजी नेत्रों का कारण अंतःकरण है ॥ अरु आत्मा तो
सर्वतें अतीत है ॥ अरु जगत जो सत भासता है ॥ सो अवि

चारकरसतनासताहै ॥ तिसकेनिवृत्तकाउपावऽआ
त्मज्ञानहै ॥ हेरामजीऽअसम्यकज्ञानकरकेसतनास
ताहै ॥ जैसेमारुस्थलविषेऽअसम्यकज्ञानकरकेज
लतीसताहै ॥ जबसम्यकज्ञानहोताहै ॥ तबचित्त
सहितजगतऽअभावहोजाताहै ॥ जैसेदीपककेजगा
वणेकरऽअंधकारनष्टहोजाताहै ॥ संसारकाकार
णऽआपणाचित्तहै ॥ इसीकानामजीवमनचित्तऽअंत
हकर्णहै ॥ श्रीरामोवाच ॥ हेमानदमानकेदेणे
हारेएतीसंज्ञाचित्तकीकैसेहूईहै ॥ श्रीवासिष्ठोवा
च ॥ हेरामजीसर्वनावरूपणेकेपरमात्मतत्वहै ॥
जैसेजलसमुद्रतरंगलहरीबुदबुदेऽआदिकसं
ज्ञाकौपावताहै ॥ तैसेचित्तहीऽअनेकसंज्ञाकोपावता
है ॥ ऽअरुसदाएकरूपपरमात्माहै ॥ संवेदनस्पंदक
रऽभूनेकरूपकोधारताहै ॥ हेरामजीजहांऽअहंभाव
फुरताहै ॥ तहांजीवकहीताहै ॥ ऽअरुजोनिश्चैवत्तकर
केफुरताहै ॥ तिसकोबुधिकहीताहै ॥ संकल्पविकल्प
करमनकहीताहै ॥ चितवनाकरचित्तकहीताहै ॥
हेरामजीजिसकाचित्तनिर्वासीहूयाहै ॥ जबउसका
सरीरछूटताहै ॥ तबउहचिदाकासविषेलीनहोजा
ताहै ॥ ऽअरुजिसकेचित्तविषेवासनाहै ॥ सोएकसरी
रकोंत्यागकरऽओरसरीरकोंपावताहै ॥ तोभीसरी
रकेनाशहूएऽआत्माकानाशनहीहोता ॥ ऽअरजोदेह
केनाशहूएऽआत्माकोंनाशहूयामानतेहैं ॥ सोऽअज्ञा
नीहैं ॥ जैसेऽअज्ञानकरकेस्याणेविषेवेतालभासता
है ॥ तैसेऽअज्ञानकरकेऽआत्माविषेजन्ममृत्युभासताहै
जबचित्तकाऽअत्यंतनाशहोतावै ॥ बहुडफुरेनहीं ॥ सो
तोऽआनंदहूया ॥ ऽअरुजोसरीरकेनाशहूएऽआत्माका
नाशकहतेहैं ॥ सोमूढहैं ॥ जैसेकोउदेशातेदेशांतर
जाताहै ॥ तबउसकाऽअभावनहीहोता ॥ तैसेएकसरी

रकौं त्यागकर अवरसरीरकौंपावताहे। पर आत्मा
कानाश नहींहोता॥ जैसेजलविषे तरंगफुर्त्तीहे। बडू
डलीनहोताहे॥ बडूडफुर्त्तीहे॥ बडूडलीनहोताहे॥ तै
से आत्मा एकसरीरकौं त्यागकर अवरसरीरौंकौं
पावताहे॥ हे रामजी वासनाके वशतें इह जीव एक
सरीरकौं त्यागकर अवरसरीरौंकौंपावताहे॥ वास
नारूपी रसडीसाथ बांध्याहूया पडा भटकताहे। घ
टीयंत्रकी न्यांई अधः ऊर्ध्वकौं पडा भटकताहे॥ तातें
अविद्यारूप जो संसार हे॥ तिसकौं भ्रमरूप जानक
र इसकी वासना त्याग॥ अरु अपणे स्वरूपविषे स्थि
त हो॥ वाल्मीकोवाच॥ हे भारद्वाज जब इस प्रकार
वसिष्ठजी कहा॥ तब सूर्य भगवान अस्त हूया॥ सर्व
सभा स्नानके निमित्त उठ खडे हूए॥ परस्पर नमस्का
रकर अपणे अपणे स्थानौंकौं गए॥ रात्रिकौं बीता
य सूर्यकी किरणौंसाथ आइ बैठे॥ ॥इति उप
शमप्रकर्णे संसारउपदेशो नाम सर्गः॥ ६६॥
श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी आत्मा देहके उपजेए
तें उपजता नहीं॥ अरु देहके नाश हूए नाश नहीं हो
ता॥ तूं निःकलंक आत्मस्वरूप हैं॥ देहका संबंध तु
जकौं कदाचित नहीं॥ जैसे रथके टूटे तें रथवाहीकौ
नाश नहीं होता॥ तैसे देहके नाश हूए तें आत्माका ना
श नहीं होता॥ आत्मा अनात्मा देह इंद्रीयां प्राण मन
बुधि आदिक विलक्षण भाव हैं॥ परस्पर इनके हाय
अरु उदै विषे हर्ष शोक कछु नहीं॥ पर चित्तकी उपा
धि करकै अनात्मधर्म आत्माविषे प्रतिबिंबित भास
ते हैं॥ तातें तूं तत्वबोधका विचार करकै चित्तकौं त्यागक
र अपणे स्वरूपविषे स्थित हो॥ जैसे जल अपणे तरं
ग भावकौं त्यागकर अपणे स्थिर भावकौं प्राप्त होताहे
तैसे तूं अपणे स्थिर भावकौं प्राप्त होवेंगा तौ ब्रह्मी॥ जैं
से [illegible]कौं तामसत्ति सूर्यके उदे हूए परमप्रकाशकौं

प्राप्तहोतीहै॥ तैसेजबबोधकर्के दृष्टादर्शनदृश्यप
भावतेंराजातारहेगा॥ तबतूंअपणेस्वभावकोंजि
उकातिउजाणेंगा॥ जैसेसमुद्रविषेतरंगभावउदै
होताहै॥ सोकछुवस्तुनहीं॥ तैसेचित्तादिकआत्मा
विषेकछुवस्तुनहीं॥ इसप्रकारजानकरबोधवा
नजीवन्मुक्तिहोविचरतेहैं॥ जैसेरत्नमणीकाचिम
तकारसकाशहोभासताहै॥ तैसेज्ञानवानोंकाव्य
वहारवासनातेंरहितपड़ाहोताहै॥ जैसेआकाश
विषेधूड़उडतीभासतीहै॥ परआकाशकोंस्पर्श
कछुनहींहोती॥ तैसेज्ञानवानकोंकर्तृत्वकास्पर्श
कछुनहींहोता॥ हेरामजीजिसकेमनविषेसंपूर्ण
जगतकेपदार्थोंकीवासनानहींफुरती॥ तिसचित्त
विषेजोकछुफुरणाभासताहै॥ सोविलासरूपजा
नउसकोंबंधनकाकारणनहींहोता॥ अरुजिसचि
त्तविषेअहंत्वंजगतकीभावनाहै॥ सोबंधमानहीहै
हेरामजीजोसम्यकदर्शीहैं॥ सोमोहकोंनहींप्राप्तहो
ते॥ दृश्यरूपजोविषयहै॥ अरुदर्शनकहीयेइंद्रीयां॥ ति
नकेमिलाणेविषेजोपरमात्मसुखहै॥ सोअनुभव
रूपब्रह्मसुखकहीताहै॥ अरुदृश्यदर्शनकेसंबंध
विषेजोअनुभवसुखहै॥ तिससंवितविषेजोस्थित
होताहै॥ सोज्ञानवानमोक्षभागीहै॥ अरुजोदृश्यद
र्शनविषेस्थितहोतेहैं॥ तिनअज्ञानीकोंसंसारभ्रम
दिखीताहै॥ अरुदृश्यदर्शनकेमध्यविषेजोअनु
भवसत्ताहै॥ सोसुखआत्माकाहै॥ अरुजोदृश्यसा
थलागाहै॥ सोबंधहै॥ अरुजोदृश्यतेंमुक्तिहोकर
संवितत्त्वविषेस्थितहै॥ सोमुक्तिरूपकहीताहै॥
हेरामजीदृश्यदर्शनकेमध्यविषेजोअनुभवगो विषेय
चरहै॥ तिससंवितकोंआश्रयकर्के दृश्यदर्शनतेंमु
क्तिहोवो॥ तबसंसारसमुद्रकोंतरजावो॥ इहसुषु
प्तरूपदृष्टहै॥ इसकोंप्राप्तहूयापरमप्रकाशकोंपा

वताहै॥ इसीकों मुक्ति कहीताहै॥ जो दृश्यदर्शनतें मु
क्ति है॥ सो मुक्ति बुधि है॥ अरु जो दृश्य दर्शन साथ
बांध्या है॥ सो बंधु है॥ इन सर्वों का अनुभव करणेहार
आत्मा है॥ जो सर्वरूप हूया है॥ अरु सर्वतें अतीत है
किंचित्मात्र किंचिनरूपे सत्त हो है॥ जब जिउ का ति
उ जाणे सम्यक ज्ञान करके तब सर्व जगत आत्मरूप
भासै॥ इह जो कठन रूप पृथ्वी भासती है॥ अरु द्र
वतारूप जल भासता है॥ अरु प्रकाशरूप अग्नि भा
सती है॥ वायु अरु आकाश भासते हैं॥ जो कछु वस्तु
अवस्तुरूप जगत भासता है॥ सो आत्मसत्तातें इतर
कछु नहीं॥ आदि कल्पतें लेकर अंत पर्यंत सर्व आ
त्माका चमत्कार है॥ आत्मातें इतर कछु नहीं॥ ऐसे
जानकर अपणे अनुभवरूप विषे स्थित होवो॥ ॥
इति उपशमप्रकरणे स्वरूपोपदेशो नाम सर्गः
॥ ६८॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इह जो मैं तुझ
कों द्वैत के त्याग की दृष्ट कही है॥ इस विचार करि अ
पणा अनुभवरूप जो आत्मा है सो प्राप्त होता है॥ जैसे
बुधिवानकों (उपासना) अभ्यास कर अनुभव चिंतामणि की प्रा
प्त होती है॥ जो मैं ही आकाश हों॥ मैं ही दिशा हों॥ मैं ही
सूर्य हों॥ मैं ही चंद्रमा हों॥ अधः ऊर्ध्व सर्व मैं ही हों॥ देवता
दैत्य सर्व मैं ही हों॥ प्रकाश तम सर्व मैं ही हों॥ पृथ्वी स
मुद्र स्थावर जंगम सर्व मैं ही हों॥ हे रामजी सर्व जग
त आत्मा ही है॥ तो अहंत्वं भी भिन्न नहीं॥ ऐसा निश्चय
जिसके अंतर होता है॥ तिसकों सर्व जगत आत्मारू
प भासता है॥ सो पुरुष हर्ष शोकतें रहित होता है॥ ज्ञा
नवानकों आत्मातें इतर नहीं भासता॥ हे रामजी अहं
कार तीन प्रकार का है॥ दो प्रकार का सात्विक निर्मल है
तत्वज्ञान विषे प्रवर्तता है॥ सो मोक्षदायक है॥ एक इ
ह जो सर्व मैं ही हों॥ मेरे तें अन्य कछु नहीं॥ दूसरा इह जो

अरु इसतें उपरांत
और भी परम दृष्ट
ए जिसकरि वा दृष्ट को
के अखंड आत्मस्व
रूप को देखेंगा

परमसत्त्यसामान्य अनुभवस्वरूप हैं ॥ इह निश्चे दोनों
मोक्षदाइक हैं ॥ अरु तीसरा इह जो आपकों देहमात्र
जानणा सो दुखदाइक संसार का कारण है ॥ तांते तुम
अपणे अनुभवस्वरूप विषे स्थित होवो ॥ जो आत्मा
अनुभवरूप किसे प्रमाण का विषय नहीं ॥ सर्वथा स
र्वकाल सर्व कों अपणे आप कर प्रकाशता है ॥ तांते जो
कछु दृश्य जगत है ॥ सो सन्न आत्म भगवान है ॥ सर्व तें र
हित सर्वरूप है ॥ तिस तें इतर कछु नहीं ॥ आत्मा आदि
क संज्ञा नी शास्त्रकारों ने उपदेश के निमित्त कल्पी है
सर्वशक्तीनी तिस विषे कल्पित हैं ॥ सर्व चत्तीनों काल
विषे सम स्थित प्रकाशरूप है ॥ सूक्ष्म स्थूल सत्त ही स
र्व गेह विषे व्यापक है ॥ अपणे फुरणे ही कर जीवरूप
हो कर नासता है ॥ जब चित्त संवित फुरणरूप होती है
तब जीवरूप हो नासता है ॥ अरु फुरणे तें रहित हुं तत्क
ल नो मिट जाता है ॥ जैसे आकाश विषे पवन फुरता है ॥
तब नासता है ॥ तैसे फुरणे कर जीवादिक नासते हैं ॥
अरु चेतन व्यापक रूप है ॥ कबहूं किसी नाव कों न
हीं प्राप्त हूया ॥ जैसे पदार्थ अपणे अपणे नाव विषे स्थि
त हैं ॥ तैसे महेश्वर आत्मा अपणे नाव विषे स्थित हैं ॥ प
र तिस का नासणा पुर्यष्ट का विषे होता है ॥ जैसे प्रकाश
विना पदार्थ नहीं नासता ॥ तैसे पुर्यष्टका विना आत्मा
नहीं नासता ॥ जैसे सूर्य के उदे हूए सर्व जीवों का व्यवहा
र होता है ॥ तैसे आत्मा के आश्रे सन क्रिया करते हैं ॥ अ
रु आत्मा निर्लेप है ॥ जगत के व्यवहार होणे अन होणे
विषे छिंउ कातिउं स्थित है ॥ तिस के अज्ञान कर के जीव
अनात्म नाव कों प्राप्त होते हैं ॥ जैसे जेवडी विषे सर्प भा
वना मानणा दुख का कारण है ॥ तैसे आत्मा का न जानणा
दुख का कारण है ॥ अरु आत्मा सत्त्य प्रकाशरूप सन्ने
का अपणा आप है ॥ देश काल वस्तु के परिछेद तें रहि

त है। सो ऐसा आत्मा सर्व का अपणा आप है। हे रामजी
न मोक्ष आकाश विषे स्थित है। न पाताल विषे स्थित
है। न भिलोक विषे भी मोक्ष नहीं। स्थित होणा चित्त
का इसी का नाम मोक्ष है। आत्मा विषे चित्त को लगाव
णा इसी का नाम मोक्ष है। अरु आप कों देहादिक जा
नणा ही बंध है। जब चित्त सों गुणमय वृत्ति का त्या
ग होवे। अरु सम्यक आत्मज्ञान प्राप्त होवे तिसकों
तत्ववेदसी मोक्ष कहते हैं। हे रामजी जब लग आत्म
बोध नहीं होता। तब लग इह दीन अरु दुखी होता
है। जब आत्मा का निर्मल बोध होता है। तब दुःख
ते मुक्ति होता है। अवर उपावों कों त्याग कर चित्त
आतम पद विषे जोडता। तब इसी का नाम मोक्ष है
हे रामजी जीव कों अवर उपाव मोक्ष का कोऊ नहीं
आत्मबोध का उपाव एही है। जो चित्त स्थित होवे
तब सम जगत शांति रूप हो जाता है। अरु जग
त भी इसरी वस्तु नहीं। उहीं एक अद्वैत तत्व है।
जो तूं ही है तो बंध किसकों कहीए। अरु मोक्ष कि
सकों कहीए। भावना कर कें जगत भासता है। अ
रु हे तूं ही आत्मरूप। मोक्ष बंध की कल्पनां कों त्या
ग कर पृथवी की पालना कर। तुझ कों कर्तव्य का
स्पर्श कबू न होवेगा। जैसे कमल को जल स्पर्श न
हीं करता। तैसे तुझ को कर्तव्य स्पर्श न करेगा॥
इति उपशम प्रकरणे आत्मविचारो नाम सर्ग
॥ ६८ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इसी के संक
ल्प ते जगत उपजा है। तौ तैं अज्ञान कर कें आप कों
शरीरादिक पदार्थ जानता है। अपणे संकल्प के उ
पजाए को अपणा आप जानता है। जैसे कोऊ सुं
दर पुरुष होवे। अपणां मुख अरु सरीर पडा देखे
तैसे आत्मा के साक्षात कार बिना देह कों आत्मा

जानताहै॥ जिउ जिउ आत्माका प्रमाद होताहै॥ ति
उ तिउ देह विषे अधिक अभिमान होताहै॥ हे रा
मजी इह नाना प्रकार की दृश्य जो भासती है॥ सो
अज्ञान करके भासती है॥ जैसे सूर्य की किरणों क
के मारूस्थल विषे जल भासता है॥ तैसे असम्य
क ज्ञान करके आत्मा विषे जगत भासता है॥ एक
कलना के फुर्णे करके मन बुधि चित्त अहंकार
देह इंद्रीयां भासते हैं॥ सो एक फुर्णे की एती सं
ग्या है॥ जैसे एक जल की अनेक संज्ञा होती है॥ तैं
से एक फुर्ने की अनेक संज्ञा होती है॥ जो मन है
सोई बुधि है॥ सोई चित है॥ सोई अहंकार है॥ इन
विषे भेद कछु नहीं॥ इन विषे भेद कर्णो मिथ्या है
एक के नष्ट हूए चारे नष्ट हो जाते हैं॥ तांते मन वि
षे जो कलना है॥ तिस का त्याग कर॥ वैराग अरु
अभ्यास करके मन को निर्मल कर॥ जब मन निर्म
ल हूया॥ तब मन का मनन भाव नष्ट हो जावेगा॥
जब इह फुर्णे फुरता है॥ जो मैं मोक्ष होवों॥ तब भी म
न जाग आवता है॥ अरु मन के जाग्रते मनन भी
हो आवता है॥ मनन हूया तब आपणे साथ सरी
र भासता है॥ अरु अनेक दुखों का भागी होता है॥
हे रामजी आत्मतत्व सभ तें अतीत है॥ अध्यास
वे रूप ही है॥ तब मोक्ष कहो॥ अरु बंध कहो॥ जब
मन का मनन निवृत हूया॥ तब न कोउ बंध है॥ न
मोक्ष है॥ आत्मा सर्व क्रिया तें अतीत है॥ अरु सर्व
क्रियां इस पर क्या होती है॥ जैसे वायु के चलणे क
र वृक्ष के पत्र फल फल सभ हलते हैं॥ तैसे प्राणों
के फुर्णे कर सर्व इंद्रीयां पदार्थ चेष्टा करती हैं॥ हे राम
जी चितन्न शक्ति है॥ सो सर्व व्यापी है॥ अरु सूक्ष्म अच
ल सदा स्थित है॥ हे रामजी जैसे कछु पदार्थ भास

तेहैं॥ सोसन आत्मरूपदर्पण विषे ज्ञानि बिंबित हो
ते हैं॥ जैसे सर्वपदार्थों कों दीपक प्रकाशता है॥ तैसे
सर्वपदार्थों कों आत्मा प्रकाशता है॥ जैसे वृक्ष अरु
पहाड़ों विषे अहंत्व आदिक शब्द नहीं फुरते॥ तैं
से आत्मा विषे अहंत्व आदिक नहीं फुरते॥ हे राम
जी आत्मा निराकार निर्विकार है॥ तिस विषे कर्त्त
त्व भोक्तृत्व नहीं॥ कर्तृत्व भोक्तृत्व आत्मा विषे अज्ञा
न करके भासता है॥ जैसे मारुस्थल विषे जल भासता
है॥ तैसे आत्मा विषे कर्त्तृत्व भोक्तृत्व भासता है॥ हे न
हो॥ हे रामजी जब परमार्थसत्ता का बोध हूया॥ तब
वासना नष्ट हो जाती है॥ जैसे दीपक केग कों पाकर
अंधकार नष्ट हो जाता है॥ तैसे आत्मज्ञान कर अ
विद्या नष्ट हो जाती है॥ हे रामजी अविद्या अविचारित
सिध है॥ जब संतसंग अरु सतशास्त्रों की युक्ति कर
विचार इसकों प्राप्त होता है॥ तब अविद्या नष्ट हो जा
ती है॥ हे रामजी देह जड़ है॥ अरु आत्मा चेतन है॥ बड़
ड देह के निमित्त भोगों की इछा करनी॥ इह मूर्खता है॥ अ
रु जो ज्ञानवान पुरुष हैं॥ सो इस बंधनों को तोड़ डारते
हैं॥ जैसे केसरी सिंह पिंजरे कों तोड़ कर निकस जाता
है॥ तैसे ज्ञानवान भोगों के निश्चे कों तोड़ डारता है॥ हे रा
मजी आसारूपी जो फांसी है॥ तिसकों छिदे ते काटो॥ जब
आसारूपी आवर्ण दूर भया॥ तब पूर्णमासी के चंद्र
मा की न्याई अंतर शीतल होता है॥ हे रामजी आत्मा के
साक्षात्कार हूए परमानंद कों प्राप्त होता है॥ जैसे रं
क कों त्रिलोकी का राज प्राप्त होवे॥ तैसे ज्ञानवान कों
आनंद प्राप्त होता है॥ हे रामजी ज्ञानवान पुरुष अप
णे आप विषे समावता नहीं॥ जैसे महाकल्प का समु
द्र अपणे आप विषे समावता नहीं॥ अर्थ इह जो मैं
सर्वात्मा सर्वगत सर्व का ईश्वर हों॥ सर्व आकार निरा
कार हों॥ केवल चिदानंद अपणे आप विषे स्थित हैं

हे रामजी ऐसे ज्ञानवान आपको जानता है ॥ अरु
पर्वत जो दिन व्यतीत भए हैं ॥ तिनको हसता है कहता
है ॥ मैं तौ अनंतात्मा हौं ॥ परमात्मा ज्ञानमूर्ति के आपको
कृतार्थ करि मानता था ॥ हे रामजी ऐसे ज्ञानवान रूप
मंत्री तिनको प्राप्त होता है ॥ उसके ताप सब निवर्त्त हो
जाते हैं ॥ अरु पूर्णमासी के चंद्रमावत शीतल चित्त
होता है ॥ हे रामजी ज्ञानवान की क्रियाको देखकर
औरस नवांछा करते हैं ॥ अरु ज्ञानवान किसीकी वां
छा नहीं करता ॥ ज्ञानवान सबनको आनंदवान करता है
अरु आप किसीकर आनंदवान नहीं होता ॥ आपणे
आनंदकर आनंदी है ॥ अरु सर्वते निर्लेप है ॥ सो जी
वन्मुक्त है ॥ हे रामजी तब सर्व इच्छा त्यागकर स्थित
चित्त होवैगा ॥ तब निर्लोक पदको प्राप्त होवैगा ॥ जै
से बदल वर्षा करके निर्मल भावको प्राप्त होता है
तैसे तूं निर्मल भावको प्राप्त होवैगा ॥ ऐसे सर्व संप
दा करके इतना ज्ञान नहीं ओपता ॥ जैसे आनंद करके
निर्वाणपुरुष सोभता है ॥ हिमालय विषे गया भी
ऐसा शीतल नहीं होता ॥ जैसे निर्वाणपुरुष सां
तिवान होता है ॥ हे रामजी ऐसा सुख स्वर्ग विषे भी
नहीं प्राप्त होता ॥ जैसा सुख निर्वाणपुरुष को प्राप्त
होता है ॥ जिस सुख विषे त्रिलोकी के सुख तृण की
न्याई भासते हैं ॥ अरु जो पुरुष निर्वाण हूआ है ति
सको त्रिलोकी का राज तृणवत भासता है ॥ हे राम
जी जैसे पर्वत चलायमान नहीं होता ॥ तैसे ज्ञानवान
त्रिलोकी के सुखकर चलायमान नहीं होता ॥ हे राम
जी आत्मसत्ता सदा प्रकाशरूप है ॥ नित्य शुद्ध परमा
नंद स्वरूप है ॥ जिस पुरुषको अपणे स्वरूप का ज्ञा
न है ॥ तिसको विस्मरण कदाचित नहीं होता ॥ हे राम
जी सरीरसों जिसका अहंभाव उठ गया है ॥ अरु इंद्री

ओरोंकीक्र यादेखकर

योंकर कर्म पडा कर्त्ता है॥ जैसे जिसकों बांधव चिर
काल तें मिल्या॥ तिसकों बहुड विस्मरण नहीं हो
ता॥ तैसे आपणा स्वरूप जिस जाण्या है॥ तिसकों वि
स्मरण नहीं होता॥ हे रामजी जिसकों सुध स्वरूप
का सम्यक ज्ञान हूया है॥ तिसकों नास्ति रूप जग
त बहुड़ नहीं भासता॥ जैसे वृक्ष तें टूटा फल बहु
ड़ नहीं लागता॥ तैसे तिसका देहाभिमान छूटा है
तिसकों बहुड़ नहीं लागता॥ जैसे लोहे कर पर्वत
चूर्ण कीया बहुड़ एकठा नहीं होता॥ तैसे जब ज्ञा
तकों अविद्या रूप जाण्या॥ तब आसक्त नहीं होता॥
हे रामजी विष जो मधुर जल साथ मिली होवे॥ जब
नहीं जाणी तब पीवणे की इछा कर्त्ती है॥ जब उसकों
जाण्या॥ तब पान करणे की इछा नहीं कर्त्ती॥ जब इस
संसार कों लिंउ का तिउ जाण्या॥ तब इसके पदार्थों
की इछा नहीं कर्त्ती॥ हे रामजी जिस पुरुष कों आत्मा
का साक्षात्कार हूया है॥ तिनकों पदार्थों विषे सत
बुधि नहीं होती॥ जैसे परव्यसनी नारी होती है॥ कि
सी पुरुष साथ उसका चित्त लागा होता है॥ उह गृह
के कार्य भी पड़ी कर्त्ती है॥ पर उसका चित्त सदा उसी
विषे रहता है॥ तैसे ज्ञानवान क्रिया कर्त्ता है॥ पर चि
त्त उसका सदा आत्मपद विषे रहता है॥ तां तें जिस
कों आत्म अनुभव हूया है॥ तिसके इस करणे कों को
उ समर्थ नहीं॥ वहे सुख अथवा दुःख का प्रवा
ह आन पड़े॥ तो भी तिसकों खंडित नहीं कर सक
ता॥ हे रामजी सम्यक ज्ञान कर जिसकी अविद्या नष्ट
नई है॥ सो सरीर के सुख दुख कर चलायमान नहीं
होता॥ उसका निश्चा सदा आत्मपद विषे स्थित रह
ता है॥ अथवा राज विषे रहे॥ अथवा वन विषे रहे
उसकों हानि कछु नहीं होता॥ ॥इति उपशम प्र

कर्ते निरासपद मौन विचारो नाम सर्गः ॥
॥ ६९ ॥ श्री वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी राजा
जनक व्यवहार कर्त्ता ही रहा। पर आत्मपद
था विषे स्थित जो रहा। तिस कर कलंकित न भया
सदा विगतज्वर ही रहा। अरु तेरा पितामा जो
राज राजा दिलीप था। सो भी सर्वकार्य कर्त्ता रहा। पर
अंतर रागद्वेष को न प्राप्त भया। जीवन्मुक्त होक
र पृथिवी का राज कर्त्ता भया। अरु राजा अज ना
ना प्रकार के व्यवहार कार्य युधादिक कर्त्ता र
हा। पर अलेप रहा। सदा जीवन्मुक्त होकर विच
रा है। अरु राजा मांधाता नाना प्रकार के युधा
दिक चेष्टा कर्त्ता रहा। पर सदा निष्काम आत्मपद
का रहा। कदाचित मोह को न प्राप्त भया। अरु रा
जा बलि पाताल विषे राज कर्त्ता महात्यागी स्वरू
प के ज्ञान कर सदा शांतिरूप जीवन्मुक्त होकर
विचरता भया। अरु नामचि दानवों का राजा स
दा युधादिक क्रिया कर्त्ता रहा देवतों साथ। पर
रिदे विषे कबहूं क्षोभ न भया। सदा आत्मा स्थित र
हा। अरु इंद्र के युध विषे वृत्तासुर दैत्य युध क
र्त्ता रहा। पर सदा सीतल कदाचित क्षोभवान
न हूया। आत्म स्थित हूया। अरु दैत्यों का राजा पा
ताल विषे राज कर्त्ता रहा। पर रिदे विषे क्षोभवान
न भया। आत्म स्थित भया। हे रामजी संबर नाम
दैत्य सदा क्लिष्ट अपणी रचना को समर्थ था। पर अ
पणे ज्ञान कर रचना विषे बंधमान न भया। अरु माया
वी रूप धार कर युध भी कर्त्ता रहे। पर आप अलेप
रहा। हे रामजी इह जो संसार संबरी माया रूप है।
तिसको संबर त्याग कर अपणे स्वरूप विषे स्थित
रहा। अरु विष्णु भगवान सदा दैत्यों को मार्त्ता रह

ताहै॥ अरु विदेह विषे सदा अलेप सुखरूप जीवन्मु
क्ति है॥ मूसल नाम दैत्य विष्णुजी के साथ युध क
र्के सरीर कों छोडत भया॥ पर विदेह विषे अलेप जी
वन्मुक्ति था॥ हे रामजी सर्व देवतों का मुख अग्नि
है॥ सो यत्त लछमी कों चिरकाल ले नां ता है॥ पर सदा
शांतिरूप ज्ञान कर अहो नर हता है॥ अरु देवते स
दा चंद्रमा की किरणां पान कर्त्ते हैं॥ अरु चंद्रमां कों तेंप्रयति
कछु तोन नहीं होता॥ अरु ब्रहस्पति देवतों का
गुरु स्त्री के निमित्त चंद्रमा के साथ युध कर्त्ता भया
पर शांतिरूप है॥ अरु देवतों के निमित्त नाना प्रका
र के कर्म कर्त्ता है॥ पर राग द्वेष तें रहित जीवन्मुक्ति
है॥ हे रामजी दैत्यों का गुरु शुक्रजी दैत्यों के निमित्त
सदा यत्न कर्त्ता है॥ पर जीवन्मुक्ति सदा शांतिरूप
है॥ अरु पवन प्राणियों के अंगों कों चिरकाल पडी
पेरता है॥ चेष्टा कर्त्ता है॥ पर जीवन्मुक्ति है॥ अरु ब्र
ह्माजी सदा जीवों कों उत्पत्त कर्त्ता प्रलय पर्यंत पर
स्वरूप साक्षात्कार है॥ तांते जीवन्मुक्ति है॥ अरु वि
ष्णुजी दैत्यों कों मार्त्ता सदा युध कर्त्ता है॥ जीवन्मुक्ति परसदा
है॥ अरु सदाशिव जो त्रिनेत्र है॥ गौरी अर्धंगी सदा वा
मे अंग रहती है॥ पर जीवन्मुक्ति है॥ अरु सदाशिव
का नंदीगण अनेक क्रियों कर्त्ता पर जीवन्मुक्ति
है॥ इस कारण तें सदा सुखी है॥ अरु सूर्य भगवान
दिन कों कर्त्ता फिर्त्ता रहता है॥ सदा सुखी जीवन्मुक्ति
है॥ अरु यमराज जीवों कों दंड ताडना कर्त्ता है॥ द्वो
न तें रहित जीवन्मुक्ति है॥ इंद्र कुबेरादिक जीवन्मु
क्ति हैं॥ नारद विश्वामित्रादिक जीवन्मुक्ति हैं॥ भृगु
भारद्वाजादिक जीवन्मुक्ति हैं॥ अवर अनेक जीवन
मुक्ति हैं॥ केई आकाश विषे केई पाताल विषे केई मा
तृलोक विषे जीवन्मुक्ति हैं॥ काकभुशुंड से सनामा

दिकमच्छ कच्छ वराह अवर अनेक योनीं विषे जी
वन्मुक्ति हैं ॥ जेते कछु जीवन्मुक्तिक हे हैं । सो सब आ
त्मा के नाम हैं ॥ आत्माही सर्व द्रूप रूप होकर स्थित
हूया है ॥ हे रामजी इह जो द्रूप है । सो सब आत्माहीं स
पधारते हैं ॥ पर द्रूप सब नअणामी है ॥ अरु आत्मा अ
विनाशी अणामतें रहित अच्युत है ॥ हे रामजी इह
हैं से जो सूर्य चंद्रमा इंद्र ते आदि सब विनाशरूप हैं । अ
रु वद्य सुमेरादिक पर्वत हैं ॥ सो सब नाश हो जावें
गे । जेते कछु नाना भाव रूप पदार्थ हैं । सो सब ना
श हो जावेंगे । सब माया मात्र हैं ॥ रहणें किसी नहीं
ऐसे विचार कर इन विषे हर्ष शोक मत कर । स
मता भाव विषे स्थित हो ॥ हे रामजी जो असत है । सो
सत की न्याई पडा भासता है ॥ अरु जो सत है । सो अ
सत की न्याई भासता है ॥ विचार करके यथार्थ रूप
आत्मा विषे स्थित होवो ॥ जो पुरुष विवेकी हैं । सो
मुक्तिरूप हैं ॥ हे रामजी जिसका मन क्षय हूया है
तिसकों तूं मुक्तिरूप जान ॥ अरु जिसका मन क्षय
नहीं हूया । सो बंधमान है ॥ हे रामजी दुःखों का जो बी
ज है । सो चित्त है । जब लग चित्त है । तब लग दुःख है
जब चित्त नष्ट होवे ॥ तब दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रा
मजी जब आत्मज्ञान होता है । तब चित्त का अभा
व हो जाता है ॥ अरु सब दुःख नष्ट हो जाते हैं । केवल
शांतिरूप हो जाता है ॥ अरु जनकादिक जो जीवन्मु
क्ति हूए हैं । सो व्यवहार विषे जीवन्मुक्ति होकर वि
चरते हैं ॥ सदा शीतल चित्त रहे हैं । तांतें तूं भी विवेक
के र चित्त कों नष्ट कर । अरु जीवन्मुक्ति होकर विचि
र । हे रामजी मुक्ति भी दो प्रकार की है । एक जीवन
मुक्ति दूसरी विदेहमुक्ति है । जो पुरुष सर्व पदा
र्थों विषे असंसक्त है ॥ अरु मन शांति भाव कों

गाप्त हूया है। सो जीवन्मुक्ति कहीता है। अरु जिस का संसार कूं पदार्थों तें स्नेह नष्ट भया है। अरु भवनारक कर्त्ता दृष्ट आवता है। ता तीउत्तम सीतल चित्त जीवन्मुक्ति है। जो पुरुष सर्व नावा नाव पदार्थों कों त्याग कर केवल अद्वैत पदार्थ कों प्राप्त हूया है। अरु सरीरादि कों की क्रिया दृष्ट नहीं आवती सो विदेह मुक्ति कहीता है। हे रामजी जिनकों आत्मा[illegible] कर आत्म विचार कीया है। तिन कों संसार गोपद की न्यांई हो जाता है। सो पुरुष रागद्वेष कर रंजित नहीं होता। हे रामजी जिस कं कछु प्राप्त होता है। सो अपने पुरुषार्थ कर प्राप्त होता है। तां तें अवर यतन त्याग कर आत्म पद पावने का यतन कर॥ ॥इति उपशम प्रकर्णे जीवन्मुक्ति विचारो नाम सर्गः॥ ६०॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी जेते कछु जगत जाल हैं। सो सर्व आत्म बल का आभास रूप हैं। अज्ञान कर के स्थित नासते हैं। अरु विवेक कर शांति हो जाते हैं। ब्रह्म रूपी समुद्र विषे जगत रूपी तरंग पडे उठते हैं। तिन की संख्या करणे कों कोऊ समर्थ नहीं। आत्म रूपी सूर्य की जगत रूपी किरणें हैं। हे रामजी असम्यक दर्शन ही जगत का कारण है। अरु सम्यक दर्शन कर नष्ट हो जाता है। जैसे असम्यक दर्शन कर मारुस्थल विषे जल भासता है। अरु सम्यक दर्शन कर अभाव हो जाता है। हे रामजी संसार रूपी घोर समुद्र है। सो शास्त्रों की युक्ति अरु आत्म अभ्यास विनां तरणां कठिन होता है। तिस विषे जीव रूपी नदीयां प्रवेश करती हैं। जन्म मरण (रूपी) चक्र का वर्त्त पडे उठते हैं। जो इन कों तर जाते हैं

तेईपुरुषहैं॥ हेरामजी जबजहाजअरुमलाहके
होतेंभीतरेनहीं॥ तबडूबनेकोंअधिकारहै। मानुषस
रीरविषेजोबुधिहै॥ सोजहाजहै। संतरूपीमलाह
हैं। इनकोंपाकरजोनहींतरतेसंसारसमुद्रकोंति
नकोंअधिकारहै॥ ऐसेंअगपारसमुद्रकोंजोलंघगा
याहै॥ तिसकेंपुरुषकहीताहै। हेरामजी जिसपुरु
षविचारकरकैंबुधिकोंआतमतत्वविषेलगायाहै
सोसंसारकोंतरजाताहै॥ जिनकोंआत्मपदकाअ
भ्यासभयाहै॥ सोतरणेकोंसमर्थहोताहै॥ हेराम
जीतेंज्ञानवानहैं॥ परमबोधककैंविचार। तब
संसारसमुद्रकोंतरजावैंगा॥ तूंतोबोधवानहै। तूंरे
पाछेंतेरस्वभावकोविचारकरकेसंसारकोंकेते
तरजावैंगे॥ हेरामजीजिसकोंज्ञानलक्ष्मीप्राप्तभ
ईहै॥ सोआत्मअभ्यासकरपूर्णभयाहै। सोअतीतत्व
समबुधिप्रकाशरूपहै॥ ॥इतिउपशमप्र
करणेसंसारसागरतरणयुक्तवर्णनंनामसर्गः
॥६१॥ श्रीरामोवाच॥ हेमुनीश्वरसंक्षेपतेंतत्व
वेत्ताकेलक्षणमुजकोंकहो। जिनकोंआत्मतत्व
काचमत्कारहूयाहै। ऐसाकौनहै। जोतुमारेवच
नसुणतेंतृप्तहोवे॥ श्रीवसिष्ठोवाच। हेराम
जीमेंजीवन्मुक्तिकेलक्षणतुजकोंबहुतप्रकार
कहेहैं॥ बहुडीसुण। हेमहाबाहु ज्ञानवानसंसा
रकोंसुषुप्तकीन्याईजानताहै। अरुसबईषणा
उसकोनष्टहोजातीहै। अरुसबजगतकोंआत्मस्व
रूपकरदेखताहै॥ अरुआत्मानंदविषेघर्महोताहै
ऐसाजोसम्यकदर्शीज्ञानवानउदारात्माहै॥ सोजं
त्रीकीपुतलीवतचेष्टाकरतीहै। जैसेजंत्रीकीपुत
लीअभिमानतेंरहितचेष्टाकरतीहै। तैसेंज्ञानवा

नसर्वक्रियाकर्त्ताअलेपरहताहै॥ बीतीकोंचितवता
नहीं॥ अरुअविष्यतकीआसानहींराखता॥ अरुव
र्त्तमानविषेअलेपरहताहै॥ अरुआत्माकीओरस
दाजागतरूपहै॥ अंतरतेंसर्वकात्यागकीयाहै॥ अ
रबाह्यतेंपडावर्त्ताहै॥ रागद्वेषकिसीविषेनहींक
र्त्ता॥ हेरामजीजिसकामनसंसारभ्रमतेंमुक्तिहूया
है॥ अरुसमरसआत्मभावविषेस्थितभयाहै॥ तिस
कोंकिसीपदार्थविषेरागद्वेषनहींउपजता॥ हेराम
जीसर्वकोंसर्वप्रकारग्रहणकर्त्ताहै॥ अरुतिरेक
रकछुग्रहणनहींकीया॥ जैसेबालिककोंग्रहण
त्यागकीबुधिकछुनहींहोती॥ तैसेज्ञानवानकों
सर्वकार्यविषेरागद्वेषबुधिनहींफुर्त्ती॥ सर्ववि
षेअनस्यूतआत्मतत्वकोंदेखताहै॥ हेरामजीसू
र्यचाहीतलेहोजावै॥ अरुचंद्रमाउष्णहोजावै॥ अ
ग्निअधःकोंधावै॥ तोभीज्ञानवानकोंआश्चर्य
नहींभासता॥ उहजानताहै॥ जोसवेतन्नकीचिदा
त्माकीपडीफुर्त्तीहै॥ सर्वहर्षशोकतेंरहितअपने
आपविषेस्थितहोताहै॥ जैसेसरतकालकाआ
काशनिर्मलहोताहै॥ तैसेज्ञानवाननिर्मलभाव
सोंस्थितहै॥ जैसेआकाशविषेअंकुरनहींहोता
तैसेउसविषेरागद्वेषनहींहोता॥ हेरामजीऐसा
जोसम्यकदर्शीपुरुषहै॥ सोरागद्वेषतेंरहितहै
उसकोंजगतजालऐसेभासतेहैं॥ जैसेजलविषे
तरंगहोतेहैं॥ जैसेउहजाणताहै॥ तैसेतुमभीजान
करजगतविषेविचरो॥ हेरामजीजैसेस्वप्नेकेनिमे
षविषेस्वप्नसृष्टिफुरआवतीहै॥ अरक्षणविषे
नष्टहोजातीहै॥ तैसेजेतीककछुइच्छाअनिछासुख
दुखविकारहैं॥ सोसबमनविषेफुर्त्तेहैं॥ जहांमन
होताहै॥ तहांविकारभीभासतेहैं॥ जहांचित्तकाअ

मनरूपी

नावहै। तहां विकारोंका नीअभावहै। जबलगचित्त
फुरताहै। तबलगजगतभ्रमहोताहै। जबविचा
ररूपीसूर्यकरबरफकापुतलागलगया। तबज
गतरूपीभ्रमनष्टहोजाताहै। तातेहेरामजीसंसार
केअभावकीभावनादृढकरो। अरुस्वरूपकीअभ्या
सकरो। जैसेसरत्कालकाआकाशनिर्मलहोताहै
तैसेकलनांकोत्यागकरमहात्मापुरुषनिर्मलहो
ताहै॥ ॥इतिउपशमप्रकर्णेजीवन्मुक्तिवर्न
नंनामसर्गः॥ ७२ ॥श्रीवसिष्टोवाच॥ हेरामजी
जैसेजलविषेद्रवताकरकेचक्रावर्त्तभासतेहैं॥ तैं
सेचित्तकेफुर्णेकरअसतहीजगतसतहोभासता
है॥ जैसेबदलोंकेचलणेकरचंद्रमाचलताभास
ताहै॥ तैसेचित्तकेफुर्णेकरजगतहोभासताहै॥
॥श्रीरामोवाच॥ हेब्राह्मणजिसकरचित्तफुर्ता
है। अरुजिसकरअफुरहोताहै॥ सोप्रकारकहो
जोतिसकाउपावकरों॥ श्रीवसिष्टोवाच॥ हेरा
मजीजैसेबरफविषेशीतलताहोतीहै। अरुतिलों
विषेतेलहोताहै॥ जैसेपुष्पोंविषेसुगंधहोतीहै।
तैसेचित्तविषेफुर्णेजगतहोताहै। अरुचित्तके
अफुरफुरणएकरूपहैं। दोनोंविषेजबएकनष्ट
होजावे। तबदोनोंनष्टहोजातेहैं। जैसेशीतकेन
ष्टहूए बरफस्वेततानष्टहोजातीहै। तैसेएकके
नष्टहूए दोनोंनष्टहोतेहैं। चित्तकेनाशकोदोक्र
महैं। योगअरुज्ञान योगकहीयेचित्तकानिरोध
करणेकां। अरुज्ञानकहीयेसम्यकविचार॥ श्रीरा
मोवाच॥ हेभगवनवृत्तकानिरोधकिसयुक्तक
रहोताहै॥ प्राणअपानपवनकारोकणेकैसेहो
ताहै। जिसयोगकरअनंतसुखसंपदाकोप्राप्त
होताहै॥ श्रीवसिष्टोवाच॥ हेरामजीइसदेह

विषे जो नाडी हैं ॥ तिन विषे प्राण वायु फिरती है ॥ जैसे पृ
थ्वी ऊपर नदीयों कु जल फिरता है ॥ तैसे प्राण वायु
एक है ॥ स्पंद के वश ते नाना प्रकार की विचित्र क्रिया
कों प्राप्त होती है ॥ तिस कर के अपानादिक संज्ञा कों पाव
ती है ॥ योगेश्वर कल्पते हैं ॥ जैसे पुष्पों विषे सुगंध अभेद
रूप होती है ॥ जैसे बरफ विषे शीतलता अभेद होती है
आधार आधेय एकरूप होती है ॥ तैसे प्राण अरु चित्त
अभेद रूप हैं ॥ जब अंतर प्राण वायु फुरती है ॥ तब चित्तक
ला फुर आवती है ॥ फुर कर संकल्प के सन्मुख होती है
तिस का नाम चित्त कहीता है ॥ जैसे जल डबी नृत होता है
सो तिस सों चक्र आवर्त फुर आवते हैं ॥ तैसे प्राणों के फुरणे
कर चित्त फुर आवता है ॥ चित्त के स्पंद का कारण वायु है
जब प्राणों का निरोध होता है ॥ तब मन भी शांति हो जाता
है ॥ अरु मन के लीन हूए संसार भी लीन हो जाता है ॥ जैं
से सूर्य के प्रकाश के अभाव हूए रात्रि कों मानुषों का व्य एरुजो
वहार शांति हो जाता है ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन्
दिनरात्रि निरंतर गमन आगमन पडे करते हैं ॥ देह रू
पी गृह विषे प्राण वायु गमन न पडी करती है ॥ तिस प्राण
वायु का रोकणा किस प्रकार होता है ॥ श्रीवसिष्ठोवा
च ॥ हे रामजी शास्त्रों का विचार अरु संतजनों का संग अ
रु विषयों ते वैराग्य जो अभ्यास इन कर होता है ॥ प्रथम
जगत विषे असत बुधि करणी ॥ अरु वांछित जो अपणा
इष्ट देव है ॥ तिस का ध्यान करणा ॥ जब चिरकाल ध्यान क
र्ता है ॥ तब एक तत्व का घन अभ्यास होता है ॥ तिस कर
प्राणों का स्पंद रोक्या जाता है ॥ रेचक पूरक कुंभक जो प्रा
णायाम है ॥ तिस का जब अखेद चित्त होकर दृढ अभ्या
स कर्ता है ॥ अरु एक ध्यान संयुक्त होता है ॥ तिस कर भी
प्राणों का स्पंद रोक्या जाता है ॥ उँकार का उच्चार करणा ऊ
र्ध तिस ते सूक्ष्म धुन होती है ॥ प्रथम शब्द वत दीर्घ धुन सों हो
ता है ॥ सूक्ष्म धुन शेष रहती है ॥ तिस विषे चित्त की वृत्ति

१५३

153

रूप

कोलगावणा ॥ तबसुषुप्तरूप अवस्थाविषेसंवितजो
वतहै ॥ तद्रूपहोजातीहै ॥ तबप्राणस्पंदरोक्याजाती
है ॥ अरऐसेकेप्राणायामकरताहै ॥ तबतिसकेअ
भ्यासकरविरक्तप्राणपवनजोहै ॥ सोमूर्त्तताव
आकाशविषेजालीनहोताहै ॥ तबप्राणरोक्याजा
ताहै ॥ अरकुंभककर्केप्राणवायुकेंअभ्यासकेब
लकरस्थिरतेनकर्णे ॥ प्राणवायुरोकीजातीहै ॥ अ
रतालुकेमूलसाथयतनसोंजिह्वाकोंतालुघंटासा
थलगावणा ॥ इसखेचरीमुद्राकरवायुऊर्ध्वरंध्रकों
जातीहै ॥ ऊर्ध्वरंध्रविषेगयाभीप्राणवायुकास्पंदरो
क्याजाताहै ॥ अरजोबाद्वादशअंगुलपर्यंतनासकाके
अग्रविषेअपानरूपचंद्रमाकानिर्मलस्थानआ
काशविषेहैं ॥ तिसकादेखणाजिउकुतिंउहोवे ॥ त
बभीप्राणस्पंदरोक्याजाताहै ॥ तालुकेबीद्वादशअंगु
लऊर्ध्वजोरंध्रकाअभ्यासहोवे ॥ तिसकेअंतवि
षेजबप्राणोंकोंलगावे ॥ तिससंवितविषेतबप्रा
णोंकाफुरणांनष्टहोजाताहै ॥ अरजोनैंणोकेमध्य
कंर त्रिकुटीविषेअवरगकाशकोंत्यागंतिसविषेचे
तनएकलारहतीहै ॥ तहांवृत्तकेजोडेंवृत्तिकेजो
डेतेंप्राणकलारोकीजातीहै ॥ अरजोवासनोंकें
त्यागकरे ॥ अरहृदयाकाशविषैचैतन्यसंवितको
ध्यानकरे ॥ तबभीचिरकालकेअभ्यासकरप्राण
स्पंदरोक्याजाताहै ॥ श्रीरामोवाच ॥ हेभगवनज
गतकेभूतोंकाविदाकिसकोंकहतेहैं ॥ जिसमहा
आदर्शविषेसर्वपदार्थप्रतिबिंबितहोतेहैं ॥ श्री
वसिष्टोवाच ॥ हेरामजीजगतकेभूतोंकेदोविदे
हैं ॥ एकविदाग्रहणकर्लेयोग्यहै ॥ एकत्यागणे
योग्यहै ॥ देहविषेद्वादशअंगुलनाभितेंजोऊर्ध्वहैसो
त्यागणेयोग्यहै ॥ परछिन्नभावकर्के देहकेएक

स्थान विषे स्थित है॥ तिस विषे जो संवित आत्मा ज्ञान
स्वरूप अनुभव करके प्रकाशता है॥ सो स्वरूप ग्रह
ण करने योग्य है॥ सो ई अंतर बाह्य व्यापर हा है॥ अरु
अंतर बाहिर ते रहित भी है॥ जो प्रधान रिदा है॥ अर
सर्व पदार्थों का प्रतिबिंब आदर्श है॥ सर्व संपदा का आदरशा
भंडार है॥ सर्व जीवों का संवित रिदा है। एक अंग का ना
मरिदा नहीं। जैसे जल विषे एक पत्थर पुरातन पडा
होवे। सो जल नहीं हो जाता॥ तैसे संवित मात्र के निक
ट संवित मात्र तो नहीं हो जाता॥ इह जडरूप है॥ आत्मा
चैतन्य आकाश है॥ सो इह प्रधान रिदा है॥ तांते बलक
के संवित मात्र की ओर चित्त को लगावो॥ तब प्राण स्पं
द रोक्या जावेगा॥ हे रामजी इह जो प्राणों का रोकणा मैं तु
ज को कहा है॥ तिसी प्रकार अभ्यास करे। तब प्राणों
का निरोध होता है॥ गुरों के उपदेश ते अभ्यास करे।
तब सिध नहीं होता॥ जिनको अभ्यास करके निरोध सि
ध भया है॥ सो कल्याणमूर्ति है॥ हे रामजी अभ्यास क
के प्राणायाम होता है॥ अरु वैराग्य की दृढता करके वा
सना का निरोध होता है॥ अर्थ इह जो वासना रोकी जा
ती है। जब दृढ अभ्यास करे॥ तब चित्त अचित्त हो जाता
है। हे रामजी नकुटी ते द्वादश अंगुल पर्यंत जो वायु जा
ती है॥ तिसका वारंवार अभ्यास करीता है॥ तब क्षीण वासना
हो जाती है॥ अरु खेचरी मुद्रा तालु संग साथ जिह्वा लगाय
कर जो अभ्यास करे॥ तो भी प्राण रोके जाते हैं॥ इस प्र
कार चित्त की व्याकुलता जाती रहती है॥ परम उपशम
प्राप्त होता है॥ तब उह पुरुष आत्मारामी होता है॥ सब
शोक दूर हो जाते हैं॥ अंतर आनंद प्रकाशता है॥ तांतें
तैं भी अभ्यास कर। अभ्यास करके प्राण स्पंद क्षय हो जा
वेगा॥ अरु परम शांति को प्राप्त होवेंगा॥ तिसके पाछे
जो पद है॥ सो निर्वाण रूप है॥ हे रामजी जब प्राण स्पंद

154 मिटजाताहै ॥ तबचित्तभीस्थितहोजाताहै ॥ जबचित्तस्थि
तहूया ॥ तबवासनांनष्टहोजाताहै ॥ जबवासनानष्टहू
ई ॥ तबमोक्षकीप्राप्तहोतीहै ॥ जबलगचित्तवासनांकर
लपेटाहै ॥ तबलगजन्ममर्णकोंदेखताहै ॥ जबमनवा
सनांतेंरहितहोताहै ॥ तबमोक्षभागीहोताहै ॥ हेरामजीप्रा
णवायुकोंरोककरवासनांतेरहितहोवो ॥ तबजहांते
रीइछाहोवेतहांविचरो ॥ तुजकोंबंधनकछुनहोवेगा
जबप्राणफुर्तेहैं ॥ तबमनउद्वेगवानहोताहै ॥ जब
मनउद्वेगवानहूया ॥ तबसंसारभ्रमहोताहै ॥ अरुज
बवासनांतेरहितमनक्षीणहूया ॥ तबसंसारभ्रमन
ष्टहोजाताहै ॥ हेरामजीजबमनतेंसंसारकीवासनामि
टजातीहै ॥ तबअष्टपदकोंपावताहै ॥ जिसतेंइहस
र्वहै ॥ अरुजोइहसर्वहै ॥ जिसतेंनसर्वहै ॥ अरुजोनसर्व
है ॥ जिसबिबेइहनसर्वहै ॥ ऐसाजोनिर्गुणतत्वहै ॥ सोस
र्वकलनांकेत्यागतेंप्राप्तहोताहै ॥ सोआत्मानिर्विकल्प
निर्गुणस्वरूपहै ॥ अविनासीहै ॥ आत्मातेंदूसराकोउ
नहीं ॥ किसकाद्रष्टांतदीजीये ॥ जेतेकछुस्वादुहैं ॥ तिन
कोंस्वादुकर्त्ताउहीहै ॥ अरुजेतेकछुप्रकाशहैं ॥ तिनको
प्रकाशकर्त्ताउहीहै ॥ सर्वकलनांकाकलनारूपउहीहै
जेतेकछुपदार्थहैं ॥ तिनसभन्योंकाअधिष्ठानरूपउही
है ॥ ऐसाजोरसरूपचंद्रमाहै ॥ सोचित्तरूपीआवर्णक
रकेंअप्राप्तहोताहै ॥ अरुसर्वपदार्थोंकीसीमाउही
है ॥ जबतिसविबेकबुधिवानस्थितहोताहै ॥ तबजीवन्मु
क्तिकहीताहै ॥ अहंत्वंकलनांतिसकीसननष्टहोजा
नाव तीहै ॥ सर्वव्यवहारविषेसमरहताहै ॥ ऐसाजोमुक्तिमा
नहै ॥ सोपुरुषउत्तमहै ॥ ॥ इतिउपशमप्रकर्णेजी
वन्मुक्तिज्ञानबंधवर्ननंनामसर्गः ॥ ७३ ॥ श्रीरामो
वाच ॥ हेप्रभोयोगकीयुक्ततोतुमकही ॥ जिसकरचि
त्तउपशमहोताहै ॥ अबसम्यकज्ञानकालक्षणभी
कृपाकरकहो ॥ श्रीवसिष्टोवाच ॥ हेरामजीइहजो

निश्चेबुधिहे॥ जोआत्माअनंतरूपहे॥ आदिअंततेंर
हितहे॥ प्रकाशरूपपरमात्माहे॥ इसनिश्चेकोंबुधी
श्वरसम्यकज्ञानकहतेहैं॥ जबसम्यकज्ञानहोताहे
तबघटपटादिकपदार्थसभआत्मरूपभासते
हैं॥ ऐसाजोदेखणाहे॥ सोईसम्यकज्ञानहे॥ सर्वात्मा
नितशुधपरमानंदस्वरूपअपलोआपविषेस्थित
हे॥ ऐसाजोनिश्चाहे॥ सोसम्यकज्ञानहे॥ हेरामजीआ
त्मतत्वअपलोआपविषेस्थितहे॥ तिसविषेद्वैतकल
नाकछुनहीं॥ जोसर्वचिदाकाशहे॥ तोबंधक्याकही
ये॥ अरुमोक्षक्याकहीये॥ ऐसाजिनकोंज्ञानहे॥ तिस
कोंब्रह्मातेंआदिचीटीपर्यंतसभआत्माभासताहे॥
जोसभकेभावअभावविषेज्योंकारहताहे॥ तुमतिसी
परायणहोवो॥ जोअविनाशीअनुभवतत्वहे॥ तिस
विषेस्थितहोवो॥ तुहीअनुभवसत्ताजगतरूपहोभा
सतीहे॥ जन्ममरणरूपविकारहोभासतेहैं॥ सोएकआ
त्मतत्वअपलोआपविषेपडाफुरताहे॥ जैसेजलविषे
तरंगफुरतेहैं॥ तैसेचित्तकेफुरणेकरजन्ममरणविका
रभासतेहैं॥ सोआत्मातेंइतरकछुनहीं॥ आत्मतत्वअ
पलोआपविषेस्थितहे॥ जबचित्तस्थितहोताहे॥ तब
बडउदीननहीहोता॥ जोपुरुषविचारवानहैं॥ सोभो
गोंकरचलायमाननहीहोते॥ अरजोअज्ञानीहैं॥ ति
नकोंभोगग्रासलेतेहैं॥ जैसेजलतेंरहितमछीकोब
गलाग्रासलेताहे॥ तैसेसम्यकज्ञानवानकोंभोगच
लानहीसकते॥ ॥इतिउपशमप्रकरणेसम्यकज्ञा
नलक्षणवर्ननंनामसर्गः॥ ८४ ॥ श्रीवसिष्टोवा
च॥ हेरामजीजोविवेकीपुरुषहैं॥ सोनिकिष्टआए
भोगोंकीभीइछानहीकर्ते॥ इनविषेइछातबहोती
हे॥ जबदेहाभिमानहोताहे॥ जबदेहाभिमाननिवृ
तहूया॥ तबइछाकैसेहोवे॥ हेरामजीममताकरदु
खहोताहे॥ इंद्रीयोंकेइष्टविषेसुखमानताहे॥ अ

जो

६ड

श्रीरामजीकोभोगग्रासलेतेहैं श्र ८

लिष्ट विषे दुखमानता है ॥ जैसे गर्दभ चिकड विषे डू
बे ॥ अरु राजा कहे मेरे नगर का गर्दभ चिकड वि
षे डूब्या है ॥ जैसे ममत्वमान कर शोकवान होवे ॥
तैसे इंद्रीयों विषे ममत्व करके इह दुख पावता है ॥
हे रामजी इह इंद्रीयां तो अपणे अपणे विषय
को ग्रहण कर्त्ती हैं ॥ अरु इन विषे इह जीव तपा
यमान होता है ॥ सो इह मूर्खता है ॥ मार्ग विषे चल
तें किसी विषे प्यार हो जाता है ॥ सो भी दुख पाव
ता है ॥ अरु जो देह विषे ममत्व करे तिसकों दुःख
किंउ न होवे ॥ जो इंद्रीयों के भोगों कों सुख जाण
कर भोगेगा ॥ सो अवश्य मेव दुख पावेगा ॥ जैसे ने
त्र दुष्ट कर आकाश विषे दूसरा चंद्रमा भासता
है ॥ तैसे मूर्खता करके इंद्रीयों के धर्म अपणे वि
षे मानते हैं ॥ अरु जो साक्षीभूत होकर सर्व कर्मों
विषे वर्त्तते हैं ॥ तिनकों दुख कछु नहीं होता ॥ जैसे
जल विषे तरंग फुर्ते दृष्ट आवते हैं ॥ तैसे आत्मा
विषे अहंकारादिक दृष्ट आवते हैं ॥ वास्तवतें क
छु नहीं ॥ हे रामजी जिन पुरुषों कों आत्म विचार न
या है ॥ सो ऐसे विचार कर्त्ते हैं ॥ जो हमकों दुख का
कारण चित्त था ॥ सो चित्त नष्ट भया है ॥ तब परम सु
ख कों पावते हैं ॥ जैसे जेवडी विषे सर्प भ्रम नाश हू
ए तें जेवडी जानी तब सर्प भै दुख नष्ट होता है ॥ तैसे
चित्त के नष्ट हूए कोई क्रिया दुख नहीं देती है ॥ चि
त्त तुझ मिथ्या मुझ कों दुख दीया था ॥ अब हम जा
ण्या है ॥ जो तूं मिथ्या रूप हैं ॥ भ्रम होते चित्त दुख दी
या है ॥ जैसे पिछाँवां वैताल होकर बालक कों दु
ख देता है ॥ तैसे तूं मिथ्या रूप सत कों दुख देता है
हे चित्त तूं तब लग देता हैं ॥ जब लग आत्मा स्वरू

पकों नहीं जाण्या ॥ जब आत्मस्वरूपका ज्ञान भया
तब तूं कछूं दृष्ट न आवैंगा ॥ तूं तो मायामात्र जडमू
र्ख हैं ॥ अब मैं अपणा पूर्वला स्वरूप पाया है ॥ अब
मेरी देह विषे शुभ विचार संतोषादिक गुण आन
गा प्रकट हूए हैं ॥ हे चित्त पिशाच ई हां तेरे बसणे की ठौ
ड नहीं ॥ तूं जातारहु ॥ अब विवेक रूपी मंत्र कर मय
तुजकों निकास्या है ॥ अब कल्याण रूप हूया हों ॥ अ
ब तेरा बलक छू नहीं चलता ॥ मैं केवल भाव विषे स्थि
त हूया हों ॥ आगैं मैं तुजकों जगावता था ॥ आपतें तूं
ज्ञावरूप था ॥ अब मैं आत्म विचार कर तुजकों वश
कीया है ॥ तब शांति वान हूया हों ॥ ममता अरु मोह मे
रा अब नष्ट भया है ॥ इनको कलत्रँ भया है ॥ अब मैं मीनष्ट
नित निर्मल विकल्पतें रहित चेतन आत्मा हों ॥ मेरा मु हों
जकों नमस्कार है ॥ ऐसा जो मैं निर्गुण आत्मा चेतन्य
मेरा मुजकों नमस्कार है ॥ न कोऊ आत्मा है ॥ न अना
त्मा है ॥ न अहं है ॥ न त्वं है ॥ मुज विषे किसी शब्दका प्रवे
श नहीं ॥ ऐसा निराकार निर्विकार हों ॥ मेरा मुजकों न
मस्कार है ॥ निर्मल आत्मा आकाश रूप अपणे आप वि
षे स्थित हों ॥ ऐसा जो मैं हों ॥ मेरा मुजकों नमस्कार है ॥ स
र्व हों ॥ सर्वगति सूक्ष्म भाव अभाव तें रहित स्थित हों ॥
तातें मेरा मुजकों नमस्कार है ॥ पृथ्वी पर्वत आकाश
समुद्रादिक जगत मैं नहीं ॥ अरु सर्व मैं ही हों ॥ तातें मे
रा मुजकों नमस्कार है ॥ अब मैं सर्व भावकों प्राप्त भया
हों ॥ मन न भाव नष्ट भया है ॥ अजर अमर हों ॥ मेरे अक
र्क करसन प्रकाशते हैं ॥ तातें मेरा मुजकों नमस्कार
है ॥ ॥ इति उपशम प्रकर्णे चित्तउपशामयोगो
नाम सर्गः ॥ ८५ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इस तत्ववेत
प्रकार विचार कर आत्माकों सम्यक ज्ञान रूप कर
जाणते हैं ॥ तूं भी इस विचारकों आश्रय करके आत्म पद
कों प्राप्त हो ॥ इह जगत सब आत्मस्वरूप है ॥ ऐसे जाण

कर चित्तसों जगतकी सतता त्यागकर ॥ जब ऐसे वि-
चारेंगा ॥ तब चित्त कहां जो चित्त अवस्तुरूप दिखाई
(अविद्याका कारय) देताथा ॥ सो चित्त अविद्यक मायामात्र है ॥ जैसे आका
श के फूलके कहणे मात्र हैं हैं नहीं ॥ तैसे चित्त कहणे
मात्र है ॥ अविचारकर के पड़ा दिखाई देता है ॥ विचार
वानकों चित्त असत नासता है ॥ काहेते जो अविचारि
त सिध है ॥ अब चित्त के नष्ट हूए इन पदार्थों की भाव
ना भी नष्ट भई है ॥ संसे के समूह मेरे नष्ट भए हैं ॥ अब
विगतज्वर स्थित हों ॥ मैं निरानास आदि अंत तें रहि
त ऐसा जो मेरा अपणा आप है ॥ तिस विषे मैं स्थित
हों ॥ जब लग मैं आपकों देह जानताथा ॥ तब लग दु
(प्रमाणतें रहित) खीथा ॥ अब मैं अपणे अमित आकारकों प्राप्त भया
हों ॥ आगे मैं चित्तरूपी वेताल जकों आपही जगावता
था ॥ अरु आपही दुखी होताथा ॥ अब विचाररूपी मं
त्र कर के नष्ट कीया है ॥ अरु निर्णय कर के अपणे स्वरू
पकों प्राप्त भया हों ॥ हे रामजी जिन पुरुषकों इह निश्च
प्राप्त भया है ॥ सो रागद्वेषतें रहित स्थित है ॥ सर्व कर्मों
का कर्त्ता अलेप रहता ॥ अपणे आनंद कर अनंदी
स्थित होता है ॥ ॥ इति उपशम प्रकर्णे चित्तस
माप्तपादनं नाम सर्गः ॥ ७६ ॥ अथ वसिष्ठोवा
(इहविचार) च ॥ हे रामजी संवर्त वेदनें कीया है ॥ पूर्व विंध्याच
ल पर्वत पर कहाथा ॥ इस विचार कर उह आत्मपद
विषे स्थित हूया है ॥ इसी दृष्टकों आश्रे कर के आत्म
विचार परायण हो ॥ हे रामजी इस उपर एक पर्म दृ
ष्ट अरु सुण ॥ जिस प्रकार मुनीश्वर वीतहव्य विचा
र कर निर्विकल्प स्थित हूया है ॥ अथ कथा वीत
हव्यकी ॥ वीतहव्य नाम एक रिषीश्वर था ॥ तेजवा
न सो संसार की आधि व्याधतें वैराग्य कर्त्ता भया ॥ अ
र पर्वतों की कंदरा विषे विचरणे लागा ॥ जैसे सूर्य
सुमेर के चौफेर फिर्ता है ॥ तैसे विचार कर कंदरा के

चौफेर फिरे ॥ संसार कों दुखरूप जान कर निर्वि
कल्प समाधि की इछा करी ॥ केले के पत्रों की कु
टी बणा बैठा ॥ जैसे भमरा एक कमल कों त्याग
कर दूसरे कमल पर जा बैठे ॥ तैसे उह गोरख कुटी
कों त्याग कर स्याम कुटी विषे जा बैठा ॥ मृग छाला
विछा पद्मासन बांध बैठा ॥ शांति के निमित्त स्थि
त भया । हाथों कों तले कीया । मुख कों ऊर्ध की
या ॥ ग्रीवा कों सूधा करके स्थित भया ॥ अरु इंद्री
यों की वृत्त कों रोक त भया ॥ अरु मन की वृत्ति
कों भी रोक लीया ॥ जिस कर मन विषयों कों ग
हण कर्ता है ॥ सो पांच ज्ञानेंद्रीयां हैं ॥ कहा रे चित्त
तूं किस निमित्त विषयों की ओर धावता हैं ॥ इह तो
आप जड असत रूप हैं ॥ भ्रांति मात्र हैं ॥ तूं इनक
र शांतिवान कैसे होवेंगा ॥ जिउ जिउ इन के अर्थी
कों चितवेंगा ॥ तिउ तिउ दुख पावेंगा ॥ हे मन इह तो
सभ जड असार रूप हैं ॥ अरु तूं भी जड हैं ॥ कर्तृत्व
का अभिमान किउं कर्ता हैं ॥ सभ का कर्ता चिदा
नंद आत्मा भगवान है ॥ सदा साक्षीभूत है ॥ तूं किं
उ वृथा तपायमान होता हैं ॥ जैसे सूर्य सभ क्रिया
कों करावता साक्षीभूत है ॥ तैसे आत्मा सभ क्रि
या कों करावता साक्षीभूत है ॥ जैसे अज्ञान करके
जेवडी विषे सर्प भासता है ॥ तैसे आत्मा विषे जग
त हो भासता है ॥ जैसे आकाश अरु पाताल का सं
बंध कछु नहीं ॥ जैसे सूर्य अरु तम का संबंध कछु
नहीं ॥ तैसे आत्मा अरु इंद्रीयों का संबंध कछु न
हीं ॥ आत्मा निराकार साक्षीभूत है ॥ हे चित्त तूं मह
मूर्ख हैं ॥ विषयरूपी चर्वण विषे तूं चतुर हैं ॥ तेरे
साथ हम कों प्रयोजन कछु नहीं ॥ हे मूर्ख मन तूं
अहं अहं जो पडा कर्ता हैं ॥ सो मिथ्या है ॥ इह मैं जा

नताहैं॥ जोजन्ममरण विकारोंकोंतुजहीं प्राप्तकी
या है॥ अरु मैंतो केवल चिदानंदस्वरूप हों। मिथ्या
अहंकारकर्कें जीवत्वभावकों प्राप्त हूया था॥ अ
ब मैं स्वरूप विषे जाग्या हों॥ सदा अनुभवस्वरूप
कर जानताहों॥ हे मन तेरे विषे कर्त्तृत्वजो होता है।
सो मैं आत्मरूपकी सत्ताहै॥ तूं आपतें जडरूप है।
जैसे खड्ग तें हनने नहोताहै॥ सो आपतें नहीं होता। पु
रुषकी सत्ताकर होताहै॥ तैसे कर्त्तृत्व भोक्तृत्व मेरी
शक्ति कर होताहै॥ मेरी सत्ताकों पाकर तुम अपनी
अपनी क्रियाकर्ते हो॥ तुम मिथ्यारूप हो॥ अरु मैं
केवलज्ञानरूप अपने आप विषे स्थित हों। निरा
मय अजर अमर नित्य शुद्ध परमानंदस्वरूप हों। मैं
ही नानारूप होकर भासताहों॥ अरु कदाचित द्वै
तभावकों नहीं प्राप्त भया॥ सदा अपने आप विषे
स्थित हों॥ जैसे जल विषे तरंग बुद्बुदे भासते हैं।
तैसे सर्वपदार्थ मेरे विषे भासते हैं॥ सो मैं तें इतर
नहीं। चितवनातें रहित तूं चिन्मात्रभावकों प्राप्त हो।
जबतूं चिन्मात्रभावकों प्राप्त होवेंगा॥ तबतूं जाले
गा॥ जो नदेह है॥ नजगत है। सर्वब्रह्मही है। ब्रह्मही ऐ
से भासताहै॥ वस्तुतें अहंत्वं आदिक कलनाको
ऊ नहीं॥ आत्मतत्त्व सर्व विषे व्यापक है॥ द्वैत कछु न
हीं सर्वत्रही है॥ तातें भिन्न अहंत्व कलनाकैंसे होवे
तातें तूं कलनाको त्यागकर अपने आप विषे स्थि
त हो॥ जहां सर्वकी शांति होजाते हैं॥ तातें तूं मनन
कलनांके त्यागकर सर्वतें अतीत हो॥ तेजकी एक
तातेज साथ होताहै। जलकी एकता जल साथ हो
ताहै॥ तबतेरी भी एकता होवे॥ जबतूं उस विषे स्थि
त होवें॥ अहंकारतें रहित। जिसका अंग कछु मिल
ताहै॥ तिस साथ एकता होती है॥ जैसे जल साथ जल

कीएकताहोतीहै। तैंसेजबतूंफुरणेतेंरहितहोवें
तबतेरामिलापहोवै॥ हेमनतूंतोपर्मात्माकेऽअ
ज्ञानकरउदेहूयाहैं॥ ऽअरुऽआत्माकेज्ञानकरदे
हइंद्रीयांमनकोऽअभावहोजाताहै॥ जबस्वरूप
काज्ञानहूया॥ तबऽअज्ञाननष्टहोजाताहै॥ जैसेरा
त्रिकेऽअभावहूए निसाचरोंकाऽअभावहोजाताहै
तैंसेऽअज्ञानकेनाशहूए तेराऽअभावहोजाताहै॥
॥इतिउपशमप्रकर्णेवीतहव्यउपाख्यानेचित्त
ग्रासनंनामसर्गः॥७७॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हेरा
मजीवीतहव्यमुनीश्वरवंध्याचलपर्वतकीकंदरा
विषेविचारकर्त्तेभये॥ तीक्ष्णबुधिसाथ॥ ऽऔरभी
कहाहैसोसुण॥ ऽअनात्मजोहैं॥ देहइंद्रीयांमनऽआदि
कसोसंकल्पतेंउपजेहैं॥ जबज्ञानउदेहूया॥ तबदेह
इंद्रीयांमनऽआदिकोंकोऽअभावहोजाताहै॥ हेमनजैं
सेसूर्यउदेहूए तमकाऽअभावहोताहै॥ तैंसेऽआत्मज्ञा
नकेउदेहूए तुमाराऽअभावहोजाताहै॥ जबलगमन
देहइंद्रीयोंसाथऽआवरतहूयाहै॥ तबलगऽआत्मप
दकोंपानहींसकता॥ तांतेऽआत्मपदपावणेकायतन
करों॥ जबऽआत्माकासाक्षातकारहोवेगा॥ तबमनइं
द्रीयांऽआदिकविकारनष्टहोजावेंगे॥ जैसेसूर्यकेउ
देहूए निशाचरोंकाऽअभावहोजाताहै॥ तैंसेऽआत्मा
केसाक्षात्कारहूए विकारोंकाऽअभावहोजाताहै॥ जैं
सेजीवतेंऽअरुमृतककासंबंधनहीहोता॥ तैंसेऽआत्मा
ऽअनात्माकासंबंधनहीहोता॥ ऽआत्मासर्वकलनातें
रहितहै॥ ऽअरुमनऽआदिकसर्वकलनारूपहैं॥ जब
लगइसकोंऽआत्माकाऽअज्ञानहै॥ तबलगऽआवर्णोंप्र
मादीहै॥ जबऽआत्मज्ञानहूया॥ तबऽअपणेसाथइन
कासंबंधनहीदेखता॥ इहमैंनिश्चैकरजाणपाहै॥ जोइं
द्रीयांऽअरुमनकेसंयोगतेंजगतभासताहै॥ जबइंद्री
येंमनकाऽआमक्षयहोजावे॥ तबजगतपर्मात्मारूपप

डाना सो॥ अरु मैं जो देह इंद्रीयों कों आप जानता था॥ सो
प्रमाद रूपी मदरा के पान कर जाणता था॥ अब आत्म
विचार कर मन नष्ट हूया है॥ तब मैं सुखी हूया हों॥ न
मेरे विषे बंध है॥ न मोक्ष है॥ न अहंता है॥ न त्वंता है॥ स
र्व आत्मा मैं सर्व तें निर्लेप हों॥ हे मन तूं भी मैं हों॥ पृथ्वी अ
प तेज वायु आकाश पांचो तत्व भी मैं हों॥ इस प्रकार ति
र्लोक कें जिस निश्चै धारता है॥ सो मोह कों नहीं प्राप्त हो
ता॥ जब अपणे स्वभाव विषे स्थित होता है॥ तब परम सु
खी होता है॥ तां ते जिस कों कल्याण की इछा होवे॥ तिस
कों एक आत्मपरायण होवणा योग्य है॥ जब आत्म वि
चार कर के स्वरूप का साक्षात्कार होता है॥ अरु अंता
न वृत्ति नष्ट हो जाती है॥ चित्त सर्व कर्त्तें रहित होता है
तब सर्वगत अपणे आप विषे स्थित होता है॥ नित उ
दित सर्व का सार आत्मा अद्वैत तत्व है॥ तिस विषे द्वैत क
लना का अभाव है॥ सर्व विषे पूर्ण निर्मल शुध आत्मा
जगत कों मैं प्राप्त हूया हों॥ इस का जो सुख दुख है॥ सो मेरा नष्ट
भया है॥ सम शांति रूप हूया हों॥ ॥इति उपशम प्र
करणे वीतहव्य उपाख्याने इंद्रीयां मन आसंतयो
तो उपदेशो नाम सर्ग:॥ ७८ ॥श्री वसिष्ठोवाच॥
हे राम जी इस प्रकार वीतहव्य मुनीश्वर विचार कर्त्ती
हूया॥ निर्मल बुधि साथ कहणे लागा॥ हे मन हे इंद्री
यो तुम किं उ अपणे अर्थों की ओर धावते हो॥ तुम कों
तो विषयों कर शांति कदाचित नहीं प्राप्त होणी॥ जैसे
मृग मारूस्थल की नदी कों देख कर दौडता है॥ शांति
वान नहीं होता॥ तैसे तुम विषयों कर शांतिवान न हो
वोगे॥ इन की इछा त्याग कर आत्म स्वरूप विषे स्थित
होवो॥ जिस सुख का नाश कदाचित नहीं होता॥ सर्व अ
वस्था विषे एक रस है॥ तब तुमारे सर्व दुख मिट जावें॥
हे चित्त जब लग तूं नष्ट नहीं होता॥ तब लग शांति नहीं
होती॥ जैसे एक समात्रें मेघ आवे॥ अरु गाडे की वर्षा

होवे॥ तिसकर मार्ग के चलणे वाले पैं कोई कष्ट पावते हैं
तैसे तेरो फुर्लेगडे की वर्षा कर सत मार्ग के चलणे वा रूपा
ले दुख पावते हैं॥ जब चित्त नष्ट होता है॥ तब सर्व आनं
द शीतलता प्राप्त होती है॥ जैसे मेघों के नष्ट हूए सरत
काल का आकाश निर्मल होता है॥ तैसे अज्ञान के नाश
हूए आत्मा प्रगट होता है॥ जैसे पूर्णमासी का चंद्रमा बद
लों ते रहित प्रकाशता है॥ तैसे अज्ञान के नष्ट हूए आ
त्मानंद को पाइ पुरुष प्रणमता है॥ हे चित्त तं अविवेक
कर के मेरा मित्र था॥ अब बोध कर के तेरा मित्रभाव नष्ट
कीया है॥ अब हम मित्राई करी है॥ तेरा चित्तभाव नष्ट ज्ञो
हो जावेगा॥ अब प्राणों की युक्त कर निर्णे कीया है॥ जो
तूं न आगें थ्या॥ न अब हैं॥ न पाछे होवेंगा॥ जब लग मैं आ
प को न जाण्या था॥ तब लग तेरा सद्भाव था॥ अब मैं आ
प को जाण्या है॥ अरु आप णे आप विषे स्थित भया हौं॥
मैं परम निर्वाण रूप हौं॥ सम्न ताप मेरे नष्ट भए हैं॥ नित शु
ध परब्रह्म अपणे आप विषे स्थित हौं॥ जगत की सत अ
सत कलना मेरी नष्ट भई है॥ काहे ते जो सम्न कलना चि
त विषे थी॥ जब चित्त निर्वाण हूया॥ तब कलना कहां र
हे॥ मैं केवल शुध आत्मा दूसरे ते रहित ज्ञप्ति रूप हौं॥
चित्त की चेतना पडी फुरती थी॥ सो निर्वाण होगई है॥ अ
ब मैं स्वस्थ हूया हौं॥ जैसे तरंगों ते रहित समुद्र अचल
होता है॥ तैसे मैं सर्व कलनां ते रहित अचल हूया हौं॥
॥इति उपशम प्रकर्णे वीतहव्य वृत्तांत उपदेशो ना
म सर्गः॥ ८९॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इस प्र
कार वीतहव्य निर्वासी होकर वेंध्याचल पर्वत की कं
दरा विषे समाधि कर्ते भया॥ निर्मल चित्त आकाश की
न्याई इंद्रीयों की वृत्ति बाह्य ते खैंच कर अचल होत
भया॥ सिर अरु ग्रीवा को सम कर के स्थित भया॥ चित्त की
वृत्त को आनंद आत्मतत्व साक्षी भूत विषे स्थित करी
जैसे लकडीयों को जलाइ कर अग्नि की ज्वाला शांति

इस्पंद होजाती है॥ तैसे प्राण अरु मनकी वृत्ति ठहर
गई॥ जैसे मूर्त्तिकी पुतली लिखी होती है॥ तैसे स्थित
भया॥ तब तीन सत्त वर्षसमाधि विषे स्थित भया॥ जै
से अर्धमहूर्त्त व्यतीत होता है॥ तैसे व्यतीत कीया स
माधि विषे॥ मेघों की वर्षा सिर ऊपर वर्षे॥ अरु मंड
लेश्वर स्नान कर स्पिकार खेलें॥ अरु वन्हि दृष्ट होवें
रिछ बांतर हाथीयों के दृष्ट होवें॥ पर इह जागे नही
वनकों अग्नि लागे॥ गडे की वर्षा होवे॥ वायु चले॥ धू
प लागे॥ तो भी समाधि तें न जागे॥ जैसे पहाड विषे सि
ला पडी होती है॥ तैसे ही सरीर माटी कर दबा गया॥ ज
ब तीन सउ वर्ष व्यतीत भया॥ तब चित्त आन फुरता॥
जो सरीर मेरे साथ है॥ पर प्राण नहीं फुरते॥ तब चित्त
के फुर्णे विषे आप कों कैलास वनमों कदमके नी
चे सउ वर्ष पर्यंत मौन होकर जीवन्मुक्ति निर्मल
आत्मा विचरत भया॥ बहुड विद्याधरों विषे विद्या
धर होकर विचरता॥ सउ वर्ष पर्यंत तिसके आगे॥
पंच युगइंद्र होकर रहा॥ देवते नमस्कार करें॥ श्री
रामोवाच॥ हे भगवन ऐसे देश काल को अरु मु
नादिक प्रतिभा को अनेक अनेम उसको कैसे भ
या॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी चित्त सत्ता सर्व
आत्मारूप है॥ जैसा जैसा तिस विषे फुर्णा होता है
तैसा तैसा होभासता है॥ जैसे जैसे काल का फुर्णा फु
रता है॥ तैसे ही अनुभव होता है॥ हे रामजी जेता कछु
प्रपंच है॥ सो सब मनो मात्र है॥ जैसे जैसे मनका फुर्णा
होता है तीव्र॥ तैसे अनुभव सत्ता विषे भासता है॥ अ
नेमादिक भी तुहीहो तै हैं॥ जहां स्थित होता है॥ अरु
जो और भाव विषे गया॥ तो नेम कैसे भासता है॥ अ
ता नहीं होता है॥ तिसकों नाना प्रकार की वासना होती
है॥ तिसकर नाना प्रकार का जगत भासता है॥ अ

देसंत्रर

रूजोज्ञानवानहै॥ तिसकोंसर्वात्मानासताहै॥ तिस
कापूर्णंभीअपूर्णहै॥ वीतहव्यमुनीश्वरजोदेख
तभया॥ सोचित्तकेस्पंदकरदेखा॥ परस्वस्वरू
पहै॥ उसकीवासनाअवासनाथी॥ जैसेभुनाबीज
अंकुरनहींउगमता॥ तैसेउसकीवासनाजन्मकाका
रणनहीं॥ कल्पपर्यंतचंद्रधारीसदाशिवकागण
होकरविचरता॥ समस्तविद्याकाज्ञातासर्ववेत्तात्रिका
लदर्शीजीवन्मुक्तिहोकरविचरताहै॥ हेरामजीजैसा
किसीकासंस्कारदृढहोताहै॥ तैसातिसकोअनुभव
होताहै॥ जैसेवीतहव्यचेतनकेस्पंदविषेभीजीवन्मु
क्तिकाअनुभवकर्त्ताभया॥ श्रीरामोवाच॥ हेभ
गवनजोऐसेहै॥ तोजीवन्मुक्तिविषेभीबंधमोक्षहो
ईकिंतु॥ जैसेवीतहव्यकोंहूईहै॥ श्रीवसिष्ठोवाच
॥ हेरामजीजीवन्मुक्तिकोसनेत्रस्वरूपभासता
है॥ बंधमुक्तिअवस्थातिनविषेकहाहै॥ ज्ञानमात्रअ
कोराविषे॥ जैसाजैसाफुर्णहोताहै॥ तैसाहोभासता
है॥ हेअंगदृहसत्तचिन्मात्रस्वरूपहै॥ अरुजगतजो
नानाप्रकारभासताहै॥ सोमनकरकेभासताहै॥ वास्त
वतेंमननहै॥ नइंद्रीयाहैं॥ नजगतहै॥ केवलनेत्रभासता
हैपडीभासतीहै॥ चिन्मात्रतेंइतरजोकछुभासताहै
सोमनकेफुर्णेकरभासताहै॥ ऐसाजिनकोंज्ञाननहीं
तिनकोंजगतवजासारकीन्याईपडाभासताहै॥ अर
ज्ञानवानकोंआकाशरूपभासताहै॥ हेरामजीअज्ञा
नककैमनउपजाहै॥ तिसकरसंपूर्णजगतभासताहै
वस्तुतेंअवरकछुनहीं॥ जैसेसमुद्रविषेतरंगउल्लास
होताहै॥ तैसेचिदाकाशविषेजगतभासताहैजबचि
तअचित्तहोताहै॥ तबद्वैतकछुनहींभासता॥ ॥इ
तिउपशमप्रकर्णेवीतहव्यमनोमात्रजगतवर्ने
नंनामसर्गः॥ ६॥ श्रीरामोवाच॥ हेभगवनउहवी

तहव्यमुनीश्वर जो वंध्याचल की कंदरा विषे स्थित
था ॥ सो बहुड उस की क्या अवस्था भई ॥ श्रीवसिष्ठो
वाच ॥ हे रामजी तिस के अनंतर उह आत्मवित वी
तहव्य मुनीश्वर जो तेजवान था ॥ सो एक काल में स
रीर गए को मन कर विचारतत भया ॥ जो केई नष्ट हो
गए हैं ॥ केई अनष्ट हैं ॥ अनष्टों के मध्य विषे कोई प
थ्वी के मध्य स्थित था ॥ तिस को देखत भया ॥ जो धूड
कोटर विषे स्थित है ॥ बहुड चिकड विषे फस्या है ॥ ऊ
पर तृण सिवाल उघ्यम गया है ॥ बहुड कहणे लागा ॥ जो
इस विषे प्रवेश करों ॥ बहुड विचार कीया इह तो जड
गुण असत रूप है ॥ अरु फस्या हूया है ॥ इस के निकास
णे को मैं समर्थ नहीं ॥ तां ते सूर्य के मंडल को जावों ॥ सूर्य
का जो सारथी अरुण पंगा है ॥ सो इस को निकासेगा ॥ अ
थवा इस के साथ मुज का क्या प्रयोजन है ॥ इह नाश
होवे अथवा रहे ॥ ए तां यतन मैं किस निमित्त करों ॥
मैं आपणे निर्वाण स्वरूप विषे स्थित हों ॥ देह के साथ
मेरा क्या प्रयोजन है ॥ इस प्रकार चितवकर वीतहव्य
न इमी होरहा ॥ मुज कों जैसे देह का त्यागणा है ॥ तैसे देह
का ग्रहण करणा समान है ॥ इह सरीर किस निमित्त द
बा रहे ॥ अरु कछु इस का प्रारब्ध वेग रहता है ॥ आका
श विषे जो सूर्य है ॥ तिस विषे प्रवेश करों ॥ जैसे आदर्श
विषे प्रतिबिंब प्रवेश करता है ॥ तैसे करों ॥ अरु इस सरी
र को सूर्य के सारथी कर के निकासों ॥ हे रामजी ऐसे वि
चार कर मुनीश्वर पुर्यष्टका रूप सों आकाश मार्ग
चडा ॥ सूर्य भगवान को प्रणाम कर प्राणों द्वारे प्रवेश की
या ॥ तब सूर्य जानत भया ॥ जो वीतहव्य मुनीश्वर आन
प्रवेश कीया है ॥ सो किस निमित्त आया है ॥ जानत भया
जो पृथ्वी विषे इस का सरीर दबा हूया है ॥ चिकड अर
तृणों कर आछादया हूया है ॥ तिस के निकासणे निमि

एकदा णपा
क बहुडवित
बना भई जो

तऽआया है ॥ ऽऐसे विचार करकैं ऽअपणे सारथी कों कहत
भया ॥ हे सारथी विंध्याचल पर्वत की कंदरा विषे वी
तहव्य मुनीश्वर का सरीर दब्या हूया है ॥ तिसकों तूं
जाकर तिकासदे । जब सूर्य ऐसें सारथी कों कहा ।
तब ऽअरुण नाम सारथी जिसका सरीर हस्तीवत है
सो विंध्याचल पर्वत विषे जाकर नखों साथ सरीर कों
तिकासता भया ॥ कैसे नख हैं ॥ जिस साथ पहाड उ
खाड डारे हैं ॥ तब मुनीश्वर पुर्यष्टका करकैं तिस सरी
र विषे प्रवेश कीया ॥ उसे सरीर साथ सावधान होक
रऽअरुण कों नमस्कार करते भया ॥ परस्पर नमस्कार
करकैं ऽअपणे कार्य की ऽओर हूए ॥ ऽअरु ऽअरुण ऽआका
श मार्ग कों गया । स्नान करकैं संध्यादिक कर्म कीए ।
ऽअरु सूर्य भगवान कों पूजते भया ॥ जैसे प्रथम सरी
र सोभता था ॥ तैसे सोभता भया ॥ मैत्री समता शांति बु
धि मुदतादिक गुणों कर सोभता भया ॥ ऽअरु सर्व
संगतें ऽअसंग रहा ॥ ॥ इति श्री उपशम प्रकर्णे
वीतहव्य समाधि योगो उपदेशो नाम सर्गः ॥ ८ ॥
श्री वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इस प्रकार जब केते
दिन व्यतीत भए ॥ तब समाधि के निमित्त मुनीश्वर का
मन उदे भया ॥ तब उठकर विंध्याचल पर्वत की कंद
रा विषे जा स्थित भया । पूर्व जो विचार ऽअभ्यास कीया
था ॥ ऽअरु परावर परमात्मा दृष्ट भई थी ॥ तिसकर ख
ऊड चित्त कों कहत भया ॥ हे चित्त हे इंद्रीयां मैं तुमा
रा पूर्व ही प्रहार कर छोडता हे ॥ ऽअरु ऽआस्तज्ञानी स्त
के पाछे जो शेष रहता है ॥ तिस विषे मैं स्थित हों ॥ जैसे
पपर का सिंहऽअचल होता है ॥ तैसे मैंऽअचल हों ॥ ऽअ
रु सदा उदेरूप ऽआस्ति की न्याई स्थित हों ॥ हे रामजी
इस प्रकार मुनीश्वर ध्यान विषे स्थित भया ॥ षट
दिन पर्यंत ध्यान विषे रहा । तिसतें उपरंत जागया । त

जगत को तृण के समान जानता भया ॥ जीवन्मुक्ति होकर चि
रपर्यंत विचरता रहा ॥ अरु कहा हे मन इंद्री समवान
होवो ॥ आत्मपद कों पाकर देख देखो ॥ अब तुज कों
क्या सुख है ॥ जिस सुख के पाए तें अवर पावणो कछु
नहीं रहता ॥ अब मैं अपणे स्वरूप कों प्राप्त भया हों ॥
सरीर रूपी रथ अग्यान करके मिल्या है ॥ इंद्रीयां और
हैं ॥ तत्व और हैं ॥ मन आदिक और हैं ॥ तिस विषे पुरु
ष है ॥ सो जीव है ॥ जीव कहे जो मैं सरीर हों ॥ तो बन्धी मरखे
ता है ॥ सरीर के सुख दुख मरखेता करके आप विषे जान
ता है ॥ जब विचार करके देखे तो राग द्वेष तें मुक्ति है ॥ अ
विचार का स्मत मैं दूर तें त्यागी है ॥ अरु आत्मस्वरूप
का स्मृत स्पष्ट करा है ॥ जो आत्मतत्व सत स्वरूप है ति
स कों मैं जाण्या है ॥ हे रामजी इस प्रकार वीतहव्य विचा
र करके जीवन्मुक्ति हूया ॥ अपणे स्वरूप विषे बहुत का
ल प्रतीत करता भया ॥ अरु ग्रहण त्याग कर्णे की भाव
ना कछु न रही ॥ परम पूरण आत्मपद कों प्राप्त भया ॥ अ
रु जिस प्रकार जीवन्मुक्ति तें विदेहमुक्ति हूया ॥ सो
सुण ॥ वीस सहस्र अरु सात सत वर्ष जीवन्मुक्ति रह
बहुड़ि विदेहमुक्ति हूया ॥ हे रामजी हिमालय पर्वत की
एक कंदरा थी ॥ तिस विषे प्रवेश करकर पद्मासन कों धा
रा ॥ आप कों आप ही कहता भया ॥ हे प्रकृति तुम कों
नमस्कार है ॥ तुम सर्वज्ञ थी ॥ तुम अपणा नाश कीया
है ॥ हे रक्त मांस का पिंजरा देह तें मेरे साथ बहुत का
ल रहा है ॥ जो तें विवेक के उपजणे का स्थान है ॥ तातें
तुम कों भी नमस्कार है ॥ तेरे संयोग करके मैं परम पद पा
या है ॥ हे संसार सागर तुमारे विषे मैं बहुत काल क्रि
या करी है ॥ तातें तुम कों भी नमस्कार है ॥ हे इंद्रीया प्रा
ण मन आदिक तुम कों भी नमस्कार है ॥ तुमारा हमा
रा चिरकाल का संयोग था ॥ पर अब वियोग हूया है

चहौंकी जोति सूर्यके मंडल विषे जा लीन होवेंगी॥
घ्राण इंद्रीय पृथ्वी विषे जा लीन होवेगी॥ प्राण पवन वि
षे लीन होवेंगे॥ श्रवण आकाश विषे लीन होवेंगे॥ म
न चंद्रमा विषे लीन होवेगा॥ जिह्वा रस जल विषे ली
न होवेगी॥ इसी प्रकार अंस अंसी विषे जा लीन होवें
गे॥ हे रामजी ऐसे विचार कर्त्ते कर्त्ते मन सर्व कार्यों
तें रहित कीया॥ अरु प्रणव के ध्यान विषे जुड गया॥ स
र्व दृश्य तें शांति वान हूया॥ मोह रूपी मैल कों त्याग क
र चित्त प्रणव के विचार मों लागा॥ ॥इति उपशम
प्रकर्णे इंद्री निराकरणं नाम सर्गः॥ ८२॥ श्री
वसिष्टोवाच॥ हे रामजी इस प्रकार उद्दालक उ
चार कर्त्ता मनन पंचम तुरीया जो चित्त की अवस्था है॥
तिसकों प्राप्त भया॥ बाह्य अंतर के जो सम स्पस्वनाव (अस्थूल)
हैं॥ त्रिलोकी के सर्व संकल्पों कों त्याग कर अद्वैत रूप (ऊँर)
स्थित भया॥ जैसे चिंतामणि अपणे प्रकाश विषे स्थित
होती है॥ जैसे संपूर्ण कला कों लेकर चंद्रमा स्थित होता
है॥ तैसे फुर्णे तें रहित शांतात्मा विषे स्थित भया॥ प्रण
व के ध्यान करके तिस वृत्ति के अंत कों प्राप्त भया॥ केवल (बहुड)
अचेत चिन्मात्र पद तुरीयातीत आनंद स्वरूप पद है॥ जिस (है)
विषे स्वरूप तें इतर आनंद नहीं॥ तिसकों प्राप्त भया॥ जि
सकों शून्यवादी शून्य कहते हैं॥ ब्रह्मवादी ब्रह्म कहते
हैं॥ विज्ञानवादी जिसकों विज्ञान कहते हैं॥ सांख्यवादी
जिसकों सांख्य कहते हैं॥ योगवादी जिसकों ईश्वर कह
ते हैं॥ शैवी जिसकों शिव कहते हैं॥ वैष्णव जिसकों वि
ष्णु कहते हैं॥ शाक्तिकी जिसकों परमशक्ति कहते हैं॥
कालवादी जिसकों काल कहते हैं॥ आत्मवादी जिसकों
आत्म कहते हैं॥ माध्यमक जिसकों माध्यम कहते हैं॥ जो
सर्व कलना तें वा भाव तें रहित है॥ इत्यादिक जो शास्त्र (मो)
कार कहते हैं॥ एक परब्रह्म कों कहते हैं॥ काहेतें जो स

र्वदा काल सर्व प्रकार सर्व विषे सर्व रूप होकर स्थि
त है ॥ ऐसे सर्वात्मा को वीतहव्य मुनीश्वर प्राप्त भ
या ॥ जिस आनंद करस न को आनंद प्राप्त होता है ॥
अरु सर्व के प्रकासणे हारा दीपक है ॥ ऐसे आत्म
तत्व अनुभव रूप अपणे आप को वीतहव्य प्राप्त
भया ॥ उही रूप होत भया ॥ जो सून्य है ॥ अनन्य है ॥
जन है ॥ निर्जन है ॥ सर्व है ॥ असर्व है ॥ अजर है ॥ अ
मर है ॥ सत की आदि है ॥ सकल है ॥ असकल है ॥
अनादि है ॥ ऐसा आत्मा को शांति भी निर्मल पद है ॥ ति
स विषे वीतहव्य मुनीश्वर प्राप्त भया ॥ ॥ इति
उपशम प्रकर्णे वीतहव्य निर्वाण योगो नाम
सर्गः ॥ ८३ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी वीत
हव्य जो मुनीश्वर था ॥ दुखरूप संसार समुद्र के पा
र को प्राप्त भया ॥ जिस पद के प्राप्त हूए ते बहुड़ ज
न्म मरण को नहीं पावता ॥ तिस विषे स्थित हूया ॥ प
र्म शांति उपशम आनंद को प्राप्त हूया ॥ जैसे समु
द्र विषे पड़ी बूंद समुद्र रूप हो जाती है ॥ तैसे ब्रह्म
विषे उपशम हूया ब्रह्म रूप हो गया ॥ अरु सरीर
वीतहव्य का विरस होकर गिड़ पड़ा ॥ जैसे शीत का
ल के उपरंत वृक्षों के पात गिड़ पड़ते हैं ॥ तैसे सरी
र गिड़ पड़ा ॥ सरीर रूपी वृक्ष था ॥ विदेह रूपी आलण
था ॥ तिस विषे प्राण रूपी पंखी रहते थे ॥ सो भी विदा
काश विषे प्राप्त हूया ॥ हे रामजी इह मैं वीतहव्य का
प्रसंग तुझ को सुणाया है ॥ सो आनंद दायक वीचा
र रूप है ॥ इस प्रकार वीतहव्य विचार करके विश्रांत
को प्राप्त हूया है ॥ तैसे भी इस को विचार कर के सिद्धां
त सार को प्राप्त हो ॥ अवर द्रिष्ट्रप की चितवना को त्या
ग कर सावधान हो ॥ हे रामजी जो कछु मैं पूर्व तुझ
को कहा है ॥ तिस पद को प्राप्त हूए बहुड़ पावणा

कछु नहीं रहता [illegible] मुक्ति ज्ञान कर होती है ॥ अरु
ज्ञान ही कर दुख नष्ट होते हैं ॥ अरु ज्ञान ही कर
अज्ञान निर्वृत होता है ॥ अरु ज्ञान ही कर परम सि
धता को पावता है ॥ हे रामजी वीतहव्य की जो सवि
तथ्यी ॥ सो जगत तें अतीत होत भई ॥ मन के उपशम
हूं ए सम जगत अनुभव रूप हो जाता है ॥ अरु वी
तहव्य भी मनोमात्र था ॥ तूं भी मनोमात्र हैं ॥ मैं भी
मनोमात्र हौं ॥ सर्व जगत मनोमात्र है ॥ मन के फुरणे
तें इतर कछु नहीं ॥ जहां मन होता है ॥ तहां जगत हो
ता है ॥ मन ही जगत है ॥ जगत ही मन है ॥ जो ज्ञानवा
न पुरुष हैं ॥ सो मन की दशा को त्याग कर केवल चि
दानंद आत्मतत्व विषे स्थित होते हैं ॥ रागद्वेषादि
क विकार तिनके मिट जाते हैं ॥ आत्मपद को पाक
र विवेकी सम न शोक को तर जाते हैं ॥ ॥ इति उ
पशम प्रकर्णे वीतहव्य विश्रांत प्राप्त नाम
सर्गः ॥ ८४ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी विदि
त वेद्य होकर वीतहव्य की न्याई रागद्वेष तें रहि
त स्थित हो ॥ जैसे तीस सहस्र वर्ष वीतहव्य शोक
तें रहित होकर जीवन्मुक्ति विचरता है ॥ तैसे तूं भी
विचर ॥ और भी बुद्धिवान राजा अरु मुनीश्वर हु
ए हैं ॥ सो तैं यत्नता होकर व्यवहार विषे भी रहे हैं ॥
तैसे तुम भी जीवन्मुक्ति होकर विचरो ॥ हे रामजी सुख
दुख आत्मा को ग्रहण नहीं कर सकते ॥ अरु आत्मा
सर्वत्र है ॥ तूं किसका नाश करता है ॥ बडे ते विदित वेद्य
पुरुष वी लोक विषे विचरते हैं ॥ अरु शोक को कदा
अचल
चित नहीं प्राप्त होते ॥ हे रामजी तूं अब स्वस्थ उदारा
त्मा सर्वत्र है ॥ तो ते तुझ को बहुरि जन्म नहीं ॥ जीवन्मु रहित
क्ति होकर रागद्वेष तें हो कर विचरो ॥ जैसे सिंह पिं
दडे अरु बांतरों के वस नहीं होता ॥ तैसे जीवन्मुक्ति

किसीकर बंधमान नहीं होता ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे
भगवन इस प्रसंग विषे मुझ को संशे हूआ है ॥ तिस
को निवर्त करो ॥ हे तत्ववेत्ता विषे श्रेष्ट जीवन्मुक्ति
के सरीर सों सक्ती किउं नहीं देष आवतीयां ॥ जो आ
काश विषे उडता फिरे ॥ अरु सूक्ष्म सरीर धारकर
और सरीरों विषे प्रवेश करे ॥ इत्यादिक सक्ती उ
स विषे किउं नहीं दिखीतां ॥ श्रीवसिष्ठोवाच
॥ हे रामजी आकाश गमनादिक जो सिधी हैं ॥ सो
तप अरु योग आदिक कर्मों की शक्ति है ॥ जैसे अनेक
ही विचित्र जाल हैं ॥ दिखाई देणी बहुरूप जाणे
इत्यादिक स्वभाव हैं ॥ सो आत्मज्ञान के नहीं ॥ हे राम
जी जो कोउ किसी क्रिया को साधता है ॥ यथाक्रम
करके तिस को शक्ति प्राप्त होती है ॥ ज्ञानी साधे अथ
वा अज्ञानी साधे ॥ शक्ती प्राप्त होते हैं ॥ परन्तु शक्ती आ
त्मज्ञान का फल नहीं ॥ आत्मज्ञानी को आत्मज्ञान
की सिधता होती है ॥ उह आपकर आप विषे स्थित
तृप्त होता है ॥ सिधी अविद्यारूप हैं ॥ तिन की ओर
नहीं धावता ॥ जेता कछु जगत है ॥ सो तिस ने अवि
द्यारूप जाणा है ॥ ऐसे जाणकर पदार्थों विषे बं
धायमान नहीं होता ॥ अरु जो अज्ञानी है ॥ सो सिधता
के निमित्त इन पदार्थों को साधते हैं ॥ अरु जो ज्ञानवा
न है ॥ सो इन के निमित्त यतन न नहीं करते ॥ जो यतन क
रते ज्ञानी होवे अथवा अज्ञानी होवे ॥ इन्द्रादिक
ऐश्वर्य को पावते हैं ॥ सो ज्ञान की शक्ति नहीं ॥ इस की
शक्ति है ॥ इह अविद्यारूप हैं ॥ अज्ञानी इन की ओर
धावते हैं ॥ ज्ञानवान नहीं धावते ॥ उह सर्व ते अतीत हैं
उन सर्व इछा का त्याग कीया है ॥ अरु आत्मपद विषे
संतोष पाया है ॥ उह इन की इछा नहीं करते ॥ इन की
इछा भोगों के निमित्त वा वेमान के निमित्त करते हैं ॥

आत्मज्ञानी कों न भोगों की इछा है ॥ न मान की इछा
होती है ॥ इह सब अनात्म धर्म हैं ॥ उह नित तृप्त शां
ति रूप है ॥ वीतराग निर्वासी पुरुष हैं ॥ आकाश
की न्याई सदा आपणे आप विषे स्थित हैं ॥ जैसे सु
ख स्वभाविक आवता है ॥ तैसे दुख भी स्वभाविक
आवता है ॥ सरीर के सुख दुख की अवस्था विषे
उह चलायमान नहीं होते ॥ जो वणेमलीं की वृत्ति
उसकों नहीं फुर्ती ॥ सर्व विषे सम रहता है ॥ हे रामजी
जो कछु प्राप्त होता है ॥ सो आत्मा कों अर्पण करता
है ॥ तिसकों करणे अकरणे विषे हर्ष शोक कछु नहीं
सदा आपणे स्वरूप विषे स्थित है ॥ एक तौ क्रिया ऐ
सी है ॥ तिसके साधणे कर उडणे की शक्ति होआव
ती है ॥ एक मंत्रों की शक्ति है ॥ एक गुटका मुख मों रा
खणे तें उडणे की शक्ति होआवती है ॥ जैसे चंद्रमा वि
षे शीतल शक्ति है ॥ जैसे अग्नि विषे उष्म शक्ति है
इत्यादिक पदार्थों विषे आदि नेत कर जैसा स्व
भाव दृढ़ पाया है ॥ तिसके दूर करणे कों समर्थ कोऊ न
हीं ॥ सर्व तें जो विष्णु भगवान है ॥ सो भी अन्यथा क
रणे कों समर्थ नहीं ॥ हे रामजी जिस द्रव्य विषे मारणे
की शक्ति राखी है ॥ सो मारती है ॥ एक बूटी विषे उक
लेद करणे की शक्ति है ॥ तिसके खाए तें उकलेद ही क
रती है ॥ जैसे इन विषे अपणी अपणी शक्ति है ॥ तैसे त
प अरु योगादिक विषे सिधता की शक्ति है ॥ आत्म
ज्ञान की प्राप्त विषे इछा कछु गुण नहीं करती ॥ अरु
आत्मज्ञानी कों इन की इछा न हों होती ॥ उह आत्मप
रायण होता है ॥ आत्मलाभ कर सर्व इछातों की शां
ति होजाती है ॥ हे रामजी जेते कछु लाभ हैं ॥ तिनतें प
रं आत्मलाभ है ॥ आत्मा के पाए तें बड़ी इछा कि
सी की नहीं रहती ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन एता

काष्ठजो वीतहव्यसमाधि विषे रहा ॥ तब तिसका
सरीर पृथ्वी विषे पृथ्वी किउं न होगया ॥ अरु सिंह
विघ्याघ्रादिकउनकै भोजन किउं न कीया ॥ अरु
पाछें जो विदेहमुक्ति हूया ॥ प्रथम किउं न हूया जो
पृथ्वी विषे दबे हूंए कौ तिकसणेन भित्तए ताय
तन कीया ॥ इस संशे को निवृत्त करो ॥ श्रीवसि
ष्ठोवाच ॥ हे रामजी जो संवित वासनारूप तंतु
साथ बांधी हूई है ॥ सो सुख दुःख को भोगती है ॥ सो
मलिन भाव करि आवरी हूई है ॥ हे रामजी जिस जि
स पदार्थ विषे चित्त लागता है ॥ सोई सोई पदार्थ भा
सता है ॥ तो इ बहुते वर्ष व्यतीत हूते हैं ॥ तो भी समा
धि के बल करि तिनका सरीर जिउं का तिउं रहता
है ॥ कारण ते जो चित्त जिस पदार्थ विषे लागता है ॥
तिसका रूप हो जाता है ॥ जैसे मित्र मित्र को भाव दे
ख करि स्वाभाविक प्रसन्न होता है ॥ अरु शत्रु भाव
देख करि चित्त विषे स्वाभाविक ही अप्रसन्नता फु
रि आवती है ॥ जिस पदार्थ साथ वृत्ति का सनबंध
होता है ॥ तिसका स्वाभाविक अनुभव होता है ॥ तैसे
योगी देह इंद्रीयों की वासना ममत्व भाव कौ त्याग
करि सम भाव कौ पावता है ॥ तब तिसको सम भाव
का अनुभव होता है ॥ सम भाव सर्व विषे एक है ॥ इ
स कारण ते तिसके सरीर को सिंहादिक कोउ छे
दन सके ॥ जो जीव उसके घात करणे कौ आवता है
तब उह हिंसा भाव को त्याग देता है ॥ जहां पुर्यष्टक
है ॥ तहां संवित भासती है ॥ अन्यथा नहीं भासती ॥ इस
कारण ते वीतहव्य की संवित सम भाव विषे स्थित
भई ॥ उसको किसी तत्व का अरु जीव का क्षोभ न
हूया ॥ अरु पांचों तत्वों का क्षोभ तब होता है ॥ जब
प्राण फुरते हैं ॥ जब प्राण फुरणे ते रहित होते हैं ॥ तो त

अरु जो वासनां ते रहित है सो स्वरूप समतारूप है

हैं

सर्व समता आकास ऐक ही इ साक्षित है काष्ठ लोष्ठ पाषाण ब्रह्मादि कतिरए प्रयंत सम भव विषे एक स्त्रन सूत है पर

त्वोंका क्षोभ नहीं होता ॥ जो वीतहव्यकी बाल्यअमें त
रस्पंदकला प्राणोंकी शांति होगई थी ॥ प्राण अरु
चित्तकला दोनों फुरणेतें रहित थी ॥ इसकर तत्वों
का क्षोभ न नहीं हूया ॥ जब इनका फुरणा शांति होता
है ॥ तब सरीररूपी गृह विषे चित्त अरु वायुका क्षो
भ शांति होजाता है ॥ तब सुमेरकी न्यांई स्थित हो
जाता है ॥ किसीकी समर्थता है ॥ जो तिसकौं दुनावे
नाश करे ॥ जो योगेश्वरका चित्त और प्राणस्पंद स्थिर हो
जाता है ॥ सो इनकौं वश करके जुरता है ॥ तब उस
के न तत्वोंका क्षोभ न होता है ॥ न वात पित्त कफका
क्षोभ न होता है ॥ न अवर क्षोभ न होता है ॥ इसकर योगी
का सरीर सहस्त्रवर्षपर्यंत भी जिंउका तिंउ रहता
है ॥ नष्ट नहीं होता ॥ जैसे वज्रकौं कोऊ चूर्ण नहीं क
र सकता ॥ तैसे तिसके सरीरकौं कोऊ नाश नहीं
कर सकता ॥ सर्वकी आज्ञा कि तिस ऊपर कुंठित हो जा
ती है ॥ इस कारणतें वीतहव्यका सरीर जिंउका तिं
उ रहा ॥ तब किंउ न विदेहमुक्त हूया ॥ सो सुण हे रा
मजी जो तत्ववित् विदितवेद्य वीतराग बुधिवान है ॥
जिनकौं अभिमान गांठ टूट पडी है ॥ सो पुरुष स्व
तंत्र स्थित होते हैं ॥ तिनकौं नेकोऊ प्रारब्धकर्म है
न संचित न वर्त्तमान है ॥ सर्वतें मुक्तिरूप स्थित
है ॥ हे रामजी वीतहव्यकौं काकता जीवत अरु कस
मात्र जीवणेका स्पंद फुरता ॥ तब विदेहमुक्ति होत
भया ॥ उनकौं स्थित स्वभाविक स्वतंत्र होती है ॥ उन
कौं कछु कर्त्तव्य नहीं रहा ॥ प्राण वानकी वासना शां
ति होजाती है ॥ मन आत्मपद विषे स्थित होता है ॥
॥ इति उपशमप्रकर्णे सिधलानविचारो नाम
सर्गः ॥ ८५ ॥ श्री रामोवाच ॥ हे भगवन् तब
विचार कर वीतहव्यका चित्त शांति होगया ॥ तब

तब केता काल जीव
तार है [illegible]
भवंत तिसे बदेहमु
क्त होए काल पंद
फुरणा

उस[illegible]कें मैत्रीकरुणाआदिकगुणआनप्राप्तहू
ए॥ इहतुमकहा। परविवेककर्के चित्तउनका
नष्टहोगयाथा॥ बहुडमैत्री
आदिकगुणकहो आनउत्पत
भए॥ श्रीवसिष्टोवाच॥ हेरामजी चित्तकाना
श दोप्रकारहे॥ जीवन्मुक्तिकाचित्तअचित्तरू
जो पहोताहे॥ अरुविदेहमुक्तकाचित्तस्वरूपतेंन
ष्टहोजाताहे॥ जैसेभुनादाणहोताहे। तैसेजीव
न्मुक्तिकाचित्तहे॥ देखणेमात्रचित्तहे॥ परवीच
तैसदनावनहीं॥ जैसेदाणनष्टहोजावे॥ तैसेवि
देहमुक्तिकाचित्तहे॥ देखणेमात्रभीनहींरहता
हेरामजी चित्तकीजोसत्ताहे॥ सोदुखोंकाकारण
हे॥ अरुचित्तकाजोनष्टहोणाहे॥ सोसुखकाका
रणहे॥ चित्तविषेजोअविद्याकीवासनापडीफु
रतीहे॥ सोचित्तदुखोंकाकारणहे॥ तीनगुणोंकेसं
गकरअहंममताविषेरहताहे॥ तिसचित्त
कीसत्ताकरजीवकहीताहे॥ हेरामजी जबलग
चित्तविद्यमानहे। तबलगअनेकदुखहोतेहें
दुखोंरुपीवृक्षकाबीजचित्तहे॥ जबचित्तनष्ट
हूया॥ तबकल्याणहूया॥ श्रीरामोवाच॥ हे
ब्राह्मण चित्तकिसकानामहूया॥ अरुकैसेनु
ष्टहोताहे॥ अरुअसतकैसेसतहोताहे सोकहो
॥श्रीवसिष्टोवाच॥ हेरामजी चित्तकालक्ष
णंतो मैंआगेंकहाहे॥ अबचित्तमृतककाल
क्षणसुण॥ सुखदुखजिसकेधीर्यकोंचलायन
हींसकते। सोचित्तमृतककहीताहे॥ अर्थइह
जोउहचित्तसतपदकोंप्राप्तभयाहे॥ उसचित्त
सोंफुरणीनष्टभयाहे॥ जैसेभुनेदाणेसोंअंकुर
नहींहोता। तैसेउनकाफुरणीनष्टहूयाहे॥ आ

त्मातें इतर कछु नहीं फुर्ता ॥ सो चित्त मस्तक कही
ता है ॥ हे रामजी चित्त विषे जो सत्तता रूपी मैल है संस्कार की
एही चित्त का चित्तत्व भाव जन्मों का कारण है ॥ सो चि
त आत्मज्ञान कर नष्ट हो जाता है ॥ तब मैत्री आदिक
गुण आन उत्पत होते हैं ॥ जैसे भुने दाणे का अंकुर
जल जाता है ॥ तैसे आत्मज्ञान करके चित्त का चित्तत्व
भाव नष्ट हो जाता है ॥ देखणे मात्र चित्त भासता है
पर जन्म का कारण नहीं होता ॥ जैसे वसंत रुत विषे
बेवली प्रफुलित हो आवती है ॥ तैसे चित्त भाव के
मिटे तें मैत्री आदिक गुण आन उपजते हैं ॥ अरु
विदेह मुक्ति का चित्त स्वरूप तें नष्ट हो जाता है ॥ उ
हां गुण कोऊ नहीं रहता ॥ काहे तें जो तिस विषे द्वैत
कलना कछु नहीं फुर्ती ॥ हे रामजी जीवन्मुक्ति का
चित्त स्वरूप तें अचित्त हो जाता है ॥ अरु विदेह मुक्ति कारणतें
का चित्त स्वरूप तें नष्ट हो जाता है ॥ इस जीवन्मुक्त
वि[illegible]षे अचित्त हो जाता है ॥ मैत्री आदिक गुण आ
न उपजते हैं ॥ अरु विदेह मुक्ति का चित्त [illegible] है
[illegible] है ॥ द्वैत कलना कछु फुर्ती नहीं ॥ जैसे आत्मपद
विषे लीन हो जाता है ॥ तिस विषे न आस्ति है ॥ न ना
स्ति है ॥ न हर्ष है ॥ न शोक है ॥ न तेज है ॥ न तम है ॥ न दि
न है ॥ न रात्रि है ॥ न अर्थ है ॥ न अनर्थ है ॥ न अंजन है
न निरंजन है ॥ न सत्त है ॥ न असत है ॥ न चंद्रमा है ॥ न
सूर्य है ॥ ऐसा जो सर्व कलना तें रहित आत्मपद है
जो सरत काल के आकाश की न्याईं निर्मल है ॥ अरु
बुधि आदिक तें परे पद है ॥ तिस विषे अवर की गम्य
नहीं ॥ तहां विदेह मुक्ति स्थित होता है ॥ ब्रह्मानंद विषे
लीन हो जाता है ॥ जिसके पाए तें अवर पावणा कछु
नहीं रहता ॥ ॥ इति उपशम प्रकर्णे चित्त विचा

रोनामसर्गः ॥ ८९ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन परमे
आकाश के कोश विषे एक पहाड है ॥ तिसके ऊप
र एक जगत रूपी वृक्ष है ॥ तारे तिसके फूल हैं ॥ अरु
मेघ पत्र हैं ॥ अरु सूर्य चंद्रमा स्कंध हैं ॥ देवता दैत्य मा
नुषादिक जीव सो तिस ऊपर पंखेरू रहते हैं ॥ सप्त
समुद्र तिसके पास बावलीयां हैं ॥ अनंत नदीयां
तिस विषे प्रवेश करतीयां हैं ॥ चौदह प्रकार के भूत
जात उत्पत होते हैं ॥ सुख दुख रूपी फलों कर पूर्ण
है ॥ मोह रूपी जल कर सिंचीता है ॥ सो दृढ जडता कर
के स्थित हूया है ॥ तिसका बीज कवन है ॥ बोध की वृ
धता के निमित्त मुझ कौं कहो ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥
हे रामजी इस संसार का बीज चित्त रूपी सरीर है ॥
जिसके अंतर सरीर की सघनता है ॥ जब शुभ अ
शुभ कर्म करता है ॥ तिस अशुभ शुभ का अंकुर चि
त्त है ॥ राजस तामस सात्विक जिसकीयां वृती हैं ॥ सो
टास हैं ॥ जन्म मरण रूप का भंडार है ॥ अरु सुख दुख
रूपी रतनों का दरबा है ॥ ऐसा जो सरीर है ॥ सो इस सरी
र का कारण है ॥ हे रामजी जेता कछु जगत जाल दृष्ट
आवता है ॥ सो सत असत रूप है ॥ चित्त के फुरणे कर
नाना प्रकार के अडंबर दृष्ट आवते हैं ॥ जैसे संक
ल्प नगर दृष्ट आवता है ॥ तैसे इह जगत भासता है
जैसे मृत्तिका विषे घट भासते हैं ॥ तैसे चित्त विषे ज
गत भासता है ॥ चित्त रूपी अंकुर के दो टास हैं ॥ एक
प्राणों का फुरणा ॥ दूसरी दृढ भावना ॥ जब प्राण स्पंद
होता है ॥ तब सर्व नाडीयों विषे संवेदन रूपी चित्त उ
दै होता है ॥ जब प्राण स्पंद तिनका और नहीं फुरता ॥
तब चित्त भी नहीं फुरता ॥ जब प्राण फुरता है ॥ तब शुध
साविक चित्त आन फुरता है ॥ तिस विषे जगत भासता

है॥ जैसे आकाश विषे नीलता भासती है॥ तैसे प्राणों विषे
चित्त भासता है॥ जब प्राण स्पंद होता है॥ तब चित्त संवित
फुर्ती है॥ जैसे हाथ कर ताडना कीया खेनू उछलता है॥
तैसे प्राण स्पंद विषे चित्त फुर्ती है॥ तहां सात्तिक नाम विषे
प्रतिबिंबित होता है॥ सो महा सूक्ष्म ते सूक्ष्म होता है॥ जैसे फु
ल विषे सुगंध भासती है॥ तैसे संवित बाहिर मुख होता है
तिस कर नाना प्रकार का जगत भासता है॥ अरु नाना प्र
कार कीयां वासनां उठतीयां हैं॥ तिस कर अनेक दुखों कों
प्राप्त होता है॥ तांते हे रामजी संवित कों अंतर मुख कर
णा परम कल्याण है॥ जब संवित स्वरूप विषे स्थित हो
ती है॥ तब सर्व दोष मिट जाते हैं॥ जब शुध संवेद विषे
[illegible] फुरणा होता है॥ तब चित संवेदन होती है॥ चित्त का
फुरणा अनेक जगत दुख का कारण होता है॥ अरु जब चि
त फुरणे तें रहित होता है॥ अंतर मुख होता है॥ तब सर्व जग
त नष्ट हो जाता है॥ हे रामजी चित्त वासना के कै उत्पत हो
ता है॥ सो वासना विचार तें रहित फुर्ती है॥ जैसे बालिक
कों जन्म तें ही थणों के चूपणे की वृत्ति फुर आवती है
तैसे अकस्मात तें वासना फुर आवती है॥ हे रामजी जी
व की दृढ भावना होती है॥ सोई इसका रूप होता है॥ स्वरू
प के प्रमाद कर कें इस कों संसार भास आवता है॥ ज
ब तिस विषे दृढ प्रतीत भई॥ तब संसार वासना कर
भास्या॥ इस विषे मोहित होता है॥ जो स्वतह सिध आ
त्मा है॥ तिस कों जाण नहीं सकता॥ अरु नाम रूप जगत
कों पडा देखता है॥ हे रामजी असम्यक ज्ञान कर जीव प
डे दुखी होते हैं॥ मन की चिंता कर पडे जलते हैं॥ मन कि
स का नाम है॥ जो असम्यक ज्ञान कर कें अनात्म विषे आ
त्म बुधि करे॥ अरु आत्म रूप विषे अनात्म भावनां क
रे॥ तिस का नाम मन है॥ सो मन कैंसे उत्पत होता है॥ चै
तन्य संवित विषे जो पदार्थों की चितवना होता है॥ तिन

पदार्थों की दृढ भावना होती है ॥ तिन पदार्थों के हेतु कर
जन्म मरण कों पावता है ॥ तब किसी का ग्रहण कर्ता है
किसी का त्याग कर्ता है ॥ जब चित्त आत्मा विषे अंतर्मुख
होता है ॥ तब वासना भी क्षय हो जाती है ॥ जब वासना क्ष
य हूई ॥ तब ग्रहण त्याग किसका होवे । हे रामजी जेते क
छु जगत के पदार्थ हैं ॥ तिनकी भावना होवे । तब मन
उपशम होता है ॥ अरु शुद्ध भावना उत्पन्न होती है । हे रा
मजी चित्त का रूपण तामात्र है । जो पदार्थों के रस की इ
छा उठ जावे । तब चित्त शांति हो जावे । जब जग पदार्थों
का रस चित्त विषे पडा फुर्ता है ॥ तब लग चित्त स्थूल हो
ता है । काहे तें जो असम्यक ज्ञान कर अनात्म विषे आ
त्म भावना कर्ता है । जिउ जिउ दृढ भावना दृढ होती है
तिउ तिउ चित्त रूपी वृक्ष बढता जाता है ॥ जब इन विषे
आत्म भावना उठ दे होवे । तब अनात्म भावना घटती जा
वे । अरु निष्क आत्म भावना प्राप्त होवे । तब वासना निवृ
त्त होवे । अरु चित्त शांति हो जावे । चित्त अचित्त हो जावे । हे
रामजी जीवन्मुक्ति विषे चेष्टा दृष्ट आवती है ॥ पर जन्म
मरण का कारण नही होती । काहे तें जो मन विषे मनन
भाव नष्ट हो गया है ॥ जैसे कुलाल का चक्र हलावणे तें
रहित सनै सनै ठहर जाता है ॥ तैसे ज्ञानवान का चित्त
वासना तें रहित नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी जिसकी चेष्टा
वासना तें रहित है ॥ सो जीवन्मुक्ति कहीता है । उसका चि
त्त केवल चिन्मात्र कों प्राप्त भया है ॥ जब सरीर कों त्या
गता है । तब अचित्त रूप चिदाकाश होता है ॥ हे रामजी
जब चित्त विषे वासना फुर्ती है ॥ तब चित्त विषे क्षोभ
होता है ॥ उह प्राणों कों जगावता है । तिसकर जगत ना
मणे जागता है ॥ दोनों विषे एक नष्ट होवे । तब दोनों न
ष्ट होवें ॥ हे रामजी चित्त रूपी एक वृक्ष है ॥ सुख दुख रूप
दोनों स्कंध हैं ॥ अरु संसार रूपी फल है ॥ कर्म रूपी पत्र

हैं॥ अरु वृत्तरूपी वल्ली साथ वेष्टित कीया है॥ अज्ञान वृक्ष
का मूल है॥ निर्वासनारूपी खड्ग साथ शीघ्रही काटता
जाता है॥ संसार की अभावना करणी॥ अरु आत्मस्वरू
प विषे स्थित हूआ शीघ्रही नष्ट हो जाता है॥ जैसे तीक्ष्ण
अंधेरी कर पका फल वृक्ष से शीघ्रही गिड पडता है॥
तैसे आत्मभावना कर चित्त नष्ट हो जाता है॥ हे रामजी
प्राणों के रोकणे कर चित्त शांति हो जाता है॥ अरु वास
ना के अनुदय तें चित्त ठहर जाता है॥ अरु जब प्राणों के
फुरणे कर वासना फुरती है॥ तिस तें बहुड चित्त फुर आ
वता है॥ जब फुरणे का त्याग होवे॥ तब दोनों का अभाव
हो जाता है॥ जैसे वृक्ष का मूल काटीये तो बहुड नहीं उ
गमता॥ तैसे इन का मूल संवेदन है॥ जब संवेदन का
अभाव होवे॥ तब दोनों का अभाव होता है॥ संवेदन के
बीज आत्मसत्ता है॥ संवित सत्ता तें संवेदन प्रगट भई
है॥ तिस तें इतर नहीं॥ जैसे तिलों बिना तेल नहीं पाईता
है॥ तैसे संवित सत्ता बिना संवेदन नहीं पाईती॥ अंतरबा
सकछु नहीं पईता॥ सत्त संवित सत्ता का आभास है॥
उही संकल्प द्वारा संवेदन जगतरूप हो भासती है॥ जै
से स्वप्न विषे आपने मरणे को देखता है॥ अरु देशांतें दे
शांतर को देखता है॥ तैसे संवित सत्ता संवेदनरूप
जगत को देखती है॥ जब शुध संवित चिन्मात्र विषे
संवेदन का उथान होता है॥ जो अहं अस्मि॥ तब संवे
दन जगतजाल को दिखावती है॥ जैसे बालिक को
आपणा उपजाया बेताल भय दिखावता है॥ तैसे सं
वित विषे संवेदन उपजी भय दिखावती है॥ हे राम
जी सम्यक ज्ञान कर संवेदन जो है दृश्यरूप विषे आत्मबुधि तिन
होती है॥ अरु असम्यक दृष्ट कर के दृश्यरूप जगत भास
ता है॥ जैसे जेवडी विषे असम्यक ज्ञान कर सर्प भास
ता है॥ तैसे असम्यक ज्ञान कर आत्मा विषे जगत

भासताहै। तीनोंजगतसंवितरूपहैं। संवेदनभीकछु
भिन्नवस्तुनहीं। इहनिश्चा जिसकों दृढहोवै। तिसकोंस
म्यकज्ञानकहतेहैं। जिसकों आत्मबोधहूयाहै। सोसं
सारकेपारसमुद्रकोंप्राप्तहोताहै ॥ श्रीरामोवाच ॥
हेभगवन जडतातेंरहितबुद्धि असंवितकैसेहोतीहै
अरुअसंवितकरकैंजडताकैसेनिवृत्तहोतीहै ॥ श्री
वसिष्ठोवाच ॥ हेरामजी सर्वभेद आत्माप्ररण
है॥ कहूं चित्तकीवृत्तिकोंनहींलगावता॥ सोअसंवि
तजडतातेंरहितहै। संवितकरजोदृश्यभासताहै।
सोदृश्यकीओरतेंजडहै। अरुस्वरूपविषेचेतन्य
है॥ तिससाथसंवेदनकासंबंधकछुनहीं। हेरामजी
अपणीचेष्टाकर्केंसंवितआपकोंआपहीबंधाव
तीहै॥ जैसेघराइणआपकोंआपहीबंधावतीहै।
तैसेसंवितआपकोंआपहीबंधावतीहै॥ जबअप
णीओरआवतीहै। तबआपहीआपकोंप्राप्तहो
तीहै॥ हेरामजीजगतरूपीसमुद्रहै॥ संवितरूपीति
सविषेजलहै। सोसंवितरूपीजलकरसभत्रैलों
डपूरणहोरहेहैं। तातेंसभजगतसंवितमात्रहै॥
सन्मात्रसत्तातेंसंवितकाउदेहोणाहूयाहै॥ जैसे
सूर्यअरसूर्यकाप्रकाशहोताहै॥ तैसेसमानसत्ता
अपणीआपकरप्रकाशतीहै॥ तिसकोंज्ञानवानप
मशांतिरूपसत्ताकहतेहैं॥ जबतिसकाज्ञानहो
वै॥ तबतिसविषेस्थितहोवै। तिसकोंजीवन्मुक्ति
कहतेहैं॥ सोसर्वात्माभावकोंप्राप्तहोताहै॥ हेराम
जीजिसकोंस्वरूपकीओरस्थितभईहै॥ अरुदृ
श्यभावतेंनिर्लेपरहताहै। सोसर्वविकल्पोंकों
त्यागकरआत्मसमाधिविषेजुडताहै॥ देखतें
चलतेंस्पर्शकरतेंसुगंधलेतेंसुणतेंसभइंद्री
योंकीक्रियाकरतेंभीमनस्थितरहताहै। दृश्य

अभिमान नहीं कुर्त्ता॥ संवेदन तें रहित सुखी होता
है॥ हे रामजी संवेदन रूप नटनी है॥ जगत रूप को
धारकर पडी नृत्त्य करती है॥ जो इस संसार समुद्र
विषे तिडै नहीं॥ सो सत्ता सनकारणों का कारण है॥
तिसका कारण कोऊ नहीं॥ अरु सर्व सारों का सार
है॥ तिसका सार कोऊ नहीं॥ हे रामजी जेते कछु पदा
र्थ हैं॥ सो सन आत्मसत्ता कर सिध होते हैं॥ उसी अनु
नव स्वरूप विषे सनका अनुनव होता है॥ जैसे षट
रसों का स्वाद जिह्वा कर सिध होता है॥ तैसे सन पदा
र्थ चिदाकाशा के आश्रे सिध होते हैं॥ सन का अधिष्टा
न सत्ता रूप तू ही है॥ हे रामजी ऐसी जो पर्म पावन स
त्ता है॥ तिस विषे पुरुष प्रयत्न कर की स्थित होवो॥ सो
आत्म तत्व निर्मल है॥ अजर अमर अंगं तिस रूप है॥ ति
स विषे स्थित हो॥ ॥इति उपशम प्रकर्णे सवि
तबीज विचारो नाम सर्गः॥ ८१ ॥श्री रामो वा
च॥ हे मानद मान के देणे हारे इह जो बीजों का बी
ज तुम कहा॥ सो किस प्रकार प्राप्त होवे॥ सो ई उपाव
कहो॥ ॥श्री वसिष्ठो वाच॥ हे रामजी जब आत्म स्व
रूप का अभ्यास करीये॥ सत शास्त्रों का श्रवण क
रीये॥ तब आत्मस्वरूप की प्राप्त होती है॥ जब तिस
पद विषे क्षण नी स्थित होवेगा॥ तब अद्वय नाव
कों प्राप्त होवेगा॥ हे रामजी सत्ता समान संवित तत्व
सो तेरा स्वरूप है॥ तिसके ध्यान विषे स्थित हो॥ हे रा
मजी केवल संवेदन साथ ध्यान नहीं होता॥ काहे ते
जो आत्मतत्व सदा प्रत्यक्ष है॥ अनुनव रूप अपणे
आप विषे स्थित है॥ एही अविद्या आवर्ण है॥ जो ऐ
से कछु नासता है॥ स्वरूप के प्रमाद कर दृश्य रूप की ना
वना करता है॥ जब यतन कर कै नावना का त्याग करे॥
तब आध व्याधि पीडा नष्ट हो जावे॥ पर तत्व ज्ञान

बिनां चित्त नष्ट नहीं होता ॥ जब तत्त्वज्ञान होवेगा
तब चित्त नष्ट होजावेगा ॥ हे रामजी पुरुषप्रय
त्न करके चित्त के फुरणे को निवृत्त करै। अभ्यास
विचार करके विवेक को प्राप्त कर ॥ भोगों की वा
सनां दूर ते त्याग ॥ इन तीनों का समग्र अभ्यास क
र ॥ तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय का वारंवा
र अभ्यास कर ॥ जब लग इनको न साधे ॥ तब
लग अनेक उपाव करें ॥ तो भी शांति को न पावें
गा ॥ हे रामजी जब वासनाक्षय होवे ॥ मनोनाश
अरु तत्त्वज्ञान न होवे ॥ तो कार्य सिद्ध नहीं होता
अरु जो मनोनाश करे ॥ तत्त्वज्ञान अरु वासना
क्षय न होवे ॥ तो भी कार्य सिद्ध नहीं होता ॥ अरु
तत्त्वज्ञान होइ मनोनाश वासनाक्षय न होइ ॥
तो भी कल्याण न होवेगा ॥ जब तीनों का समग्र अ
भ्यास होवे ॥ तब फल की प्राप्त होवे ॥ जब तत्त्वज्ञा
न मनोनाश वासनाक्षय का एक काल अभ्यास
होवे ॥ तब संसाररूपी शत्रु नाश होवे ॥ हे रामजी
जब तीनों का दृढ अभ्यास करे ॥ तब अहं ममरूपी
ग्रंथ दूर जावे ॥ चलते बैठते खाते पीते सुण
ते संघते स्पर्श करते जागते सोवते इन तीनों का
अभ्यास करो ॥ हे रामजी वासना के त्याग ते प्रा
णस्पंद रोक्या जाता है ॥ जब प्राणों का स्पंद रो
क्या ॥ तब चित्त अचित्त होजाता है ॥ आत्मयो
ग करके अथवा वासनों के त्याग करके आत्मतत्त्व
प्रकाशेगा ॥ इनों विषे जो तेरी इच्छा होइ ॥ सो कर
परमेरे मत विषे इह सुगम है ॥ जो सम्यक ज्ञान
कर जगत को असत जानणा ॥ तब वासना भी न

ष्ट होजाती है ॥ जब वासना क्षय होवेगी । तब चित्त
भी नष्ट होजावेगा ॥ जो प्राणस्पंद है । सोई चित्तस्पं
द है ॥ जब वासना फुरती है । तब जगत उपजता है
जब प्राणस्पंद ठहरता है ॥ तब चित्त भी ठहरजा
ता है ॥ तांते यत्न करके प्राणों का स्पंद वासना के जीत
णे का अभ्यास करो । तब शांतिवान होवेगा ॥ मनयु
क्त करके वश होता है । अध्यात्मशास्त्रों का विचार अर
संतों की संगत करणी । सो इह उपाव तिनों के हा है ।
तत्वज्ञान मनो नाश वासना क्षय अरु प्राणों का
स्पंद रोकणा इह चित्त वश करणे की पुष्टयुक्त
है ॥ इस करके शीघ्रही चित्त जीत्या जाता है ॥ जिस
मन के जीतणे का उपाव नहीं कीया ॥ तिन आत्मपद
को नहीं पावते । सो पशूयों के समान हैं ॥ हे रामजी
जिस पुरुष मन को वश नहीं कीया । तिन को शां
ति नहीं प्राप्त होती ॥ हे रामजी जगत विषे सुखी है
सो ज्ञानी है ॥ अरु जीवता भी ज्ञानवान हैं ॥ जो मो
हरूपी शत्रु कों मारकर संसार समुद्र के पार कों
प्राप्त भया है ॥ गवरसमभ निहैं ॥ अरु संवेदन तें रहि
त जो संवित मात्र तत्व है । सो एक है ॥ सर्व की आदि
सत्तें उतम कलनों तें रहित है । सर्व विषे स्थित
है । सो एक है । तूं भी तिस विषे स्थित हो ॥ ॥ इति
उपशम प्रकर्णे संसार बीज निराकर्ण कर्म उप
देश वर्ननं नाम सर्गः ॥ ८८ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच
हे रामजी जिस पुरुष आत्म विचार करके अल्प
भी चित्त आपणे को निग्रह कीया है ॥ सो संपूर्ण
फल कों प्राप्त होवेगा ॥ तिस का जन्म भी सफल
भया है । हे रामजी जिसके चित्त विषे विचाररूपी
कणका उदे भया है । सो अभ्यास करके वडे विस्ता
र कों पावेगा ॥ अरु अविद्यारूपी फलों कों काट

अथवा

सो युक्ती कवन है

[illegible]

बैल

पावेगा॥ अरु शुभ गुणों कों आश्रय करेगा॥ हे रा
मजी जिसकों सम्यक ज्ञान प्राप्त हूया है॥ अरु नि
र्मल बोध कर यथार्थ दर्शी हूया है॥ तिसकों इं
द्रीयों के विषै चलाय नहीं सकते॥ जब लग स्वरूप
का प्रमाद होता है॥ तब लग आधि व्याधि दुख
इसकों होते हैं॥ अरु जब स्वरूप विषे स्थित हो
ता है॥ तब मन अरु सरीर के दुख इसकों वस्य
नहीं कर सकते॥ जैसे विद्युली कों कोउ ग्रहण
नहीं कर्त्ता॥ तैसे ज्ञानवान कों सुख दुख चलाय न
हीं सकते॥ अरु विचारवान कों इह कर्त्तव्य है॥
जो मैं कौन हों॥ अरु इह जगत क्या है॥ अरु किंउ
कर उत्पत हूया है॥ अरु कैसे निवृत होवेगा॥ इ
स प्रकार अध्यात्मशास्त्र अरु संतों के संग कर
विचार करे॥ दृश्यरूप भाव कों त्याग कर आत्मतत्व
विषे स्थित होवे॥ सो परमपद कों प्राप्त होता है॥ हे
रामजी संतों के संग कर आत्मतत्व का बोध होता
है॥ तिसकों ज्ञान कहता है॥ सो ज्ञान ज्ञेय के साथ
रूप अभिन्न है॥ अध्यात्म विद्या कों विचार कर ज्ञान
प्राप्त होता है॥ जैसे दुग्ध कों मथ कर मखण का
ढीये॥ तैसे विचार कर आत्मज्ञान प्राप्त होता है॥
ज्ञेय तिसके अंतर होता है॥ सो ज्ञेय सत असत
रूप होकर सभके अंतर स्थित है॥ ज्ञानवान ति
सकों पाकर स्थित होता है॥ अरु जीवन्मुक्ति हो
कर अपणे आप विषे प्रकाशता है॥ अवर सु
ख की इच्छा नहीं राखता॥ जैसे आलण का कर
खाणे की इच्छा नहीं राखता॥ तैसे ज्ञानवान उ
र्वसी रंभा मेनकादिक अपसरा की इच्छा नहीं

कर्त्ता॥ जैसे चंद्रमा बदल्यों की इछा नहीं कर्त्ता॥ तैसे
ज्ञानवान पदार्थों की इछा नहीं कर्त्ता॥ और की क्या संपवेत
बात है॥ इंद्र यम कुबेर ब्रह्मा विष्णु शिव जी आ
दिक ऐश्वर्यवान हैं॥ इनकी इछा नहीं कर्त्ता॥ जैसे
राजा नीच पदार्थों की इछा नहीं कर्त्ता॥ तैसे ज्ञानवा
न सर्व पदार्थों की इछा नहीं कर्त्ता॥ एते पदार्थों की इ
छा भी नहीं कर्त्ता॥ अरु गर्जते सिंह ते भी नयन नहीं
कर्त्ता॥ अनेक दुख आए ते उसका दिढा चलायमान न
हीं होता॥ सत्तास्वरूप आत्मपद विषे स्थित रहता
है॥ एक और सुंदर स्त्रीयां होवें॥ अरु एक और मा
र्नेवाली विष होइ॥ एक और जिवावणे वाला अं
मृत होइ॥ सो दोनों उसको तुल्य हैं॥ हे रामजी वहीं सं
पदा प्राप्त होवें नावें आपदा प्राप्त होवें॥ नावें मृत्यु
होवें नावें उत्साह होवे॥ इन विषे व्यवहार कर्त्ता भी
भासता है॥ अरु अंतर ते रागद्वेष ते रहित होता है
उसका अंतर सदा शीतल आत्मपद विषे स्थित र
हता है॥ अनंत सुख दुःखों कर उद्वेगवान नहीं हो
ता॥ ज्ञानवान सदा सम बुधि शुध चित्त रहता है॥
पहाड़ की न्यांई स्थित धीर्यवान रहता है॥ हे रामजी
ज्ञानवान रागद्वेष ते रहित स्थित है॥ आत्मही पद
विषे देहाभिमान ते रहित मुक्तरूप हूया है॥ तिसको
सुख दुख हर्ष शोक दोनों तुल्य हैं॥ हे रामजी जिसको
स्वरूप विषे स्थित भई है॥ सो किसी कर चलायमान न
हीं होता॥ जैसे सुमेर स्थित है॥ तैसे ज्ञानवान स्थित है
बुधि उसकी स्वरूप विषे निश्चयात्मक भई है॥ सब
जगत उसको आत्मरूप भासता है॥ हे रामजी जो अ
ज्ञानरूपी समुद्र विषे पडा॥ तिसको आशा रूपी तंदू
या ग्रास लेता है॥ हाइ हाइ पडा कर्त्ता है॥ शांति को नहीं
प्राप्त होता॥ अरु जो विचार करके आत्मपद को प्राप्त

171 नयाहे ॥ सोविश्रांतकोंपाकरचलायमाननहींहोता ॥
जैंसेसुमेरपर्वतचलायमाननहींहोता ॥ तैंसेज्ञान
वानसंकल्पविकल्पकरचलायमाननहींहोता ॥
सर्वसंकल्पोंकीसीमाआत्मपदहे ॥ तिसविषेजि
सकोंविश्रांतिभईहे ॥ सोवहीउनमनीअवस्थाकोंप्रा
प्तभयाहे ॥ हेरामजीइसकोंइहजागतज्ञानरूपना
सताहे ॥ संवितमात्रजानकरव्यवहारविषेविचर
ताहै ॥ नकिसीकात्यागकर्त्ताहे ॥ नकिसीकाग्रहण
कर्त्ताहे ॥ तातेंभ्रांतिकोत्यागकरअपणेसंवितमा
त्रस्वरूपविषेस्थितहो ॥ किसकात्यागकर्त्ताहें ॥ अ
रुकिसकीइछाकर्त्ताहें ॥ जोआदिविषेभीनहो
वे ॥ अरुअंतविषेभीनरहे ॥ अरुमध्यविषेभासे
तिसकोंभ्रांतिमात्रजाणीये ॥ इसप्रकारजाणक
रभावअभावकेधारणेहारीजोबुधिहे ॥ तिसकों
त्यागकरनिरसंवेदनरूपहोकरसंसारसमुद्र
कोंतरजावो ॥ मनबुधिइंद्रीयोंकरकेकर्मकरअ
रुअंतरतेंनिर्लेपहोकरविचरो ॥ हेरामजीजि
सकामनदेहाभिमानतेंरहितहूयाहे ॥ सोकर्म
कर्त्ताभीलिपायमाननहींहोता ॥ जैसेमनअओरठो
डहोताहे ॥ तोविद्यमानपदार्थभीनहींभासते ॥
तैंसेजिसकामनआत्मपदविषेस्थितहूयाहे ॥ ति
सकोंसुखदुखकर्मनहींलागते ॥ जोपुरुषदेहअ
भिमानतेंरहितहे ॥ सोसुखदुखभीतोदृष्टआव
ताहे ॥ परउसकोंस्पर्शनहींकरसकते ॥ हेरामजी
जिसकामनअमनहूयाहे ॥ सोदेखताहे ॥ परनहीं
देखता ॥ सुणताहे ॥ परनहींसुणता ॥ इत्यादिककि
याजोकछुकर्त्ताहे ॥ परनहींकर्त्ता ॥ काहेतेंजोउस
काचित्तआत्मपदविषेस्थितभयाहे ॥ जिसकोंम
नविषयतीव्रसंवेगहोताहे ॥ सोईभासताहे ॥ अ

वरनहींनासता ॥ हे रामजी संसारकासंग इसजी
वकों जन्ममरण देताहे ॥ तांतें सर्व अनर्थोंका
कारणसंग हे ॥ सर्व इछाकाकारणसंग हे ॥ अ
रु सर्व आपदानी संगकर होती है ॥ संगको त्या
गकर मोक्षकों पावता है ॥ तांतें संगकों त्यागक
र जीवन्मुक्ति होकर विचेर ॥ श्रीरामोवाच ॥
हे सर्वसंसाकु हीडकेनाशकर्त्ता सरतकाल सं
ग किसकोंकहीताहे ॥ संक्षेपतें मुझकोंकहो ॥ कृपवन
श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी भावाभावजोपदा
र्थ हें ॥ सोहर्षशोककोंदेणहारे हें ॥ जिसमलिन
भावनां कर इह भासते होते हैं ॥ सोवासनां संगक
हीताहे ॥ हे रामजी देहविषे जो अहंबुधि होती
हे ॥ अरु संसारकी सतप्रतीत होती हे ॥ तिससे स
दा विषे इष्ट अनिष्टग्रहण त्यागकर्त्ता हे ॥ ऐसी
जो मलिनवासना हे ॥ तिसकानाम संग कहीता
हे ॥ अरु जीवन्मुक्ति की वासना हर्षशोक तें शु
ध हे ॥ तिसकों जन्ममर्ण का कारण नहीं होता ॥
हे रामजी जिस पुरुषकों देह विषे अभिमान न
हीं ॥ अरु आत्मपद विषे स्थित हे ॥ सो सरीरके इ
ष्ट अनिष्ट विषे रागद्वेष नहीं कर्त्ता ॥ उसकी शुध
वासना हे ॥ उह जो कछु कर्त्ता हे ॥ सो बंधनकाका
रण नहीं होता ॥ जैसे भुना बीज उगमता नहीं ॥ तै
से ज्ञानीकी बासना जन्ममर्ण का कारण नहीं हो
ती ॥ हे रामजी जिसका मन असंग हूया हे ॥ सो जी
वन्मुक्ति हे ॥ तांतें तूं भी वीतराग होके आत्मत
त्व विषे स्थित हो ॥ जो जीवन्मुक्त पुरुष हें ॥ सो इं
द्रीयां आदिककों वश कर स्थित होते हैं ॥ जो क
छु कर्म कर्त्ते हें ॥ सो सर्व आत्मारूप जानकर के

त्तै हैं। ब्यवहार कर्त्ते हैं। पर ब्यवहारबुधि तैं रहित
होकर कर्त्ते हैं॥ सो कर्त्ता भी अकर्त्ता हैं॥ तिन कों अ
पदा आवे अथवा संपदा आवे आपणे आत्म
स्वभाव कों नहीं त्यागते॥ जैसे क्षीरसमुद्र मंदरा
चल पाइ के मथ्या। पर अपणी शुक्लता कों न
त्यागत भया॥ तैसे जीवन्मुक्ति अपणे स्वभाव
कों नहीं त्यागता॥ तुम भी इस दृष्टि कों लीये आ
त्मपद कों पाइकर आत्मपरायण होवो॥ ॥

॥ इति उपशमप्रकर्णे महारामायणे सतस
हस्रासंहितायां समाप्तम्॥

इदं पुस्तकं संपू
र्णं शुभदिनं शुक्रवासरे संपूर्णम्। शुभमस्तु

॥ दोहड़ा विचार नयन की आरसी [illegible] बै
न केसर श्रीप्रभु हेतु रामजी जहां तहां भर
पूर १ नाम लीयां जिस दुख न से ध्यान की
यां सुख होइ श्रीप्रभु हेतु रामजी भजे सो मु
क्ता होइ॥ २॥ श्रीगुरु दीनदयालु जी भ
वखलालन में लाल सरन तुमारी आई पो
लीजे तुर्त तिकाल॥

संवत् १९०४ मिती जेठ दी २ ओम् ओम्

ओम् ओम् ओम् ओम् ओम्

श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री

۲۸ ماه بیاکهی سنه ۱۹ روز
شنبه وقت شام حواله
کردیم داس بطرف دیگر
نسخه کلدار نقد

برادر ولدار ... دست
خانه خود کرده گرفته رداه ...
... تمت
... ...

